प्रकाशकीय

गणधरों द्वारा ग्रथित आगम ग्रन्थों का अध्ययन और अनुशीलन जन सामान्य के लिए दुरुह है। किन्तु कोई भी जिज्ञासु पाठक सूक्ष्मार्थ प्रतिपादक इन विशालकाय ग्रन्थों से सरलता से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सके इसलिए शास्त्रों में आये हुए मूल पाठों के आधार पर 'स्तोकों-थोकड़ों' का संकलन हुआ इनमें विशेष रूप से भगवती सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र के स्तोकों का संकलन दृष्टिगत होता है। इन स्तोकों की वाचना, पृच्छना, परियट्टणा और अनुप्रेक्षा करके अनेक भव्य आत्माओं ने तलस्पर्शी तत्त्वज्ञान रहस्य प्राप्त किया है।

भगवती और प्रज्ञापना सूत्र के थोकड़ों का सर्वप्रथम व्यवस्थित प्रकाशन श्री अगरचन्द भैरूंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था द्वारा हुआ। इसमें श्रद्धेय स्व. आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. के शिष्य शास्त्रमर्मज्ञ पं. रत्न श्री पन्नालालजी म. सा. तथा सुश्रावक श्री हीरालालजी मुकीम को सैंकड़ों थोकड़े कंठस्थ थे उनको भी श्री जेठमल जी सेठिया ने लिपिवद्ध करवाया। तत्पश्चात् भगवती सूत्र के थोकड़ों के नौ भागों में तथा प्रज्ञापना सूत्र के थोकड़ों

के तीन भागों में विभाजित कर प्रकाशित करवाया। अनेक संत-सती एवं मुमुक्षु भव्य जन इन थोकड़ों से लाभान्वित हुए।

इन थोकड़ों को कंठस्थ करने से तथा चिन्तन, मनन अन्वेषण करने से शास्त्रों के गहन विषयों पर भी सरलता से अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस बात का परीक्षण जब परम पूज्य समता विभूति समीक्षण ध्यान योगी आचार्य भगवन श्री नानालालजी म. सा. तथा शास्त्रज्ञ, तरुणतपस्वी अवधूत साधक श्रद्धेय युवाचार्य श्री रामलाल जी म. सा. ने किया तो एक योजना बनी कि विद्यार्थी जीवन के प्रारम्भ में ही थोकड़े स्मरण करने के संस्कार डालना आवश्यक है। इधर श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड द्वारा भी नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण की मांग जब परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म. सा. एवं परम श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी म. सा. के समक्ष रखी गयी तब आचार्य देव ने नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण के लिए श्री युवाचार्य प्रवर को संकेत किया। संकेतानुसार श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर ने उपस्थित सन्त-सती वर्ग के परामर्श से नवीन पाठ्यक्रम का निर्माण किया और उसमें अपने पूर्व चिन्तन का अनुसरण करते हुए थोकड़ों को भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। अपनी विलक्षण प्रज्ञा से श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी

म. सा. ने विद्यार्थियों के परीक्षा स्तर को दृष्टि में रखते हुए उनके अनुकूल थोकड़ों की नवीन संयोजना की।

श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर की इस संयोजना को विद्यार्थियों की सुविधा के लिए प्रकाशित करवाने का निर्णय श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड ने लिया और वह जैन स्तोक मंजूषा के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

फाल्गुन शुक्ला तृतीया — पीरदान पारख
वि० सं० २०५२ — संयोजक
सन् १९९६

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर



अर्थ सहयोगी

देशनोक निवासी श्री मोतीलालजी दुगड़ आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. एवं श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर के स्थापना काल से ही एकनिष्ठ सुश्रावक है। श्रीमद् जवाहराचार्य, श्री गणेशाचार्य, श्री नानेशाचार्य एवं युवाचार्य श्री राममुनि के श्रद्धालु भक्तों में श्री दुगड़जी का परिवार अग्रणी है। शासननिष्ठ श्री मोतीलालजी दुगड़ के चार पुत्रों—श्री सुन्दरलालजी दुगड़, श्री सोहनलालजो दुगड़, श्री पूनमचन्द दुगड़ एवं श्री कौशल कुमार दुगड़ में श्री सुन्दरलालजी ज्येष्ठ पुत्र हैं तथा संघ एवं समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है।

श्री सुन्दरलालजी दुगड़ जैन समाज के उन युवा उद्योगपतियों में प्रमुख हैं, जिन्होंने विगत एक दशक में अपने अथक परिश्रम, कौशल, प्रतिभा तथा उदारता से न केवल औद्योगिक जगत में विशिष्ठ स्थान वनाया है अपितु अपनी धर्मनिष्ठा, सदाचारिता एवं दुःखकातरता से शिक्षा और सेवा के क्षेत्र में भी अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया है।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पूर्व उपाध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी दुगड़ अनेक सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा सेवा संस्थानों के सम्प्रति ट्रस्टी, अध्यक्ष, मंत्री आदि विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं एवं घनिष्ठ रूप से सम्वद्ध हैं। श्री दुगड़ ने भवन निर्माण का कार्यारम्भ कर व्यवसाय जगत में प्रवेश किया एवं आर. डी. विल्डर्स की स्थापना की, किन्तु अपनी दूरदर्शिता कार्यकुशलता त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के वल पर आज दैनिक

बंगला अखबार सोनार बंगला एवं जूट आदि मिलों का संचालन कर रहे हैं। आर. डी. बिल्डर्स नामक इनकी कम्पनी आर. डी. बी. इण्डस्ट्रीज लि. में परिवर्तित होकर औद्योगिक जगत में पैर जमाकर इनके गतिशील चुम्बकीय व्यक्तित्व की कहानी कह रही है।

थुवा उद्योग रत्न श्री सुन्दरलालजी दुगड़ समय की नब्ज पहचानने वाले प्रगतिशील विचारों के धनी हैं। 'दिया दूर नहीं जात' के पथ का अनुसरण करने वाले श्री दुगड़ ने अपनी जन्मभूमि देशनोक में समता–शिक्षा–सेवा संस्थान की स्थापना में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है। कपासन (उदयपुर) में आचार्य नानेश रूप रेखा प्राणी रक्षालय की स्थापना भी इनके अनुदान से हुई है।

हंसमुख, मिलनसार, विनम्र श्री दुगड़ का व्यक्तित्व प्रदर्शन, विज्ञापन एवं पाखंड से सर्वथा दूर सरलता सादगी और उदारता से समन्वित कलकत्ता के जैन अजैन समाज में अत्यन्त लोकप्रिय है। अनेक राजनेताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी ये एक निरभिमानी निष्काम कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में जाने पहचाने जाते हैं; धर्म और सेवा का कलकत्ता में ऐसा कोई संस्थान तथा संगठन नहीं है जो इनके उदार सहयोग एवं सक्रिय व्यक्तित्व से लाभान्वित नहीं होता हो।

श्री दुगड़ जी के अर्थ सहयोग से प्रकाशित यह पुस्तक इनकी प्रशस्त एवं प्रगाढ़ धर्म भावना का प्रतीक है। इस सहयोग हेतु हम इनके हृदय से आभारी हैं।



अनुक्रमणिका

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

तृतीय भाग

चतुर्थ भाग

जैन स्तोक मंजूषा

भाग १

१. आत्मारम्भी परारम्भी का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा पहला)

१—अहो भगवान् ! क्या जीव *आत्मारम्भी है या परारम्भी है या तदुभयारम्भी है या अनारम्भी है ? हे गौतम ! जीव के दो भेद हैं—संसार समापन्न यानी संसारी और असंसार समापन्न यानी सिद्ध । सिद्ध भगवान् तो न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी हैं । संसारी जीव के दो भेद हैं—संयति और असंयति । संयति के दो भेद हैं—प्रमादी और अप्रमादी । अप्रमादी संयति तो न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न

---

* आरम्भ का अर्थ है ऐसा सावद्य कार्य करना जिससे किसी जीव को कष्ट पहुंचता हो या उसके प्राणों का घात होता हो अर्थात् आश्रवद्वार में प्रवृत्ति करना आरम्भ कहलाता है ।

तदुभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी हैं। प्रमादी के दो भेद है—शुभयोगी और अशुभयोगी। शुभयोगी तो न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं न तदुभयारम्भी हैं किंतु अनारम्भी हैं। अशुभयोगी आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं, तदुभयारम्भी भी हैं किन्तु अनारम्भी नहीं हैं। अशुभयोगी की तरह असंयति और २३ दण्डक कह देने चाहिए। मनुष्य समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिए। किंतु इतनी विशेषता है कि सिद्ध नहीं कहने चाहिए। सलेशी (लेश्यासहित) समुच्चय मनुष्य की तरह कहना। कृष्ण, नील, कापोत लेश्या वाले २२ दण्डक आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं, यानी समुच्चय जीव की तरह कह देना नवरं प्रमादी अप्रमादी (साधु) और सिद्ध नहीं कहना चाहिए। समुच्चय जीव

आत्मारंभ के दो अर्थ हैं—आश्रव द्वार में आत्मा को प्रवृत्त करना और आत्मा द्वारा स्वयं आरम्भ करना। जो ऐसा करता है वह आत्मारंभी कहलाता है। दूसरे को आश्रव में प्रवृत्त करना या दूसरे के द्वारा आरम्भ कराना परारम्भ हैं, जो ऐसा करता है वह परारम्भी कहलाता है। आत्मारम्भ और परारम्भ दोनों करने वाला जीव उभयारम्भी कहलाता है। जो जीव आत्मारम्भ, परारम्भ और उभयारम्भ से रहित होता है वह अनारम्भी कहलाता है।

तेजोलेशी १८ दण्डक, पद्मलेशी शुक्ललेशी तीन-तीन दण्डक मनुष्य की तरह कह देना चाहिए❀ ।



२. इह भविए णाणे पर भविए णाणे का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा पहला)

१—अहो भगवान् ! क्या ज्ञान इहभविक (इस भव में) है या परभविक (पर भव में) है या तदुभय भविक (दोनों–भवों में) है ? हे गौतम ! ज्ञान इहभविक भी है, परभविक भी है और तदुभय भविक भी है ।

२—अहो भगवान् ! क्या दर्शन इहभविक है या परभविक है या तदुभय भविक है ? हे गौतम ! दर्शन इहभविक भी है, परभविक भी है और तदुभयभविक भी है ।

३—अहो भगवान् क्या चारित्र इहभविक है या पर-भविक है या तदुभयभविक है ? हे गौतम ! चारित्र इहभविक है किन्तु परभविक नहीं है, तदुभयभविक नहीं है । इसी तरह तप और संयम भी इहभविक है किन्तु परभविक और तदुभयभविक नहीं है ।



(श्री भगवती सूत्र पर श्री जवाहिराचार्य के व्याख्यान भाग २ पृष्ठ ४८९)

❀कृष्ण, नील, कापोत, इन तीन भाव लेश्याओं में साधुपना नहीं होता । यहां जो लेश्याएं कहीं गई हैं वे द्रव्य लेश्याएं समझनी चाहिए । (टीका)

३. संवुड़ा असंवुड़ा अणगार का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा पहला)

१—अहो भगवान् ! क्या असंवुड़ा अणगार (जिसने आश्रवों को नहीं रोका है ऐसा साधु) सिद्ध होता है ? वोध (केवल ज्ञान) को प्राप्त करता है ? मुक्त होता है ? निर्वाण को प्राप्त होता है ? सब दुःखों का अन्त करता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नहीं हो सकती) । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! आयुष्य कर्म को छोड़ कर वाकी ७ कर्म ढीले (शिथिल) हों तो गाढ़े (मजबूत) करता है, थोड़े काल की स्थिति हो तो दीर्घ काल की स्थिति करता है, मंद रस हो तो तीव्र रस करता है, थोड़े प्रदेश वाले कर्मों को वहुत प्रदेश वाले करता है । आयुष्य कर्म कदाचित् बांधता है, कदाचित् नहीं बांधता । असाता वेदनीय कर्म वारवार बांधता है । अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है । इस कारण से असंवृत्त अनगार सिद्ध नहीं होता यावत् सब दुःखों का अन्त नहीं करता ।

२—अहो भगवान् ! क्या संवुडा अनगार (जिसने आश्रवों को रोक दिया है ऐसा साधु) सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है ? हां, गौतम ! संवुडा अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! संवुडा अनगार आयुष्य कर्म को छोड़ कर वाकी सात कर्मों को गाढ़े हो तो ढीला करता है, वहुत काल की स्थिति हो तो

थोड़े काल की स्थिति करता है, तीव्र रस हो तो मंद रस करता है, बहुत प्रदेश वाले कर्मों को थोड़े प्रदेश वाले करता है। आयुष्य कर्म को नहीं बांधता। असाता वेदनीय कर्म बार-बार नहीं बांधता। अनादि अनंत चतुर्गति रूप ससार में परिभ्रमण नहीं करता। इसलिए संवुडा संवृत अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।



४. एक सौ बोल का थोकड़ा

भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवान्! क्या एक जीव अपने किये हुए दु-ख को भोगता है? हे गौतम! कोई जीव भोगता है और कोई जीव नहीं भोगता है। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जिस जीव के कर्म उदय में आया है वह भोगता है और जिसके उदय में नहीं आया है वह नहीं भोगता है। इसी तरह जीव की अपेक्षा से २४ दण्डक कह देने चाहिए। समुच्चय एक जीव का १ अलावा—(आलापक-भेद) और २४ दण्डक के २४ अलावा। ये कुल २५ अलावा हुए।

२—अहो भगवान्! क्या बहुत जीव अपने किये हुए दुःखों को भोगते हैं? हे गौतम! कोई भोगते हैं और कोई नहीं भोगते हैं। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जिन जीवों के कर्म उदय में आये

हैं वे भोगते हैं और जिनके उदय में नहीं आये हैं वे नहीं भोगते हैं। इसी तरह बहुत जीव की अपेक्षा से २४ दण्डक कह देने चाहिए। समुच्चय बहुत जीव आसरी १ अलावा और २४ दण्डक के २४ अलावा। ये कुल २५ अलावा हुए।

३—अहो भगवान्! क्या एक जीव अपने वांधे हुए आयुष्य कर्म को भोगता है? हे गौतम! कोई भोगता है और कोई नहीं भोगता है। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जिस जीव के आयुष्य कर्म उदय में आया है वह भोगता है और जिस जीव के आयुष्य कर्म उदय में नहीं आया है वह नहीं भोगता है। इसी तरह एक जीव की अपेक्षा से २४ दण्डक कह देने चाहिए। १+२४=२५ अलावा हुए।

४—अहो भगवान्! क्या बहुत जीव अपने वांधे हुए आयुष्य कर्म को भोगते हैं? हे गौतम! कोई भोगते हैं और कोई नहीं भोगते हैं। अहो भगवान्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जिन जीवों के आयुष्य कर्म उदय में आया है वे भोगते हैं और जिन जीवों के उदय में नहीं आया है वे नहीं भोगते हैं। इसी तरह बहुत जीव की अपेक्षा से २४ दण्डक कह देने चाहिए। १+२४=२५ अलावा हुए। २५+२५+२५+२५=१०० कुल १०० अलावा हुए।



५. संसार संचिट्ठणकाल का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा दूसरा)

चउ संचिट्ठणा होइ, कालोसुण्णासुण्ण मीसो ।
तिरियाणं सुण्णवज्जो, सेसे तिण्णि अप्पाबहू ॥

१—अहो भगवान् ! ❀संसार संचिट्ठण काल (संसार संस्थान काल) कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! चार प्रकार का है—१ नारकी संसार संचिट्ठण काल, २ तिर्यञ्च संसार संचिट्ठण काल, ३ मनुष्य संसार संचिट्ठणकाल, ४ देव संसार संचिट्ठण काल ।

२—अहो भगवान् ! नारकी संसार संचिट्ठणकाल, कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! तीन प्रकार का—१ सुण्णकाल (शून्य काल), २ असुण्ण काल (अशून्य काल), ३ मिश्र काल । इसी तरह मनुष्य और देवता में भी संसार संचिट्ठण काल तीन तीन पाते हैं । तिर्यञ्च में संसार संचिट्ठण काल दो पाते हैं—असुण्णकाल और मिश्रकाल ।

❀"यह जीव अतीत (भूत) काल में किस गति में रहा था" यह बतलाना "संसार संचिट्ठणकाल" कहलाता है ।

१. एक नारकी का नेरीया नारकी से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ, वहां से फिर पीछा नारकी में उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयों को सातों नारकियों में

३—अहो भगवान् ! नारकी में कौनसा काल थोड़ा (अल्प) है और कौनसा काल बहुत है ? हे गौतम ! सब से थोड़ा असुण्ण काल, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा, उससे सुण्णकाल अनन्तगुणा । इसी तरह मनुष्य देवता की अल्प बहुत्व कह देनी चाहिएं । तिर्यञ्च में सबसे थोड़ा असुण्ण-काल, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा है ।

४—अहो भगवान् ! चार प्रकार के संसार संचि-ट्ठणकाल में कौन सा थोड़ा और कौन सा बहुत है । हे

छोड़कर गया था उनमें से एक भी वहां न मिले अर्थात् नरकों से निकल कर दूसरी गतियों में चले गये हों उसे सुण्णकाल (शून्यकाल) कहते हैं ।

२. एक नारकी का नेरीया नरक से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ, फिर वहां से वापिस नरक में उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयों को छोड़कर गया था उतने सब वहां मिलें अर्थात् वहां से एक भी मरा न हो और एक भी नया आकर उत्पन्न न हुआ हो उसे असुण्णकाल (अशून्यकाल) कहते हैं ।

३. एक नारकी का नेरीया नरक से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ, वहां से वापिस पीछा नरक में उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयों को छोड़कर गया था उनमें से कुछ निकल कर दूसरी गति में चले गये हों और कुछ नये उत्पन्न हो गये हों, यहां तक कि पहले नेरीयों में से एक भी नेरीया वहां मिले उसे मिश्र काल कहते हैं ।

गौतम ! सबसे थोड़ा मनुष्य संसार संचिट्ठण काल, उससे नारकी संसार संचिट्ठणकाल, असंख्यातगुणा, उससे देवता संसार संचिट्ठणकाल असंख्यातगुणा, उससे तिर्यंच संसार संचिट्ठण काल अनन्तगुणा है ।



६. असंजति (असंयत) भव्य द्रव्य देव का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहिले का उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवान् ! *असंजति (असंयत) भव्य द्रव्य देव मर कर कहां उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ऊपर के (नववें) ग्रैवेयक में उत्पन्न होता है ।

२—अहो भगवान् ! अविराधक साधुजी मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य पहले देवलोक में उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न होते हैं ।

३—अहो भगवान् ! विराधक साधुजी मर कर

---

*ऊपर से साधु की क्रिया करने वाले किन्तु भाव से चारित्र के परिणामों से रहित मिथ्यादृष्टि जीव असंजति (असंयत) भव्य द्रव्यदेव कहे गये हैं ।

कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट पहले देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

४ अहो भगवान ! अविराधक श्रावक मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य पहले देवलोक में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

५—अहो भगवान् ! विराधक श्रावक मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ज्योतिषी में उत्पन्न होते हैं ।

६ - अहो भगवान् ! असन्नी (विना मनवाले जीव अकाम निर्जरा करने वाले) तिर्यंच मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट वाण-व्यन्तर में उत्पन्न होते हैं ।

७ - अहो भगवान् ! कन्द मूल भक्षण करने वाले तापस मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ज्योतिषी में उत्पन्न होते हैं ।

८—अहो भगवान् ! कन्दर्पिया-कान्दर्पिक (हंसी मजाक करने वाले) साधु मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनभति में, उत्कृष्ट पहले देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

९—अहो भगवान् ! चरक, परिव्राजक, अम्वड़जी के मत के संन्यासी मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट पांचवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

१०—किल्विषी भावना वाले तथा आचार्य उपाध्याय आदि के अवर्णवाद बोलने वाले साधु मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट छठे देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

११—अहो भगवान् ! देशविरति सम्यग्दृष्टि सन्नी तिर्यंच मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट आठवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

१२—अहो भगवान् ! आजीविय–आजीविक (गोशालक) मत के मानने वाले साधु मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

१३—अहो भगवान् ! आभियोगिक (मंत्र जंत्रादि करने वाले साधु) मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

१४—अहो भगवान् ! सलिंगी दंसण वावण्णगा (साधु के लिंग को धारण करने वाले समकित से भ्रष्ट निन्हव आदि) मर कर कहां उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति में, उत्कृष्ट ऊपर के (नववें) ग्रैवेयक में उत्पन्न होते हैं ।



७. ❀असंज्ञी आयुष्य का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवान् ! असंज्ञी आयुष्य कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! चार प्रकार का है—नारकी असंज्ञी आयुष्य, तिर्यंच असंज्ञी आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी आयुष्य, देव असंज्ञी आयुष्य ।

२—अहो भगवान् ! असंज्ञी आयुष्य की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! नारकी देवता की असंज्ञी आयुष्य की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष की, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की । मनुष्य, तिर्यंच के असंज्ञी आयुष्य की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है ।

३—अहो भगवान् ! इन चार प्रकार के असंज्ञी आयुष्य में कौन थोड़ी और कौन बहुत है ? हे गौतम ! सब से थोड़ी देवता असंज्ञी आयुष्य, २ उससे मनुष्य आयुष्य असंख्यात गुणा, ३ उससे तिर्यंच असंज्ञी आयुष्य असख्यात गुणा, ४ उससे नारकी असंज्ञी आयुष्य असंख्यात गुणा ।

❀असंज्ञी-असन्नी आयुष्य-जो जीव असंज्ञी अवस्था में अगले भव का आयुष्य बांधे उसको यहां पर 'असंज्ञी-असन्नी-आयुष्य' कहा गया है ।

८. लोकस्थिति का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा छठा)

१—अहो भगवान् ! लोक की स्थिति कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! आठ प्रकार की है- आकाश के आधार तनुवात, तनुवात के आधार घनवात, (२) घनवात के आधार घनोदधि, (३) घनोदधि के आधार पृथ्वी, (४) पृथ्वी के आधार त्रस स्थावर जीव, (५) अजीव के आधार जीव, (६) जीव कर्म के आधार, (७) अजीव जीवों द्वारा संगृहीत (बद्ध) हैं और (८) जीव अजीवों (कर्मों) द्वारा संगृहीत (बद्ध) हैं।

लोक की स्थिति को समझाने के लिए मशक का दृष्टान्त दिया जाता है जैसे चमड़े की मशक को हवा से फुलाकर उसका मुंह बन्द कर दिया जाय। इसके बाद मशक के मध्य भाग में एक डोरा बांध कर ऊपर को मुंह खोल दिया जाय और उसकी हवा निकाल दी जाय। ऊपर के खाली भाग में पानी भर कर वापिस मुंह बन्द कर दिया जाय और बीच में बंधा हुआ डोरा खोल दिया जाय तो हे गौतम ! क्या वह पानी हवा के आधार से ऊपर के भाग में रहता है ? हां, भगवान् ! रहता है। हे गौतम ! इसी तरह लोक की स्थिति है यावत् जीव कर्मों द्वारा संगृहीत है।

दूसरा दृष्टान्त—जैसे हवा से फूली हुई मशक को कमर पर बांधकर कोई पुरुष अथाह पानी में प्रवेश करे

तो हे गौतम ! क्या वह पानी की सतह (ऊपर के भाग) पर रहता है ? हां भगवान् ! वह पानी की सतह पर रहता है, डूबता नहीं । हे गौतम ! इसी तरह लोक की स्थिति है । आकाश और वायु आदि आधराधेय भाव से रहे हुए हैं ।

३—अहो भगवान् ! क्या जीव और पुद्गल परस्पर संबद्ध यावत् *प्रतिबद्ध हैं ? हां, गौतम ! जीव और पुद्गल परस्पर सम्बद्ध यावत् प्रतिबद्ध हैं । जैसे—कोई पुरुष किसी जल से परिपूर्ण तालाब में छिद्रों वाली एक नाव डाले तो उन छिद्रों से पानी आते आते वह नाव पानी में डूब जाती है । फिर जिस तरह नाव और तालाव का पानी एकमेक होकर रहता है, उसी तरह जीव और पुद्गल परस्पर एकमेक होकर संबद्ध यावत् प्रतिबद्ध हैं ।

४—अहो भगवान् ! क्या सूक्ष्म अप्काय सदा काल गिरती है (बरसती है) ? हां, गौतम ! सूक्ष्म अप्काय सदा काल गिरती है ।

५—अहो भगवान् ! सूक्ष्म अप्काय कहां गिरती

---

* इसका पाठ यह है—

अण्णमण्णबद्धा, अण्णमण्णपुट्ठा, अण्णमण्ण ओगाढ़ा अण्णमण्णसिणेहपड़िबद्धा, अण्णमण्ण घड़त्ताए चिट्ठंति ।

अर्थ—परस्परबद्ध, परस्परस्पृष्ट, परस्परअवगाढ़, परस्पर स्नेह प्रतिबद्ध परस्पर घट्ट (परस्पर समुदाय रूप) रहते हैं ।

है ? हे गौतम ! सूक्ष्म अप्काय ऊपर नीचे तिरछी सब गिरती है।

६—अहो भगवान् ! क्या सूक्ष्म अप्काय बादर अप्पकाय की तरह परस्पर समायुक्त (इकट्ठी) होकर बहुत काल तक ठहर सकती है ? हे गौतम ! 'णो इणट्ठे समट्ठे' सूक्ष्म अप्काय समायुक्त होकर बहुत काल तक नहीं ठहर सकती है। किन्तु वह जल्दी ही नष्ट हो जाती है।



६. सोलह (१६) दण्डक का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा सातवां)

१-अहो भगवान् ! नरक में उत्पन्न होता हुआ नैरयिक क्या देश से देश उत्पन्न होता है (जीव अपने एक अवयव से नैरयिक का एक अवयव उत्पन्न होता है ?) या देश से सर्व उत्पन्न होता है ? या सर्व से देश उत्पन्न होता है ? या सर्व से सर्व उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! देश से देश उत्पन्न नहीं होता, देश से सर्व उत्पन्न नहीं होता, सर्व से देश उत्पन्न नहीं होता किन्तु सर्व से सर्व उत्पन्न होता है। इसी तरह वैमानिक तक २४ ही दण्डक में कह देना।

२—अहो भगवान् ! नरक में उत्पन्न होता हुआ नैरयिक क्या देश से देश का आहार लेता है ? (आत्मा

के एक भाग से आहार का एक भाग ग्रहण करता है ?) या देश से सर्व आहार लेता है ? या सर्व से देश आहार लेता है ? या सर्व से सर्व आहार लेता है ? हे गौतम ! देश से देश आहार नहीं लेता, देश से सर्व आहार नहीं लेता, किन्तु सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है । इसी तरह २४ दण्डक में कह देना ।

३ -अहो भगवान् ! नरक से उद्वर्तता (निकलता) हुआ नैरियक क्या देश से देश उद्ववर्तता है ? इत्यादि प्रश्न । हे गौतम ! जिस तरह उत्पन्न होने का कहा उसी तरह उद्वर्तन (नरक से निकलना) का भी कह देना । इसी तरह २४ दण्डक में कह देना ।

४—अहो भगवान् ! नरक से उद्वर्तता हुआ नैरयिक क्या देश से देश आहार लेता है ? इत्यादि प्रश्न । हे गौतम ! जिस तरह उत्पन्न होने के समय आहार लेने का कहा उसी तरह यहां भी कह देना अर्थात् सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है ।

५—अहो भगवान् ! नरक में उत्पन्न हुआ नैरियक क्या देश से देश उत्पन्न हुआ है ? इत्यादि प्रश्न । हे गौतम ! यह भी पहले की तरह कह देना अर्थात् सर्व से सर्व उत्पन्न हुआ है । ६—सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है ।

७-८—जिस तरह 'उत्पन्न हुआ' का कहा उसी तरह 'उद्धर्तन हुआ' भी कह देना ।

(१) उत्पन्न होता हुआ, (२) उत्पन्न होता हुआ आहार लेता है, (३) उद्वर्तता हुआ, (४) उद्वर्तता हुआ आहार लेता है, (५) उत्पन्न हुआ, (६) उत्पन्न हुआ आहार लेता है, (७) उद्वर्ता (निकला) हुआ, (८) उद्वर्ता हुआ आहार लेता है। ये ८ दण्डक (भांगा-आलापक) हुए।

६—अहो भगवान् ! नरक में उत्पन्न होता नैरयिक क्या आधे भाग से आधा भाग (उद्धेणं अद्धं) उत्पन्न होता है ? या आधे भाग से सर्व भाग (अद्धेणं सव्वे) उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न। हे गौतम ! जिस तरह पहले ८ भांगे कहे हैं उसी तरह यहां 'देश के स्थान में उद्धेणं अद्धे (आधे भाग से आधा भाग)' के भी ८ भांगे कह देना।

ये सब १६ भांगे (आलापक) हुए। २४ दण्डक के साथ गिनने से ३८४ भांगे हुए।

---

१०. अगुरु लघु का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा नववां)

१—अहो भगवान् ! जीव हल्का कैसे होता है और भारी कैसे होता है ? हे गौतम ! अठारह पापों से निवर्तने से जीव हल्का होता है और अठारह पापों में प्रवर्तने से जीव भारी होता है।

२—अहो भगवान् ! जीव कैसे संसार घटाता है और कैसे संसार बढ़ाता है ? हे गौतम ! अठारह पापों से निवर्तने से जीव संसार घटाता है और अठारह पापों में प्रवर्तने से जीव संसार बढ़ाता है ।

३—अहो भगवान् ! किस कारण से जीव संसार को ह्रस्व करता है (संसार स्थिति घटाता है) और किस कारण से जीव संसार को दीर्घ करता है (संसार स्थिति बढ़ाता है ?)हे गौतम ! अठारह पापों से निवर्तने से जीव संसार को ह्रस्व करता है और अठारह पापों में प्रवर्तने से जीव संसार को दीर्घ करता है ।

४—अहो भगवान् ! किस कारण से जीव संसार में परिभ्रमण करता है और किस कारण से जीव संसार सागर को तिरता है ? हे गौतम ! अठारह पापों में प्रवर्तने से जीव संसार परिभ्रमण करता है और अठारह पापों से निवर्तने से जीव संसार सागर तिरता है ।



११. अपच्चक्खाण और आधा कर्मादि का थोकड़ा

(भगवती सूत्र पहले शतक का उद्देशा नववां)

१—अहो भगवान् ! एक सेठ, एक दरिद्री, एक कृपण (कंजूस) और एक क्षत्रिय (राजा) क्या ये सब एक

साथ अपच्चक्खाण की क्रिया करते हैं ? हां, गौतम ! करते हैं। अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! अविरति के कारण वे सब अपच्चक्खाण की क्रिया करते हैं।

२—अहो भगवान् ! आधाकर्मी आहारादि (आहार, वस्त्र, पात्र, मकान) को सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है, क्या करता है, क्या चय करता है, क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आयुष्य कर्म को छोड़कर शिथिल बन्धन में बन्धी हुई सात कर्म प्रकृतियों को मजबूत बन्धन में बांधता है यावत् बारम्बार संसार परिभ्रमण करता है। अहो भगवान् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लंघन कर जाता है। वह पृथ्वी-काय के जीवों से लेकर त्रसकाय तक के जीवों की घात की परवाह नहीं करता और जिन जीवों के शरीर का वह भक्षण करता है, उन जीवों पर वह अनुकम्पा नहीं करता।

३—अहो भगवान् ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है यावत् क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आयुष्य कर्म को छोड़कर मजबूत बन्धन में बन्धी हुई सात कर्म प्रकृतियों को शिथिल बन्धन वाली करता है, आदि सारा वर्णन संवुडा (संवृत) अनगार की तरह कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि कदाचित आयुष्य कर्म बांधता है और

कदाचित् नहीं बांधता । इस प्रकार अन्त में संसार सागर को उल्लंघन कर जाता है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लंघन नहीं करता । वह पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के जीवों की रक्षा करता है । उन जीवों की अनुकम्पा करता है । इस कारण वह संसार सागर से तिर जाता है ।



१२. सवणे णाणे का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक दूसरे का उद्देशा पांचवां)

सवणे णाणे विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे ।
अण्णहये तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ।।

१—अहो भगवान् ! तथारूप के श्रमण माहण की पर्युपासना करने वाले पुरुष को उसकी पर्युपासना (सेवा) का क्या फल मिलता है ? हे गौतम ! श्रवण फल मिलता है अर्थात् सत्शास्त्रों का सुनना मिलता है ।

२—अहो भगवान् ! श्रवण का क्या फल है ? हे गौतम ! श्रवण का फल ज्ञान (जाणपणा) है ।

३—अहो भगवान् ! ज्ञान का क्या फल है ? हे गौतम ! ज्ञान का फल विज्ञान (विवेचन पूर्वक ज्ञान)है ।

४—अहो भगवान् ! विज्ञान का क्या फल है ? हे गौतम ! विज्ञान फल पच्चक्खाण है ।

५—अहो भगवान् ! पच्चक्खाण का क्या फल है ? हे गौतम ! पच्चक्खाण का फल संयम है ।

६—अहो भगवान् ! संयम का क्या फल है ? हे गौतम ! संयम का फल अनाश्रव (आश्रव रहित होना) है ।

७—अहो भगवान् ! अनाश्रव का क्या फल है ? हे गौतम ! अनाश्रव का फल तप है ।

८—अहो भगवान्! तप का क्या फल है ? हे गौतम! तप का फल वोदाण (कर्मों का नाश) है ।

९—अहो भगवान् ! वोदाण (कर्म नाश) का क्या फल है ? हे गौतम ! वोदाण का फल अक्रिया (निष्क्रि-यता-क्रिया रहित होना) है ।

१०—अहो भगवान् ! अक्रिया का क्या फल है ? हे गौतम ! अक्रिया का फल सिद्धी है ।



१३. श्री पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों का प्रथम भाग

आर्य का थोकड़ा (पन्नवणा सूत्र प्रथम पद)

हे भगवन् ! आर्य के कितने भेद हैं ?

हे गौतम ! आर्य के दो भेद-ऋद्धि प्राप्त (इड्ढिपत्ता) और अऋद्धि प्राप्त (अणिड्ढिपत्ता) ।

ऋद्धि प्राप्त आर्य के छह भेद–तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण (जंघाचारण, विद्याचारण) और विद्याधर ।

अऋद्धि प्राप्त आर्य के नौ भेद–१ क्षेत्र आर्य, २ जाति आर्य, ३ कुल आर्य, ४ कर्म आर्य, ५ शिल्प आर्य, ६ भाषा आर्य, ७ ज्ञान आर्य, ८ दर्शन आर्य, ९ चारित्र आर्य ।

क्षेत्र आर्य के भेद—भरत क्षेत्र में बत्तीस हजार देश हैं इनमें से साढे पच्चीस आर्य देश हैं । शेष ३१९७४॥ देश अनार्य हैं । इन साढे पच्चीस आर्य देशों में रहने वाले क्षेत्रार्य हैं । आर्य देश और उनकी राजधानी के नाम इस प्रकार हैं:—१ मगध देश-राजगृही नगरी २ अंगदेश-चम्पा-नगरी ३ वंग देश-ताम्रलिप्ती नगरी ४ कलिंग देश-कंचन-पुर नगर ५ काशी देश-वाराणसी नगरी ६ कौशल देश-साकेतपुर नगर ७ कुरुदेश-गजपुर नगर ८ कुशावर्त देश-

सौरिकपुर नगर ९ पंचाल देश—कंपिलपुर नगर १० जंगल देश-अहिच्छत्रा नगरी ११ सौरठ देश-द्वारका नगरी १२ विदेह देश-मिथिला नगरी १३△वत्स देश-कोशाम्बीनगरी १४ शांडिल्य देश-नंदीपुर नगर १५ मलयदेश भद्दिलपुर नगर १६ वत्स देश-विराटपुर नगर १७ वरण देश-अच्छा-पुरीनगरी १८ दशार्ण देश-मृत्ति कावतीनगरी १९ चेदि देश-शौक्तिकावती नगरी २० सिन्धु सौवीर देश-वीतभय नगर २१ शूरसेन देश-मथुरा नगरी २२ भंग देश-अपापापुरी नगरी २३ पुरिवर्त देश-मासानगरी २४ कुणाल देश-श्राव-स्तीनगरी २५ लाटदेश-कोटिवर्षनगर २५½ ●आधा केकय देश-श्वेताम्बिकानगरी। इन आर्य देशों में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि का जन्म होता है।

△ थोकड़ों के जानकार श्रावक (१३) कच्छदेश-कौशाम्बी नगरी कहते हैं। किन्तु शास्त्र के मूल पाठ में (१३) वत्स देश है अतः शास्त्रानुसार यहां 'वत्सदेश' रखा गया है।

● थोकड़े में आर्य देशों के गांवों की संख्या भी कहते हैं जो इस प्रकार है—१ मगध देश—१,६६,००,००० गांव २ अंग देश—५००,००० गांव ३ बंग देश—१८,००,००० गांव ४ कलिंग देश—२०,००,००० गांव ५ काशी देश—१,९०,००० गांव ६ कौशल देश—९९,००० गांव ७ कुरु देश—८,२३,४२५ गांव ८ कुशावर्त देश—१,४३,००० गांव ९ पंचाल देश—३,६३००० गांव १० जंगल देश—१,४५,००० गांव ११ सोरठ देश—६,८०,५२६

जाति आर्य के छह भेद—१ अम्बष्ठ, २ कलिंद, ३ विदेह, ४ वेदग, ५ हरित, ६ चुंचुण ।

कुल आर्य के छह भेद—१ उग्रकुल, २ भोग कुल, ३ राजन्य कुल, ४ इक्ष्वाकु कुल, ५ ज्ञात कुल, ६ कौरव कुल ।

कर्म आर्य अनेक प्रकार के हैं जैसे—कपड़े का व्यापार, सूत का व्यापार, कपास का व्यापार, किराणे का व्यापार, मिट्टी के बर्तनों का व्यापार, सोने चांदी जवाहरात का व्यापार आदि ।

शिल्प आर्य के अनेक भेद हैं—दर्जी, जुलाहा, ठंठारा, चित्रकार, लेखक आदि विवध शिल्प करने वाले ।

गांव १२ विदेह देश—८,००० गांव १३ वत्स देश—(कौशाम्बी नगरी) २८,००० गांव १४ शांडिल्य देश—२१,००० गांव १५ मलय देश—७०,००० गांव १६ वत्स देश—२,८८,००० गांव १७ वरण देश—२४,००० गांव । १८ दशार्ण देश—१८,००० गांव १९ चेदि देश—४२,००० गांव २० सिन्धु सौवीर देश—६,८०,५०० गांव २१ शूरसेन देश—८,००० गांव २२ भंग देश—३६,००० गांव २३ पुरिवर्त देश—५२,४५० गांव २४ कुणाल देश—६३००० गांव २५ लाट देश—७,१३,००० गांव २५-१/२ आधा केकय देश—१,२९,००० गांव । केकय देश में कुल २,५८,००० गांव है । १,२९,००० गांव अनार्य हैं और १,२९,००० गांव आर्य हैं, इनमें ७,००० गांव खालसे हैं।

भाषा आर्य—जो अर्धमागधी भाषा में बोलते हैं और ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करते हैं वे भाषा आर्य हैं ।

ज्ञान आर्य के ५ भेद—१ मति ज्ञान आर्य, २ श्रुत ज्ञान आर्य, ३ अवधि ज्ञान आर्य, ४ मनः पर्यय ज्ञान आर्य, ५ केवल ज्ञान आर्य ।

दर्शन आर्य के दो भेद–सराग दर्शन आर्य और वीतराग दर्शन आर्य ।

सराग दर्शन आर्य के दस भेद—

१ निसर्ग रुचि – बिना किसी उपदेश के स्वयमेव, जातिस्मरण आदि ज्ञान से, जिन भाषित जीवादि तत्त्वों पर 'ये इसी प्रकार हैं अन्यथा नहीं हैं' इस प्रकार श्रद्धा करना ।

२ उपदेश रुचि—छद्मस्थ अथवा जिन भगवान् का उपदेश सुनकर जिन भाषित तत्त्वों पर श्रद्धा करना ।

३ आज्ञा रुचि—जिन प्रवचन पर केवल जिज्ञासा होने से ही श्रद्धा करना । जिनाज्ञा ही मेरे लिये तत्त्वरूप है न कि तर्क–इस प्रकार आज्ञा रुचि वाला जिनाज्ञा को ही प्रधानता देता है और जिनाज्ञा ही उसकी श्रद्धा का आधार है ।

४ सूत्र रुचि—आचारांग आदि अंग प्रविष्ट सूत्र और आवश्यक दशवैकालिक आदि अंग बाह्य सूत्र का अध्ययन करते हुए सम्यक्त्व प्राप्त करना ।

५ बीज रुचि—पानी में तेल बिन्दु की तरह क्षयोप-

शम विशेष से एक पद के अध्ययन से अनेक पदों का ज्ञान प्राप्त कर उन पर श्रद्धा करना ।

६ अधिगम रुचि—श्रुत ज्ञान यानी अंग उपांग तथा प्रकीर्णक शास्त्रों का अर्थ सहित अध्ययन कर श्रद्धा करना ।

७ विस्तार रुचि—प्रमाण और नयों से द्रव्यों की सभी पर्यायों को जानकर श्रद्धा प्राप्त करना ।

८ क्रिया रुचि—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, विनय, समिति गुप्ति सम्बन्धी क्रियाओं का आचरण करते हुए सम्यक्त्व प्राप्त करना ।

९ संक्षेप रुचि—जिसे अन्य दर्शनों का आग्रह नहीं है और जैनागमों का भी जो जानकार नहीं है ऐसे व्यक्ति की जिनोक्त तत्त्वों में सामान्य रूप से श्रद्धा होना ।

१० धर्म रुचि—जिनोक्त धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों पर और श्रुत तथा चारित्र धर्म पर श्रद्धा होना ।

सम्यक्त्व के आठ आचार– (१) निःशंकित-जिन प्रवचनों में शंका न रखना । (२) निष्कांक्षित-परदर्शन की आकांक्षा-इच्छा न करना । (३) निर्विचिकित्सा-धर्म क्रिया के फल में सन्देह न रखना । (४) अमूढ दृष्टि-बाल तपस्वी के विद्या और तप के चमत्कार से मोहित होकर श्रद्धा से विचलित न होना ।(६)उपबृंहण-स्वधर्मी के सद्गुणों की प्रशंसा कर उनकी वृद्धि करना । (६) स्थरीकरण-धर्म से डिगते हुए को उपदेशादि द्वारा धर्म में स्थिर

करना । (७) वात्सल्य-स्वधर्मी के प्रति वत्सल भाव रख-कर उनका उपकार करना । (८) प्रभावना-धर्म कथा आदि से जिनशासन का प्रभाव प्रसिद्धि बढ़ाना ।

वीतराग दर्शन आर्य के दो भेद—(१) उपशांत कषाय वीतराग दर्शन आर्य (२) क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य । क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य के दो भेद-१ छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य २ केवली क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य(१) छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य के दो भेद -१ स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य २ बुद्ध बोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य । (२) केवली क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य के दो भेद—१ सयोगी केवली क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य २ अयोगी केवली क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य । इनमें प्रत्येक के प्रथम समय और अप्रथम समय के अथवा चरम समय और अचरम समय के भेद से दो दो भेद होते हैं ।

चारित्र आर्य के पांच भेद—१ सामायिक चारित्र आर्य २ छेदोपस्थानीय चारित्र आर्य, ३ परिहार विशुद्ध चारित्र आर्य ४ सूक्ष्मसम्पराय चारित्र आर्य ५ यथाख्यात चारित्र आर्य ।

△

१४. उपपात समुद्घात तथा स्वस्थान का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र दूसरा पद)

(१) पांच सूक्ष्म स्थावर के अपर्याप्त और पर्याप्त△ का उपपात, समुद्घात और स्वस्थान सम्पूर्ण लोक में है। (२) अपर्याप्त बादर तेजस्काय के सिवाय शेष चार बादर स्थावर के अपर्याप्त का उपपात और समुद्घात सारे लोक में है और स्वस्थान लोक के असंख्यातवें भाग में है, किंतु अपर्याप्त बादर वायुकाय का स्वस्थान लोक के बहुत से असंख्यातवें भागों में है।

(३) अपर्याप्त बादर तेजस्काय का उपपात दोनों❀

△दूसरे स्थान से आकर उत्पन्न होना उपपात है। समुद्घात का आशय मारणान्तिक समुद्घात से है। जीव के रहने का स्थान स्वस्थान है।

❀ दो ऊर्ध्व कपाट—पैंतालीस लाख योजन प्रमाण वाले मनुष्य लोक के दोनों ओर पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण में पैंतालीस लाख योजन की मोटाई वाले दो ऊर्ध्व कपाट निकले हुए हैं। ये दोनों कपाट चारों दिशा में स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त गये हुए हैं और केवली समुद्घात के कपाट की तरह ऊपर और नीचे लोकान्त को स्पर्श करते हैं। आशय यह है कि कपाटाकार स्थित उपरोक्त परिमाण वाले आकाश क्षेत्र से अपर्याप्त बादर तेउकाय के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

ऊर्ध्व कपाटों में तथा तिर्यक् लोक के तट्ट यानी थाले में है। समुद्घात सारे लोक में है तथा स्वस्थान लोक के असंख्यातवें भाग में यानी मनुष्य लोक में है।

(४) पर्याप्त बादर तेजस्काय का उपपात और समुद्घात लोक के असंख्यातवें भाग में है और स्वस्थान मनुष्यलोक में है।

(५) पर्याप्त बादर वायुकाय का उपपात, समुद्घात और स्वस्थान लोक के बहुत से असंख्यातवें भागों में है।

(६) पर्याप्त बादर वनस्पतिकाय का उपपात समुद्घातसारे लोक में है और स्वस्थान लोक के असंख्यातवें भाग में है।

(७) पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय, पर्याप्त बादर अप्काय तथा शेष १९ दंडकों के पर्याप्त अपर्याप्त जीवों का उपपात समुद्घात और स्वस्थान लोक के असंख्यातवें भाग में है। इतना विशेष जानना कि मनुष्य केवली समुद्घात की अपेक्षा सारे लोक में है।



तिर्यक् लोक के तट्ट यानीं थाले का आशय स्वयंभूरमण समुद्र की वेद्रिका पर्यंत अठारहसौ योजन की मोटाई वाले सारे तिर्यक्लोक से है।

१५. विरह द्वार का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र का छठा पद)

नरक तिर्यंच मनुष्य और देव इन चारों गतियों में उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय का, उत्कष्ट बारह मुहूर्त का है। पहली नरक भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक तथा सम्मूर्छिम मनुष्य के उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त का है। दूसरी नरक से सातवीं नरक तक उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय का है उत्कृष्ट विरह दूसरी नरक में सात दिन का, तीसरी नरक में १५ दिन का, चौथी नरक में एक महीने का, पांचवीं नरक में दो महीने का, छठी नरक में चार महीने का और सातवीं नरक में छह महीने का है। तीसरे देवलोक से सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय का है और उत्कृत्ट विरह तीसरे देवलोक का ९ दिन और २० मुहूर्त का, चौथे देवलोक का १२ दिन १० मुहूर्त का, पांचवे देवलोक का साढे बावीस दिन का, छठे देवलोक का ४५ दिन का, सातवें देवलोक का ८० दिन का, आठवें देवलोक का १०० दिन का, नवें दशवें देवलोक का संख्यात महीनों का (बारह महीने के अन्दर का) ग्यारहवें, बारहवें, देवलोक को संख्यात वर्षों का (१०० वर्षों के अन्दर का) नवग्रैवेयक की नीचे की त्रिक का संख्यात सैंकड़ों वर्षों का मध्यम त्रिक का संख्यात हजारों वर्षों का, ऊपर की त्रिक का संख्यात लाख वर्षों का विजय आदि चार अनुत्तर विमान

का पल्योपम के असंख्यातवें भाग का और सर्वार्थ सिद्ध का पल्योपम के संख्यातवें भाग का है। सिद्ध भगवान् और चौसठ इन्द्रों का विरह जघन्य एक समय का उत्कृष्ट छह महीने का है।

चन्द्र सूर्य का ग्रहण की अपेक्षा विरह पड़े तो जघन्य छह महीने का उत्कृष्ट चन्द्र का ४२ महीनों का और सूर्य का ४८ वर्ष का। चंद्र सूर्य दोनों का संयुक्त रूप से ग्रहण की अपेक्षा विरह पड़े तो जघन्य १५ दिन का उत्कृष्ट छह महीने का। पांच स्थावर का उत्पन्न होने का विरह नहीं पड़ता। तीन विकलेन्द्रिय और असंज्ञी तिर्यंच में विरह पड़े तो जघन्य एक समय का उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का। संज्ञी तिर्यंच और संज्ञी मनुष्य में विरह पड़े तो जघन्य एक समय का उत्कृष्ट १२ मुहूर्त का। समदृष्टि का विरह सात दिन का, श्रावक का विरह १२ दिन का और साधु का विरह १५ दिन का पड़ता है।

❀ चार गति, सात नारकी, दस भवनपति, पांच

❀ तीन चारित्र (परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात), तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव का विरह पड़े तो जघन्य चौरासी हजार वर्ष से अधिक, उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) अठारह कोटि-कोटि (कोड़ा-कोड़ी) सागरोपम का। दो चारित्र (सामायिक और छेदोपस्थापनीय), चार तीर्थ, पांच महाव्रत का विरह जघन्य त्रेसठ हजार वर्ष से अधिक उत्कृष्ट देशोन अठारह कोटि-कोटि सागरोपम का। यह विरह-काल भारत ऐरवत क्षेत्रों की अपेक्षा जानना।

स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, सम्मूर्छिम मनुष्य, गर्भज मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी, बारह देवलोक, नवग्रैवेयक की त्रिक तीन, चार अनुत्तर विमान का एक, सर्वार्थसिद्ध तथा सिद्ध ये कुल ५३ बोल पन्नवणा सूत्र में विरह द्वार में कहे हैं। चौसठ इन्द्र, सूर्य चन्द्र के ग्रहण के दो, समदृष्टि, श्रावक और साधु इन छह बोलों का विरह इस थोकड़े में बताया है वह पन्नवणा सूत्र में नहीं है। अन्य जगह का है।

जिस तरह उत्पन्न होने का विरह कहा उसी तरह उद्वर्तन (निकलने) का विरह भी जानना चाहिए। ज्योतिषी और वैमानिक में उद्वर्तन न कह कर च्यवन कहना चाहिए। सूर्य चन्द्र के ग्रहण के दो, सिद्ध, समदृष्टि श्रावक और साधु के चार कुल छह बोल उद्वर्तन में नहीं कहने चाहिए अतः उद्वर्तन के ५३ बोल होते हैं।



१६. सान्तर और निरन्तर का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र का छठा पद)

नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देव गति, सात नारकी, दस भवनपति, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, संज्ञी मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी, बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक की तीन त्रिक, पांच अनुत्तर विमान और सिद्ध इन ५१ बोलों में जीव निरन्तर भी उपजते हैं और सान्तर भी

उपजते हैं। पांच स्थावर में जीव निरन्तर उपजते रहते हैं। ये ५६ बोल हुए।

उपजने की तरह उद्वर्तन (निकलने) का भी कह देना चाहिए अन्तर इतना है कि पांच स्थावर निरन्तर निकलते रहते हैं। सिद्धों का उद्वर्तन नहीं कहना। शेष जीव निरन्तर और सान्तर निकलते रहते हैं। ज्योतिषी वैमानिक में उद्वर्तन न कह कर च्यवन कहना। इस तरह ५५ बोल उद्वर्तन में कहने चाहिए।



१७. उत्पत्ति, उद्वर्तन और च्यवन का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र छठा पद)

नरक गति में एक समय में जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्यात यावत् असंख्यात उत्पन्न होते हैं। नरक गति की तरह सात नरक, दस भवनपति, तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, सम्मूर्छिम यानी असंज्ञी मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी और आठ देवलोक ये ३३ बोल भी एक समय में जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्यात यावत् असंख्यात उत्पन्न होते हैं। चार स्थावर प्रत्येक समय में निरन्तर असंख्यात उत्पन्न होते हैं। वनस्पति स्वस्थान की अपेक्षा यानी वनस्पति मर कर वनस्पति में प्रत्येक समय में निरन्तर अनन्त उत्पन्न होते हैं। परस्थान की अपेक्षा पृथ्वी आदि के जीव मर कर वनस्पति में उत्पन्न होते हैं तो प्रत्येक समय निरन्तर असंख्यात उत्पन्न

होते हैं। गर्भज मनुष्य, नवें से बारहवें देवलोक, नव-ग्रैवेयक की तीन त्रिक, पांच अनुत्तर विमान इन तेरह बोल में एक समय में जघन्य एक दो तीन उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। सिद्ध भगवान् एक समय में एक दो तीन यावत् १०८ उत्पन्न होते हैं। ये ५३ (१+३३+४+१+१३+१=५३) बोल हुए।

जिस तरह उत्पन्न होने के ५३ बोल कहे उसी तरह सिद्ध भगवान् के सिवा ५२ बोल उद्वर्तन के भी कहना। ज्योतिषी और वैमानिक देवों में उद्वर्तन की जगह च्यवन कहना चाहिए। सिद्ध भगवान् सिद्ध गति से निकलते नहीं अतः उनका च्यवन नहीं कहना।



१८. गति आगति का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र का छठा पद)

पहली नारकी में ११ की आगति-पांच-संज्ञी तिर्यंच, पांच असंज्ञी तिर्यंच और असंख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। इन ग्यारह स्थानों से आकर जीव पहली नारकी में उत्पन्न होते हैं। पहली नारकी की ६ की गति-पांच संज्ञी तिर्यंच और संख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य अर्थात् पहली नरक से निकलकर जीव इन छः स्थानों में उत्पन्न होते हैं।

दूसरी नारकी की आगति ६ की—पांच संज्ञी तिर्यंच और संख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। तीसरी

नारकी की आगति ५ की—भुजपरिसर्प के सिवाय चार संज्ञी तिर्यंच और संख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। चौथी नारकी की आगति ४ की उपरोक्त ५ में खेचर कम करना। पांचवीं नारकी की आगति ३ की—उपर्युक्त ४ में से स्थलचर नहीं कहना। छठी नारकी की आगति चार की—जलचर और संख्यात वर्षों की आयु वाले स्त्री, पुरुष और नपुंसक की। दूसरी नारकी से छठी नारकी तक गति ६ की-पांच संज्ञी तिर्यंच और संख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। सातवीं नारकी की आगति ३ की-जलचर, कर्मभूमि का पुरुष और नपुंसक। सातवीं नारकी की गति ५ की—पांच सज्ञी तिर्यंच की।

भवनपति व्यन्तर में १६ की आगति-पांच असंज्ञी, तिर्यंच, पांच संज्ञी तिर्यंच, संख्यात वर्षों की आयुवाला कर्मभूमि मनुष्य, अकर्मभूमि मनुष्य, छप्पन अन्तर्द्वीपों के मनुष्य, स्थलचर युगलिया और खेचर युगलिया। इनकी गति ९ की—पांच संज्ञी तिर्यंच, पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और संख्यात वर्षों की आयु वाला कर्मभूमि मनुष्य। ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में ९ की आगति—पांच संज्ञी तिर्यंच, संख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य, असंख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य, अकर्मभूमि मनुष्य और स्थलचर युगलिया। इनकी गति ९ की भवनपति के अनुसार कहना। तीसरे से आठवें देवलोक में ६ की आगति और ६ की गति—पांच संज्ञी तिर्यंच और संख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। नवें से बारहवें देवलोक में ४ की आगति-मिथ्यात्वी, अविरति

सम्यक् दृष्टि, देशविरति श्रावक और सर्वविरति साधु। इनकी गति १ की–संख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। नवग्रैवेयक में २ की आगति–स्वलिंगी सम्यग्दृष्टि और स्वलिंगी मिथ्यदृष्टि अर्थात् मिथ्यादृष्टि है पर जैन साधु के वेष में है। नवग्रैवेयक की गति १ की–संख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। पांच अनुत्तर विमान में आगति २ की–ऋद्धि प्राप्त अप्रमादी साधु, तथा अऋद्धि प्राप्त अप्रमादी साधु, इनकी गति १ की–संख्यात वर्षो की आयुवाला कर्मभूमि मनुष्य।

पृथ्वीकाय अप्काय और वनस्पतिकाय में ७४ की आगति–तिर्यंच और मनुष्य के ४९ बोलों की लड़ (*४६ तिर्यंच के तथा संज्ञी मनुष्य के अपर्याप्त, पर्याप्त और सम्मूर्छिम मनुष्य) तथा २५ देवता की (दस भवनपति, आठ व्यन्तर, पांच ज्योतिषी और पहला दूसरा देवलोक), इनकी गति उपरोक्त तिर्यंच और मनुष्य ४९ बोल की। तेजस्काय और वायुकाय में आगति उपर्युक्त तिर्यंच मनुष्य के ४९ बोल की और गति ४६ की–मनुष्य के ३ बोल के सिवा शेष ४६ तिर्यंच की। तीन विकलेन्द्रिय में आगति और गति उपरोक्त तिर्यंच और मनुष्य के ४८ बोल की। तिर्यंच पंचेन्द्रिय में आगति ८७ की–उपरोक्त तिर्यंच मनुष्य के ४९, भवनपति से आठवें देवलोक तक देवता के ३१ और सात नारकी की। इनकी गति ९२ की—उप-

---

* यहां वनस्पति के छह भेद न कर सूक्ष्म वादर के पर्याप्त अपर्याप्त ये चार भेद किए हैं।

रोक्त ८७ तथा असंख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य यानी युगलिया, असंख्यात वर्षों की आयु का अकर्म-भूमि मनुष्य (युगलिया), अन्तरद्वीप के मनुष्य (युगलिया), स्थलचर युगलिया, खेचर युगलिया। मनुष्य में आगति ९६ की – उपरोक्त तिर्यंच मनुष्य के ४९ बोलों में से तैजस और वायु के ८ बोल छोड़कर शेष ४१ बोल, ४९ देवता (१० भवनपति, ८ व्यन्तर, ५ ज्योतिषी, १२ देवलोक, ९ नवग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान) तथा ६ नारकी सातवीं नारकी के सिवा। मनुष्य की गति १११ की—उपर्युक्त ९६, तेजस्काय वायुकाय के ८, सातवीं नारकी, असंख्यात वर्ष की आयु का कर्मभूमि मनुष्य, असंख्यात वर्ष की आयु का अकर्मभूमि मनुष्य, अन्तरद्वीप, स्थलचर युगलिया, खेचर युगलिया, और सिद्धगति।



१९. आयुष्य बंध का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र छठा पद)

नारकी के नैरयिक, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव अपनी-अपनी आयु के छह माह शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय वायुकाय, वनस्पति काय और तीन विकलेन्द्रिय के जीव के सोपक्रम और निरुपक्रम दो प्रकार की आयु होती है इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले होते हैं वे अपनी अपनी आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं।

सोपक्रम आयु वाले कभी अपनी आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर, कभी अपनी आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग अर्थात् नवां भाग शेष रहने पर और कभी अपनी आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग अर्थात् सताईसवां भाग शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। कभी अपनी आयु के सताईसववें भाग का तीसरा भाग अर्थात् इक्यासीवां भाग शेष रहने पर, कभी इक्यासीवें भाग का तीसरा भाग अर्थात् २४३ वां भाग शेष रहने पर और कभी २४३ वें भाग का तीसरा भाग अर्थात् ७२९ वां भाग शेष रहने पर यावत् अन्तमुर्हूर्त शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य संख्यात वर्ष की आयु वाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले होते हैं। असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य निरूपक्रम आयु वाले होते हैं। वे अपनी आयु के छह माह शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य निरूपक्रम और सोपक्रम—दोनों प्रकार की आयु वाले होते हैं। पृथ्वीकाय की तरह ये दोनों कह देना=२४।

आयुष्य वंध के छह भेद हैं– *जातिनाम निधत्तायु,

---

* जतिनाम कर्म के साथ निधत्तायु यानी निषेक को प्राप्त आयु जातिनाम निधत्तायु है। भोगने के लिए कर्म पुद्गलों की रचना को निषेक कहते हैं। इसी तरह शेष गति आदि भी समझना।

गतिनाम निधत्तायु, स्थितिनाम निधत्तायु, अवगाहना नाम निधत्तायु, प्रदेश नाम निधत्तायु, और अनुभाग नाम निधत्तायु। सामान्य जीव और चौवीस दण्डक में यह छह प्रकार का आयु बंध जानना चाहिए। २५×६=१५०।

उक्त छह प्रकार का आयुष्य बंध १-२-३ यावत् ८ आकर्ष से बंधता है। अध्यवसाय को धारारूप प्रयत्न विशेष से कर्म पुद्गलों को ग्रहण करना आकर्ष कहलाता है, जैसे गाय पानी पीती हुई भय से इधर उधर देखती देखती है और रुक-रुक कर पानी पीती है इसी प्रकार जीव भी जब आयुबंध योग्य तीव्र अध्यवसाय से जातिनाम निधत्तायु बांधता है तो एक आकर्ष से बांध लेता है। मन्द अध्यवसाय होने पर दो तीन आकर्ष से, मन्दतर अध्यवसाय होने पर तीन चार आकर्ष से और मन्दतम अध्यवसाय होने पर पांच छह सात अथवा आठ आकर्ष से आयु बांधता है। यह आकर्ष का नियम आयुष्य के साथ वंधने वाले जाति गति आदि प्रकृतियों के लिए है। समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक में उक्त छः प्रकार का आयुष्य बंध १-२-३ यावत् ८ आकर्ष से बंधता है। २५×६×८=१२००।

आयु कर्म के साथ जाति, गति, स्थिति, अवगाहना, प्रदेश और अनुभाग नाम का बंध होता है इसलिए इनसे विशिष्ट आयु को जातिनाम निधत्तायु गतिनाम निधत्तायु यावत् अनुभाग नाम निधत्तायु जानना।

एक दो तीन यावत् आठ आकर्ष से जातिनाम यावत् अनुभाग नाम निधत्तायु बंध करने वाले जीवों की अल्प बहुत्व इस प्रकार है—सबसे थोड़े जीव आठ आकर्ष से आयु बंध करने वाले, सात आकर्ष से आयुबंध करने वाले संख्यात गुणा, छह आकर्ष से आयुबंध करने वाले संख्यात-गुणा, पांच आकर्ष से आयुबंध करने वाले संख्यातगुणा, इसी तरह क्रमशः चार, तीन, दो और एक आकर्ष से आयुबंध करने वाले उत्तरोत्तर संख्यात गुणा जानना। समुच्चय जीव की तरह चौवीस दण्डक कहना चाहिए। २५×६×८=१२०० । कुल २४+१५०+१२००+१२००=२५७४ ।



२०. श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र का छठा पद)

इस थोकड़े में यह बताया गया है कि जीव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं अर्थात् उनके श्वासोच्छ्वास का कितना विरह है।

नारकी के नैरयिक लगातार निरन्तर*श्वासोच्छ्वास

---

* शास्त्र में 'आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नोससंति वा' पाठ है। टीकाकार के अनुसार 'आणमंति, पाणमंति' कियाओं का अर्थ स्पष्ट करने के लिए 'ऊससंति

लेते रहते हैं। आचार्यों ने उनकी निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेने की क्रिया को लुहार की धमनी से उपमा दी है। असुरकुमार के देवता जघन्य सात □स्तोक उत्कृष्ट एक पक्ष से कुछ अधिक समय से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। भवनपति के शेष ९ निकाय के देवता और व्यन्तर देवता जघन्य सात स्तोक से उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त से एवं ज्योतिषी देवता जघन्य उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। पहले देवलोक के देवता जघन्य प्रत्येक मुहूर्त से उत्कृष्ट दो पक्ष से और दूसरे देवलोक के देवता जघन्य कुछ अधिक प्रत्येक मुहूर्त से उत्कृष्ट कुछ अधिक दो पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

तीसरे देवलोक के देवता जघन्य दो पक्ष से उत्कृष्ट सात पक्ष से और चौथे देवलोक के देवता जघन्य कुछ अधिक दो पक्ष से उत्कृष्ट कुछ अधिक सात पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। पांचवें देवलोक के देवता जघन्य सात पक्ष से उत्कृष्ट दस पक्ष से, छठे देवलोक के देवता जघन्य

नीससंति' क्रियाएं दी हैं और इनका अर्थ ऊपर श्वास लेना और नीचा श्वास छोड़ना अर्थात् श्वास लेना और श्वास छोड़ना है। टीकाकार ने इन चारों का अलग-अलग अर्थ भी दिया है। तदनुसारं 'आणमंति, पाणमंति' का अर्थ श्वास निःश्वास की आभ्यन्तर क्रिया है और 'ऊससंति नीससंति' का अर्थ श्वास निःश्वास की बाह्य क्रिया है।

□ सात श्वासोच्छ्वास का एक स्तोक होता है।

दस पक्ष से उत्कृष्ट १४ पक्ष से, सातवें देवलोक के देवता जघन्य १४ पक्ष से उत्कृष्ट १७ पक्ष से और आठवें देवलोक के देवता जघन्य १७ पक्ष से उत्कृष्ट १८ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नवें देवलोक से बारहवें देवलोक तक तथा पहले नवग्रैवेयक से नवें ग्रैवेयक तक जघन्य उत्कृष्ट में एक एक पक्ष बढ़ाना चाहिए। इस तरह नवमे ग्रैवेयक के देवता जघन्य ३० उत्कृष्ट ३१ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। चार अनुत्तर विमान के देवता जघन्य ३१ उत्कृष्ट ३३ पक्ष से और सर्वार्थसिद्ध के देवता जघन्य उत्कृष्ट ३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। देवताओं में जिनमें जितने सागरोपम की स्थिति है वे उतने ही पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं अर्थात् उनका उतने ही पक्ष का श्वासोच्छ्वास का विरह काल है। देवों की जितने पल्योपम की स्थिति होती है वे उतने ही प्रत्येक मुहूर्त से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव सात स्तोक से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य का श्वासोच्छ्वास लेना नियत नहीं है अतः उनके श्वासोच्छ्वास का विरह काल भी अनियत ही जानना चाहिए।



२१. संज्ञा का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र आठवां पद)

△ संज्ञा दस प्रकार की है—आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा, क्रोध संज्ञा, मान संज्ञा, माया संज्ञा, लोभ संज्ञा, ओघ संज्ञा और लोक संज्ञा। समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक में से दस संज्ञाएं पाई जाती हैं।

चार गति की अपेक्षा आहार आदि चार संज्ञाओं का अल्पबहुत्व इस प्रकार है। नारकी में सबसे थोड़े मैथुन संज्ञा वाले, आहार संज्ञा वाले संख्यात गुणा, परिग्रह संज्ञा वाले, आहार संज्ञा वाले संख्यात गुणा, परिग्रह संज्ञा वाले संख्यातगुणा और भयसंज्ञा वाले संख्यातगुणा हैं। तिर्यंच में सबसे थोड़े परिग्रह संज्ञा वाले, मैथुन संज्ञा वाले संख्यातगुणा, भय संज्ञा वाले संख्यातगुणा, और आहार संज्ञा

△ वेदनीय और मोह के उदय से तथा ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण के क्षयोपशम से होने वाली अनेक प्रकार की आहारादि की प्राप्ति की क्रिया को संज्ञा कहते हैं। इन दस संज्ञाओं में पहली आठ संज्ञाओं का अर्थ स्पष्ट है। सामान्य ज्ञान की क्रिया को ओघ संज्ञा और विशेष ज्ञान की क्रिया को लोक संज्ञा कहते हैं। कई आचार्य कहते हैं कि सामान्य प्रवृत्ति जैसे बेल का वाड़ पर चढ़ना ओघ संज्ञा है और लोक की देखा-देखी प्रवृत्ति करना लोक संज्ञा है।

वाले संख्यातगुणा हैं। मनुष्य में सबसे थोड़े भय संज्ञा वाले, आहार संज्ञा वाले संख्यातगुणा, परिग्रह संज्ञा वाले संख्यातगुणा और मैथुन संज्ञा वाले संख्यातगुणा हैं। देवता में सबसे थोड़े आहार संज्ञा वाले, भय संज्ञा वाले संख्यातगुणा, मैथुन संज्ञा वाले संख्यातगुणा और परिग्रह संज्ञा वाले संख्यातगुणा है। इसे याद रखने के लिए थोकड़े के जानकारों ने 'मा आ पी, पे मा भी, भ आ पी, अ भ मा, संखेज्जगुणा अहिया भवन्ति' यह गाथा जोड़ रखी है। इसमें संज्ञाओं के प्रथम तीन-तीन अक्षर क्रमशः नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के लिये दिये हैं और शेष जो संज्ञा रहती है वह चौथी संज्ञा जानना चहिए।

आहार संज्ञा के चार कारण –१ पेट खाली होने से, २ क्षुधा वेदनीय के उदय से, ३ आहार की कथा सुनने और आहार को देखने से और ४ सदैव आहार का चिन्तन करने से आहार संज्ञा उत्पन्न होती है।

भय संज्ञा के चार कारण—१ शक्ति नहीं होने से, २ भय मोहनीय कर्म के उदय से, ३ भय की बात सुनने और भयानक वस्तु को देखने से और ४ भय के कारणों का चिन्तन करने से भय संज्ञा उत्पन्न होती है।

मैथुन संज्ञा के चार कारण—१ शरीर में रक्त मांस की वृद्धि होने से, २ वेद मोहनीय कर्म के उदय से, ३ काम कथा सुनने से और ४ मैथुन का चिन्तन करने से मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है।

परिग्रह संज्ञा के चार कारण—१ अति मूर्छा आसक्ति

होने से, २ लोभ मोहनीय कर्म के उदय से, ३ परिग्रह की बात सुनने से और ४ परिग्रह का चिंतन करने से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है ।

नारकी से आये हुए जीव में भय संज्ञा अधिक होती है । तिर्यंच गति से आये हुए जीव में आहार संज्ञा अधिक होती है । मनुष्य गति से आये हुए जीव में मैथुन संज्ञा और देव गति से आये हुए जीव में परिग्रह संज्ञा अधिक होती है ।

नारकी से आये हुए जीव में क्रोध अधिक होता है, तिर्यंच गति से आये हुए जीव में माया अधिक होती है, मनुष्य गति से आये हुए जीव में मान और देवगति से आये हुए जीव में लोभ अधिक होता है ।

पहली आहार संज्ञा वेदनीय कर्म के उदय से, दूसरी से आठवीं तक सात संज्ञा मोह के उदय से, ओघ संज्ञा दर्शनावरण के क्षयोपशम भाव से और लोक संज्ञा ज्ञानावरण के क्षयोपशम भाव से होती है ।

---

२२. योनि का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र नवां पद)

जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं । यहां योनि के चार तरह से तीन तीन भेद बताकर, उसमें कौन से जीव उत्पन्न होते हैं बताया गया है तथा अल्पबहुत्व बताई गई है ।

योनि ३ प्रकार की है—शीत योनि, उष्ण योनि और शीतोष्ण (मिश्र) योनि। पहली दूसरी और तीसरी नारकी में शीत योनि होती है और उष्ण वेदना होती है। चौथी नरक में शीत और उष्ण दोनों योनि होती हैं, शीत योनि वाले बहुत हैं और उष्ण योनि वाले थोड़े हैं, शीत योनि वाले उष्ण वेदना वेदते हैं और उष्ण योनि वाले शीत वेदना वेदते हैं। पांचवीं नरक में शीत और उष्ण दोनों योनि हैं। यहां शीत योनि वाले थोड़े हैं और उष्ण योनि वाले बहुत है। शीत योनि वाले उष्ण वेदना और उष्ण योनि वाले शीत वेदना वेदते हैं। छठी सातवीं नरक में उष्ण योनि है और यहां शीत वेदना है।

तेरह दण्डक के देवता, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य में एक शीतोष्ण अर्थात् मिश्र योनि है।

तेजस्काय को छोड़कर+चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सम्मूर्छिम मनुष्य के तीनों योनि होती हैं। तेजस्काय में एक उष्ण योनि होती है।

अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े शीतोष्ण योनि वाले, उष्ण योनि वाले असंख्यात गुणा, अयोनिक (योनि रहित) अनन्त गुणा और शीत योनि वाले अनन्त गुणा। अनन्त काय वाले सभी जीवों के शीत योनि होने से शीत योनि वाले अनन्तगुणा कहे हैं।

+ टीकाकार अप्काय के शीत योनि मानते हैं।

योनि के तीन भेद–सचित्त, अचित्त और मिश्र। नारकी और देवता के चौदह दण्डक में एक अचित्त योनि पाती है। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सम्मूर्छिम मनुष्य में तीनों ही योनि पाती हैं। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य में मिश्र योनि पाती है।

अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े मिश्र योनि वाले, अचित्त योनि वाले असंख्यात गुणा, अयोनिक अनन्तगुणा, सचित्त योनि वाले अनन्तगुणा। निगोद जीव सचित्त योनि वाले होते हैं अतः सचित्त योनि वालों को अनन्तगुणा कहा है।

योनि के तीन भेद–संवृत (संवुडा), विवृत (वियडा) और संवृत विवृत (संवुडा वियडा)। नारकी देवता के १४ दण्डक और पांच स्थावर इन १९ दण्डक में एक संवृत योनि पाती है। तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सम्मूर्छिम मनुष्य में एक विवृत योनि पाती है। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य में एक संवृत-विवृत योनि पाती है।

अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े संवृत विवृत योनि वाले, विवृत योनि वाले असंख्यातगुणा, अयोनिक अनन्तगुणा, और संवृत योनि वाले अनन्तगुणा।

योनि के ३ भेद–कूर्मोन्नत योनि (कछुए के पीठ तरह उन्नत योनि), शंखावर्त योनि (शंख की तरह आवर्त वाली योनि), वंशीपत्र योनि (मिले हुए बांस के दो पत्र के आकार वाली योनि)। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव,

वासुदेव इन ५४ उत्तम पुरुषों की माता के कूर्मोन्नत योनि होती है। चक्रवर्ती की श्री देवी शंखावर्त योनि होती है। शंखावर्त योनि में जीव आते हैं, गर्भरूप में उत्पन्न होते हैं, संचित होते हैं, किन्तु उत्पन्न नहीं होते। वंशीपत्र योनि सामान्य पुरुषों की माता के होती है।



पांच समिति तीन गुप्ति का थोकड़ा

पांच समिति के नाम–१ ईर्यासमिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति, ४ आदानभंडमात्र–निक्षेपणासमिति, ५ उच्चारप्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति।

तीन गुप्ति के नाम—१ मनोगुप्ति, २ वचनगुप्ति, ३ कायगुप्ति। इन आठों (पांच समिति और तीन गुप्ति) को प्रवचन माता भी कहते हैं। जिस तरह माता अपने पुत्र पर अत्यन्त प्रेम करती है, उसका कल्याण करती है वैसे ही कल्याणकारी होने के कारण इन आठ गुणों को माता की उपमा दी जाती है।

समिति का स्वरूप

समिति किसको कहते हैं? प्राणातिपात (जीव हिंसा) से निवृत्त होने के लिये सम्यक् प्रवृत्ति करने को

नोट—यह थोकड़ा उत्तराध्ययन सूत्र २४ वें अध्ययन के आधार पर लिखा गया है।

समिति कहते हैं। उत्तम परिणामों की चेष्टा को भी समिति कहते हैं अथवा समिति ईर्यादि पांच चेष्टाओं की तान्त्रिकी (शास्त्रीय) संज्ञा है, यह एक परिभाषिक शब्द है।

१ ईर्यासमिति—जीवों की रक्षा के लिये विवेक और उपयोग पूर्वक चलने को ईर्यासमिति कहते हैं।

२ भाषासमिति—उपयोगपूर्वक सत्य और निर्दोष वचन बोलने को भाषासमिति कहते हैं।

३ एषणासमिति—बयालीस दोष टाल कर निर्दोष और परिमित भिक्षादि ग्रहण करने को एषणा समिति कहते हैं।

४ आदान-भंडमात्र-निक्षेपणासमिति-वस्त्र पात्र आदि उपकरणों को देख और पूजकर जयणा से उठाने और रखने को आदान-भंडमात्र-निक्षेपणासमिति कहते हैं।

५ उच्चारप्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिकासमिति—मल-मूत्रादि त्याज्य वस्तुओं को दस विशेषणों से युक्त स्थानों में परठाने को उच्चार प्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति कहते हैं।

ईर्यासमिति

ईर्यासमिति के चार कारण होते हैं—आलंबन, काल, मार्ग और यतना। इन चार कारणों से परिशुद्ध ईर्यासमिति से साधु गमन करे।

१ आलंबन—आलम्बन अर्थात् प्रयोजन होने पर ही भगवान् ने गमन करने की आज्ञा दी है। बिना आलम्बन कहीं जाने की आज्ञा नहीं है। वह आलम्बन तीन प्रकार का है—ज्ञान (सूत्र, अर्थ, तदुभय), दर्शन और चारित्र। सूत्र में प्रयुक्त तथा शब्द द्विकसंयोगी आदि सात भंगों की सूचना करता है, वे सात भंग इस प्रकार है—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ज्ञान और दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ज्ञान, दर्शन और चारित्र।

२ काल—ईर्यासमिति का काल दिन ही कहा है, रात्रि में दिखाई न देने के कारण अत्यन्त आवश्यक प्रयोजन के बिना गमन करने की आज्ञा नहीं है।

३ मार्ग—साधु टेढ़े या उजाड़ मार्ग से न जाकर सीधे राजमार्ग से चले। क्योंकि कुमार्ग में चलने से आत्मा और संयम की विराधना होने की संभावना है।

४ यतना—यतना के चार भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्ययतना—उपयोगपूर्वक जीवादि पदार्थों को देखता हुआ संयम तथा आत्मा को विराधना से बचता हुआ चले। क्षेत्रयतना—युग*मात्र (धूसरा प्रमाण) अर्थात् चार हाथ प्रमाण आगे की भूमि को देखता हुआ गमन

---

* युग का परिणाम छयानवे ९६ अंगुल का होता है। समवायांग सू० सं० ९६ तथा भगवती सूत्र ६ शतक ७ उद्देश।

करे । कालयतना—जब तक दिन रहे तभी तक यातना से चले फिरे । भावयतना—चलते समय अपने उपयोग (ज्ञान-व्यापार)को ठीक रखना भावयतना है । चलते समय पांच इन्द्रियों के विषय (शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श) तथा पांच प्रकार के स्वाध्यायों को छोड़ कर सिर्फ चलने की क्रिया को मुख्यता देकर और उसी में उपयोग रख कर चले ।

पुनः—आलम्बन—प्रवचन, संघ, गच्छ और आचार्यादि के कार्य । काल—साधु के विचरने योग्य अवसर । मार्ग—जिस रास्ते में बहुत से आदमी चलते फिरते हों अर्थात् राजमार्ग यातना—उपयोग सहित आगे की भूमि पर युगपरिमाण (चार हाथ तक) दृष्टि रखना । इन आलम्बनादि चारों पदों के १६ भंग होते हैं । उन्हें यन्त्र द्वारा दिखाया जाता है । यन्त्र में 'ऽ' चिह्न आलम्बनादि की सत्ता को बताता है और '०' अभाव को । जैसे द्वितीय भाग में आलम्बन, काल और मार्ग तो हैं लेकिन यतना नहीं है ।

ईर्यासमिति के १६ भंगों का यंत्र

संकेत 'ऽ' अस्ति, '०' नास्ति

संख्या	आलंबन	काल	मार्ग	यतना	शुद्धादि ।
१	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सर्वथाशुद्ध

२	ऽ	ऽ	ऽ	०	देशत:शुद्धाशुद्ध
३	ऽ	ऽ	०	ऽ	"
४	ऽ	ऽ	०	०	"
५	ऽ	०	ऽ	ऽ	"
६	ऽ	०	ऽ	०	०
७	ऽ	०	०	ऽ	"
८	ऽ	०	०	०	"
९	०	ऽ	ऽ	ऽ	"
१०	०	ऽ	ऽ	०	"
११	०	ऽ	०	ऽ	"
१२	०	ऽ	०	०	"
१३	०	०	ऽ	ऽ	"
१४	०	०	ऽ	०	"
१५	०	०	०	ऽ	"
१६	०	०	०	०	सर्वथा अशुद्ध

उपरोक्त यन्त्र द्वारा दिखाये गये १६ भंगों में से प्रथम भंग सर्वथा शुद्ध है और अंतिम भंग सर्वथा अशुद्ध है। बीच के चौदह भंग देशत: शुद्ध और देशत: अशुद्ध हैं। आलम्बनादि चारों कारणों से युक्त गमन ही शुद्ध माना गया है। अर्थात् सर्वथा शुद्ध प्रथम भंग में ही साधु को गमन करने के लिये श्री तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा है।

भाषासमिति

क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य भय, मौखर्य और विकथा इन आठ दोषों को त्याग कर निर्दोष परिमित और उपयोगों भाषा बोलने को भाषासमिति कहते हैं। क्रोधादि के वशीभूत होकर मनुष्य अपने आप को भूल जाता है। उस समय उसे भले-बुरे का भान नहीं रहता। बहुत सी ऐसी बातें कर बैठता है जिनका परिणाम बहुत बुरा होता है। उनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

क्रोध—जैसे कोई पिता अतिक्रोधित होता हुआ अपने पुत्र से कहे—'तू मेरा पुत्र नहीं है।' पास में खड़े हुए मनुष्यों से कहे 'बांधो-बांधो इसको' इत्यादि।

मान—जैसे कोई पुरुष गर्वित होता हुआ बोले—जाति आदि में मेरी बराबरी करने वाला कोई नहीं है।

माया—जैसे अपरिचित स्थान में रहा हुआ कोई पुरुष दूसरों को ठगने के लिये पुत्रादिकों के विषय में बोले न तो मेरा यह पुत्र है और न मैं इसका पिता हूं।

लोभ—जैसे कोई वणिक दूसरों की भाण्डादि वस्तु को लोभ से अपनी कहे।

हास्य—जैसे कोई हंसी में कुलीन पुरुष को भी अकुलीन कहकर बुलावे।

भय—जैसे किसी ने किसी प्रकार का अकार्य किया, दूसरे ने उससे पूछा—'तू वही है जिसने अमुक समय अमुक कार्य किया ?' तो वह भय से कहे मैं उस समय उस जगह नहीं था।

मौखर्य—जैसे कोई मुखरता (बकबाद) के कारण हमेशा दूसरों की निन्दा ही करता रहे।

विकथा—जैसे कोई बोले—'अहो इस स्त्री के कटाक्ष कैसे हैं ?' इत्यादि। इस प्रकार क्रोधादि के वशीभूत होने पर शुद्ध भाषा नहीं बोली जाती इसलिए इन पूर्वोक्त आठ स्थानों को वर्ज कर साधु निरवद्य (निर्दोष) और परिमित (जितनी बोलनी जरूरी हो) भाषा अवसर देखकर बोलनी चाहिये।

पुनः—भाषा समिति के चार भेद। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्य से—कठोर 'कर्कश, छेदकारी, भेदकारी, निश्चयकारी, सावद्य, क्लेशकारी और मिश्र, इन आठ भाषाओं को साधु न बोले। क्षेत्र से—रास्ता चलता हुआ बात न करे। काल से—एक पहर रात्रि के बाद सूर्योदय तक ऊंचे स्वर (जोर से) न बोले। भाव से—रागद्वेष उत्पन्न करने वाली भाषा को उपयोगपूर्वक वर्जे।

एषणा समिति

एषणा समिति के तीन भेद हैं—गवेषणैषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा (ग्रासैषणा)।

गवेषणैषणा—आहारादि ग्रहण करने के पहले शुद्धि-अशुद्धि की खोज करने को गवेषणैषणा कहते हैं।

ग्रहणैषणा—आहारादि ग्रहण करते समय शुद्धि-अशुद्धि की खोज करने को ग्रहणैषणा कहते हैं।

परिभोगैषणा—आहारादि भोगते समय शुद्धि-अशुद्धि की खोज करने को परिभोगैषणा कहते हैं।

आहार (अशनादिक, उपाधि (वस्त्रपात्रादिक) और शय्या (मकान पाट पाटलादिक) इन तीनों वस्तुओं को खोजनें, ग्रहण करने और भोगनें में उपयोग रखने को एषणा समिति कहते हैं। पहिली गवेषणैषणा में आधाकर्मादि सोलह उद्‌गमदोष और धात्र्यादि सोलह उत्पादनादोष, इन बत्तीस दोषों को टालकर आहारादि की शुद्ध एषणा (खोज) करे। दूसरी ग्रहणैषणा में शंकितादि दस दोषों को टाल कर आहारादि ग्रहण करे। तीसरी परीभोगैषणा (ग्रासैषणा) में पिंड (अशनादि), शय्या, वस्त्र और पात्र इन चारों को उद्‌गमादि के दोष टाल कर भोगे। तथा संयोजना, प्रमाण, अङ्गार धूम और कारण इन चार मांडला के दोषों का निवारण करे। यहां मोहनीय कर्म के अन्तर्गत होनें के कारण अङ्गार और धूम इन दोनों की एक पद से

विवक्षा की है। इस प्रकार एषणा समिति का पालन करता हुआ साधु संयम की रक्षा करता है।

पुनः—एषणा समिति के चार भेद द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्य से उद्गम के १६ दोष, उत्पादना के १६ दोष और एषणा के १० दोष इन बयालीस दोषों को टाल कर शुद्ध अशनादि की गवेषणा करे। क्षेत्र से दो कोस के उपरांत ले जा कर अशनादि न भोगे। काल से प्रथम पहर के लिये हुए अशनादि चौथे पहर में न भोगे। भाव से राग द्वेष रहित होता हुआ मांड़ला के ५ दोष टाल कर आहार करे।

आदान-भण्ड-मात्र–निक्षेपणा–समिति

उपाधि दो प्रकार की होती है—ओघोपधि और औपग्रहिकोपधि। ओघोपधि—जो हमेशा पास रक्खी जावे-जैसे रजोहरण, वस्त्र, पात्रादि। औपग्रहिकोपधि—जो संयम रक्षार्थ थोड़े समय के लिये ग्रहण की जावे जैसे—पाट, पाटला, शय्या, दण्डादिक। इन दो प्रकार के उपकरणों को उठाते तथा रखते हुए साधु वक्ष्यमाण (आगे कहीं जाने वाली) विधि के अनुसार प्रवृत्ति करे। पहिले वस्तु को देखे, फिर रजोहरणादि से पूंजे। इस प्रकार यतना करता हुआ साधु दोनों प्रकार की उपाधि को उठाए और रखे।

पुनः—आदानभण्डमात्रनिक्षेपणासमिति के चार भेद। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्य से भंडोपकरण यतना से ले और यतना ही से रक्खे। क्षेत्र से—भंडोपकरण इधर-उधर बिखरा हुआ न रखे। काल से—यथासमय

पडिलेहणा करे। भाव से—रागद्वेष उत्पन्न करने वाली उपधि न रखे।

उच्चारप्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति

उच्चार—विष्ठा, प्रश्रवण–पेशाब, खेल—मुंह से निकलने वाला श्लेष्म, सिंघाण—नाक से निकलने वाला श्लेष्म, जल्ल-शरीर का मैल, आहार–न खाने योग्य अशनादि, उपधि-वर्षाकल्पादि (चौमासे में की हुई) देह-मृतशरीर तथा इनके सिवाय और परिठवने योग्य वस्तुओं का जहां-तहां न फेंक कर दस विशेषणों से युक्त स्थान में ररठावे।

वे दस विशेषण इस प्रकार हैं—

१ अणावायसंलोए परस्स—जहां न किसी का आना-ाना हो, न दृष्टि पड़ती हो।

२ अणुवघाइए—जहां परठाने से संयमोपघात (छह ाय की विराधना) आत्मोपघात (अपने शरीर को पीड़ा) ौर प्रवचनोपघात में किसी तरह का उपघात न हो।

३ समे—जहां ऊंची-नीची जगह न हो अर्थात् सम-त भूमि हो।

४ अभुसिरे—जहां पोलान न हो अर्थात् भूमि पत्तों दि से ढ़की हुई न हो।

५ अचिर काल कयंमि—जहां थोड़े काल पहिले अग्नि से जली हुई भूमि हो, क्योंकि देर के बाद वहां फिर पृथ्वीकाय के जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

६ विच्छिन्न—जहां कम से कम एक हाथ लंबी चौड़ी भूमि हो।

दूरमोगाढे—जहां कम से कम चार अंगुल नीचे तक भूमि अचित्त हो।

७ णासन्ने—जहां गांव, बगीचा वगैरह नजदीक न हो।

८—विलवज्जिए—जहां चूहे आदि का बिल न हो।

१०—तसपाण बीय रहिये—जहां द्वीन्द्रियादिक त्रस जीव तथा शाल्यादिक बीज न हों।

इन* दस विशेषणों वाले स्थण्डिल में उच्चारादि परिठ्ठवे।

---

* दस विशेषणों का खुलासा तथा १०२४ भंगों का स्वरूप देखो। (श्रीआगमो०) पत्र १२२ पृष्ठ २ से पत्र १२६ पृष्ठ १ तक तथा प्रवचनसारोद्धार द्वारा ६१ (हीरालाल हंसराज कृत टीका का भाषान्तर) पत्र ३०१ पृष्ठ १ से पत्र ३०२ पृष्ठ २ तक।

पिंडनिर्युक्ति

प्रवचनसार

पुनः—उच्चारप्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति चार प्रकार की होती है द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । द्रव्य से—उच्चारादि ८ वस्तुओं को देखकर परिट्ठवे । क्षेत्र से– दस प्रकार के शुद्ध स्थण्डिल में उच्चारादि परिट्ठवे । काल से—सायंकाल (थोड़ा दिन रहते हुए) के समय परिट्ठवने योग्य भूमिका की पडिलेहणा करे । भाव से—परिट्ठवने को जाते समय 'आवस्सिया आवस्सिया' कह कर जावे, परिट्ठवने के योग्य भूमि को देखे तथा पूंजे और शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा लेकर चार अंगुल ऊंचे से यतना पूर्वक परिट्ठवे । परिट्ठव कर 'वोसिरे वोसिरे' कहे । बाद में ईर्यावहिया का काउसग्ग करे ।

गुप्ति का स्वरूप

संसार के कारणों से आत्मा की सम्यक् प्रकार से रक्षा करने को गुप्ति कहते हैं । मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति रोकने को भी गुप्ति कहते हैं । अथवा मन, वचन और काया की निर्दोष प्रवृत्ति को गुप्ति कहते हैं । कर्मों के आश्रव को रोकने का नाम भी गुप्ति है । मुमुक्षु (मोक्षाभिलाषी) द्वारा किये गये अशुभ योगों के निग्रह को भी गुप्ति कहते हैं । मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ।

मनोगुप्ति

मनोगुप्ति चार प्रकार की होती है—सत्या, मृषा सत्यामृषा, असत्यामृषा ।

पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का चिन्तन करना सत्य-मनोयोग है । उसे विषय करने वाली गुप्ति भी उपचार से सत्य कही जाती है । इसके विपरीत अर्थात् असत्य-मनोयोग है । उसे विषय करने वाली गुप्ति मृषा कहलाती है। दोनों प्रकार के मनोयोग को विषय करने वाली गुप्ति का नाम सत्यामृषा है । सत्य और असत्य दोनों प्रकार के विषयों से रहित केवल कल्पना रूप मनोयोग को विषय करने वाली मनोगुप्ति का असत्यामृषा कहते हैं ।

इन चारों प्रकार की गुप्तियों से संबंध रखने वाले समारम्भ और आरम्भ का त्याग करना और मन को शुभ भावों में प्रवृत्त करना मनोगुप्ति है ।

संरंभ आदि को स्पष्ट करने के लिये निम्नलिखित उदाहरण दिये जाते हैं—

संरंभ—दूसरे को हानि पहुंचाने का विचार करना। जैसे 'मैं ऐसा ध्यान करूंगा जिससे वह मर जायगा ।'

समारम्भ—दूसरों को हानि पहुंचाने का प्रयत्न करना । जैसे दूसरों को पीड़ा या उच्चाटनादि करने वाला ध्यान करना ।

आरंभ—दूसरों को हानि पहुंचाना । जैसे दूसरे के

प्राणों को अत्यन्त क्लेश से हरने वाला ध्यान करना।

पुनः—मनोगुप्ति चार प्रकार की होती है—द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव। द्रव्य से—सक्लिष्ट (खराब) मनोयोग को रोके और शुभ मनोयोग को प्रवर्तावे। क्षेत्र से—सभी क्षेत्रों में। काल से—जिस समय मन प्रवर्तावे। भाव से—उपयोग सहित मन को प्रवर्तावे।

वचनगुप्ति

वचनगुप्ति चार प्रकार की होती है। सत्या, मृषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा। इसका स्वरूप मनोगुप्ति के समान समझ लेना चाहिए। मनोयोग और मनोगुप्ति की जगह वचनयोग और वचनगुप्ति कहे इसमें भी संरंभादि नीचे लिखे अनुसार हैं—

संरंभ–दूसरों को मारने में समर्थ ऐसी क्षुद्रविद्या गुणने के संकल्प को सूचित करने वाला शब्द बोलना। समारंभ–दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाला मन्त्र गुनना। आरम्भ-प्राणियों के प्राणों का अत्यन्त क्लेशपूर्वक नाश करने में समर्थ मन्त्रादि गुनना। इन संरंभादिकों में प्रवृत्ति करने वाले वचन को साधु यतना से रोके और शुभवचन में प्रवृत्ति करे।

पुनः—वचनगुप्ति चार प्रकार की है—द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव। द्रव्य से—अशुभवचन को रोके और शुभ वचन को प्रवर्तावे। क्षेत्र से—सब जगह। काल से जब बोले। भाव से—उपयोग सहित वचन बोले।

कार्य गुप्ति

खड़े रहने में, बैठने में, सोने में किसी कारणवश ऊर्ध्वभूमिका या खाड़ वगैरह के उल्लंघन में, सीधे चलने में इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में, प्रवृत्ति करता हुआ साधु कायगुप्ति करे। वह इस प्रकार संरंभ, यष्टि मुष्टि आदि से ताड़न करने के लिये तैयार होने में, समारंभ–दूसरों को परिताप, (पीड़ा) करने वाले लात वगैरह के प्रहार में, आरम्भ-वध करने में प्रवृत्त होता हुआ साधु शरीर को इन कार्यों से रोके और शुभ कार्यों में प्रवृत्त करे।

पुनः—कायगुप्ति चार प्रकार की है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्य से काया को अशुभ-व्यापार से रोके और शुभ व्यापार में प्रवर्तावे। क्षेत्र से सभी क्षेत्रों में जहां-जहां विचरे। काल से—कार्य आने पर यावज्जीव। भाव से—उपयोगसहित खड़ा रहे बैठे तथा सोवे।

पूर्वोक्त पांच समितियां शुभ चारित्र की प्रवृत्ति की प्रवृत्तिरूप कही गई हैं और तीन गुप्तियां अशुभ मनोयोगादि से सर्वथा निवृत्ति के लिए। उपलक्षण से शुभ व्यापार की निवृत्ति भी गुप्ति है क्योंकि मन, वचन और काया का निर्व्यापार होना भी गुप्ति है।

पूर्वोक्त आठ प्रवचनमाताओं का जो मुनि सम्यक् प्रकार आचरण करे अर्थात् पाले वह संसार से शीघ्र मुक्त हो जाता है।

इति पांचसमिति तीन गुप्ति का थोकड़ा सम्पूर्ण।

आहार के ४७ दोष

उद्गम के १६, उत्पादना के १६, एषणा के १० और मांडला के ५, इस प्रकार आहार के ४७ दोष शास्त्रों में बताए गये हैं।

गवेषणैषणा (उद्गम) के १६ दोष

गाथा

आहाकम्मुद्देसीय पूइकम्मे य मीसजाएय। ठवणा पाहुडियाए पाओअर कीय पामिच्चे ॥१॥ परियट्टिए अभि-हडे उब्भिन्ने मालोहडे इय। अच्छिज्जे अणि-सिट्ठे अज्झो-यरए य सोलसमे ॥२॥

प्रवचनसागर गा० ५६५-५६६

धर्मसंग्रह ३ अधिकार गा० २२ (टीका)

पिंडनिर्युक्ति गा० ९२-९३

पंचाशक १३ वां गा० ५-६,

१ आधाकर्म—किसी खास साधु को मन में रखकर उसके निमित्त से सचित्तवस्तु को अचित्त करना या अचित्त को पकाना आधाकर्म कहलाता है। यह दोष चार प्रकार से लगता है—प्रतिसेवन—आधाकर्मी आहार का सेवन करना। प्रतिश्रवण—आधाकर्मी आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन—आधाकर्मी आहार भोगने वालों के साथ रहना। अनुमोदन—आधाकर्मी आहार भोगने वालों की प्रशंसा करना।

२ औद्देशिक—सामान्य याचकों को देने की बुद्धि से जो आहारादि तैयार किये जाते है, उन्हें औद्देशिक कहते हैं। इसके दो भेद हैं—ओघ और विभाग। भिक्षुकों के लिए अलग तैयार न करते हुए अपने लिये बनते हुए आहारादि में ही कुछ और मिला देना ओघ है। विवाहादि में याचकों के लिए अलग निकाल कर रख छोड़ना विभाग है। यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्देश, आदेश और समादेश इस तरह चार-चार भेद हैं। इन सब की विस्तृत व्याख्या ऊपर लिखे हुए ग्रन्थों से जाननी चाहिये। किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहार अगर वही साधु ले तो आधा कर्म है, दूसरा ले तो औद्देशिक। आधा कर्म पहले से ही किसी खास निमित्त से बनाया जाता है। औद्देशिक साधारण दान के लिये पहिले या बाद में कल्पित्त किया जाता है।

२ पूतिकर्म—शुद्ध आहार में आधाकर्मादि का अंश का मिल जाना पूति कर्म है। आधाकर्मी आहार का थोड़ा-सा अंश शुद्ध और निर्दोष आहार को सदोष बना देता है। शुद्ध चारित्र पालने वाले संयमी के लिये वह अकल्पनीय है। जिसमें ऐसे आहार का अंश लगा हो, ऐसे बर्तन को भी टालना चाहिये।

४ मिश्रजात—अपने और साधु के लिये एक साथ पकाया हुआ आहार मिश्रजात कहलाता है। इसके तीन भेद है—यावदर्थिक, पाखंडिमिश्र और साधुमिश्र। जो आहार अपने लिए और सभी याचकों के लिये इकट्ठा बनाया जाय वह यावदर्थिक है। जो अपने और साधु-सन्यासियों के लिये इकट्ठा बनाया जाय वह पाखण्डिमिश्र

है। जो सिर्फ अपने और साधुओं के लिये इकट्ठा तैयार किया जाय वह साधुमिश्र है।

५ स्थापन—साधु को देने की इच्छा से कुछ काल के लिये आहार को अलग रख देना स्थापना है।

६ प्राभृतिका—साधुजी को विशिष्ट आहार बहराने के लिए जीमनवार या निमन्त्रण के समय को आगे पीछे-पीछे करना।

७ प्रादुष्करण—देय वस्तु के अंधेरे में होने पर अग्नि, दीप, मणि आदि का उजाला करके या खिड़की वगैरह निकाल कर वस्तु को प्रकाश में लाना अथवा आहारादि को अन्धेरी जगह से प्रकाशवाली जगह में लाना प्रादुष्करण है।

८ क्रीत—साधु के लिए मोल लिया हुआ आहारादि क्रीत कहलाता है।

९ प्रामित्य—(पामिच्चे) साधु के लिये उधार लिया हुआ आहारादि।

१० परिवर्तित—साधु के लिये अट्टा-सट्टा करके लिया हुआ आहार।

११ अभिहृत—(अभिहडे) साधु के लिये गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ आहार।

१२ उद्भिन्न—साधु को घी वगैरह देने के लिये कुप्पी आदि का मुंह (छाणन) खोल कर देना।

१३ मालापहृत—ऊपर नीचे या तिरछी दिशा में जहां आसानी से हाथ न पहुंच सके वहां पंजों पर खड़े होकर या निःसरणी आदि लगाकर आहार देना। इसके चार भेद हैं—उर्ध्व, अधः, उभय और तिर्यक्। इनमें से भी हर एक के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप से तीन-तीन भेद हैं। एड़ियां उठा कर हाथ फैलाते हुए छत में टंके छींके वगैरह से कुछ निकालना जघन्य ऊर्ध्वमालाहृत है। सीढी वगैरह लगाकर ऊपर के मंजिल से उतारी गई वस्तु उत्कृष्ट ऊर्ध्वमालाहृत है। इनके बीच में रहने वाली वस्तु मध्यम है। इसी तरह अधः, उभय और तिर्यक् के भेद भी जानने चाहिये।

१४ आच्छेद्य—निर्बल व्यक्ति या अपने आश्रित रहने वाले नौकर-चाकर और पुत्र वगैरह से छीन कर साधुजी को देना। इसके तीन भेद हैं—स्वामिविषयक, प्रभुविषयक और स्तेन विषयक। ग्राम का मालिक स्वामी कहा जाता है। अपने घर का प्रभु। स्तेत अर्थात् लुटेरा। इसमें से कोई किसी से कुछ छीनकर साधुजी को दें तो क्रमशः तीन दोष लगते हैं।

१५ अनिसृष्ट—एक वस्तु के अधिक मालिक होने पर सब की मर्जी के बिना देना अनिसृष्ट है।

१६ अध्यवपूरक—साधुओं का आगमन सुनकर आधण में अधिक ऊर देना। अर्थात् अपने लिये बनते हुए भोजन में साधुओं का आगमन सुनकर उनके निमित्त से और मिला देना।

नोट—उद्गम के १६ दोषों का निमित्त गृहस्थ अर्थात् देने वाला होता है।

ग्रहणैषणा (उत्पादना) के १६ दोष

धाई दूई निमित्ते आजीव वणीमगे तिगिच्छा य।
कोहे माणे माया लोभे य हवंति दस ए ए ।१।
पुव्विपच्छा संथव विज्मा मंते य चुण्ण जोगे य।
उप्पायणाइ दोसा सोलसमे मूलकम्मे य ।।२।।

प्रवचनसार ५६७-५६८
धर्मसंग्रह ३ रा २२ गाथा (टीका)
पिंडनिर्युक्ति ४०८-४०९
पंचाशक १३ वां गाथा १९-२०

१ धात्री—बच्चे को खिलाना-पिलाना आदि धाय का काम करके या किसी घर में धाय की नौकरी लगवा कर आहार लेना।

२ दूती—एक दूसरे का संदेश गुप्त या प्रकट रूप से पहुंचा कर दूत का काम करके आहारादि लेना।

३—निमित्त-भूत और भविष्यत् को जानने के शुभाशुभ निमित्त बताकर आहारादि लेना।

४ आजीव—स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से अपनी जाति और कुल वगैरह प्रकट करके आहारादि लेना।

५ वनीपक—श्रमण, शाक्य सन्यासी आदि में जो

जिसका भक्त हो उसके सामने उसी की प्रशंसा करके या दीनता दिखाकर आहारादि लेना वनीपक दोष है।

६ चिकित्सा—औषधि करना या बताना आदि चिकित्सक का काम करके आहारादि उपार्जन करना।

७ क्रोध—क्रोध करके या गृहस्थ को शापादि का भय दिखाकर भिक्षा लेना।

८ मान—अभिमान से अपने को प्रतापी तपस्वी, बहुश्रुत बताते हुए अपना प्रभाव जमाकर आहार लेना।

९ माया–वञ्चना या छलना करके आहारादि उपार्जन करना।

१० लाभ—आहार में लोभ पैदा करना। अर्थात् भिक्षा के लिए जाते समय जीभ के लालच से यह निश्चय करके निकलना की आज तो अमुक वस्तु ही खायेंगे और उसके अनायास न मिलने पर इधर-उधर ढूंढना तथा दूध वगैरह मिल जाने पर जिह्वा स्वादवश होकर चीनी आदि के लिये इधर-उधर भटकना लोभपिंड है।

११ प्राक्पश्चात्संस्तव—(पुव्विपच्छासंथव) आहार लेने के पहिले या पीछे देने वाले की प्रशंसा करना।

१२ विद्या—स्त्री–रूप देवता से अधिष्ठित या जप-होम आदि से सिद्ध होने वाली अक्षरों की रचना विशेष को विद्या कहते हैं। विद्या का प्रयोग करके आहारादि लेना विद्यापिंड है।

१३ मन्त्र—पुरुषरूप देवता के द्वारा अधिष्ठित ऐसी अक्षर रचना जो पाठमात्र से सिद्ध हो जाय उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्र के प्रयोग से लिए जाने वाले आहारादि मन्त्रपिंड हैं।

१४ चूर्ण—अदृश्य करने वाले सुरमे आदि का प्रयोग करके जो आहारादि लिए जायें उन्हें चूर्णपिंड कहते हैं।

१५ योग—पांव लेप आदि सिद्धियां बताकर जो आहारादि लिये जायें उन्हें योगपिंड कहते हैं।

१६ मूलकर्म—गर्भस्तम्भन, गर्भाधान, गर्भपात आदि संसार-सागर में भ्रमण कराने वाली सावद्यक्रियाओं का करना मूलकर्म है।

नोट—उत्पादना के दोष साधु से लगते हैं। इनका निमित साधु ही होता है।

एषणा के १० दोष

संकिय मक्खिय निक्खित्त पिहिय
साहरिय दायगुम्मीसे।
अपरिणय लित्त छड्डिय एसण-
दोसा दस हवंति॥

पिंडनियुक्ति गा० ५२०
पंचाशक १३ वां गाथा २६
प्रवचनसार गाथा ५९८
धर्मसंग्रह ३ रा गाथा २२ (टीका)

१ संकीय—आहार से आधाकर्मादि दोषों का सन्देह होने पर भी उसे लेना।

२ मक्खीय—(म्रक्षित) देते समय आहार या हाथ कुडछी वगैरह का सचित वस्तु से छू जाना (संघटा होना) म्रक्षित है। इसके दो भेद हैं—सचित म्रक्षित और अचित्त म्रक्षित, सचितम्रक्षित तीन तरह का है—पृथ्वीकायम्रक्षित, अपकायम्रक्षित और वनस्पतिकायम्रक्षित। यदि देय वस्तु या हाथ वगैरह पृथ्वीकाय से छू जाय तो पृथ्वीकायम्रक्षित है। अप्कायम्रक्षित के चार भेद हैं—पुरःकर्म, पश्चात्कर्म, सस्निग्ध और उदकार्द्र। साधु को दान देने से पहिले साधु के निमित्त से हाथ वगैरह धोना पुरःकर्म है। दान देने के बाद धोना पश्चात्कर्म है। हाथ वगैरह अगर थोड़े से पानी से भीगे हुए हों तो सस्निग्ध दोष है। अगर जल का सम्बन्ध स्पष्ट मालूम पड़े तो उदकार्द्र दोष है, थोड़ी देर पहिले काटे हुए आम वगैरह का अंश जिस हाथ में लगा हुआ हो वह वनस्पतिकाय म्रक्षित है।

अचित्तम्रक्षित दो तरह का है। गर्हित और अगर्हित। जिस हाथ या दो जाने वाली वस्तु में कोई घृणित वस्तु लगी हो तो वह गर्हित है। घी वगैरह लगा हुआ हो तो वह अगर्हित है।

इनमें सचित्तम्रक्षित साधु के लिये सर्वथा अकल्प्य है। घृतादि वाला अगर्हित अचित्तम्रक्षित कल्प्य है। घृणित वस्तु वाला गर्हित अकल्प्य है।

३ निक्खित्त—(निक्षिप्त) दी जाने वाली वस्तु

सचित्त के ऊपर रक्खी हो तो निक्षिप्त दोष लगता है। इसके पृथ्वी काय आदि छह भेद हैं।

४ पिहिय—(पिहित) देय वस्तु सचित्त के द्वारा ढ़की हुई हो। इसके भी पहिले की तरह छह भेद हैं।

५ साहरिय—जिस बर्तन में असूजती वस्तु पड़ी हो उससे असूजती वस्तु निकाल कर उसी से आहारादि देना।

६ दायक—बालक आदि दान देने से अनधिकारी से आहारादि लेना दायक दोष है। पिंडनियुक्ति में ४० प्रकार के दायक दोष बतलाये हैं। वे निम्नलिखित हैं।

वाले बुड्ढे मत्ते उम्मत्ते थेविरे य जरिए य।
अंधिल्लए पगरिए आरूढे पाडयाहिं च।
हत्थिदुनियलद्धे विवज्जिए चेव हत्थपाएहिं।
तेरासि गुव्विणी बालवच्छ भुंजंति भुसुलिंति।
भज्जंती य दलंतो कंडंती चेव त य पीसंती।
पींजंती रुंचंती कत्तंति पमद्दमाणी य।
छक्कायवग्गहत्था समणट्ठा निक्खिवितु ते चेव।
ते चेवोगाहती संघट्टा रभंति य ॥
संसत्तेण य दव्वेण लित्तहत्था य लित्तमत्ता य।
उव्वत्तंती साहारणं व दींती य चोरियंयं ॥
पाहुडियं च ठवंती सपच्चवाया परं च उद्दिस्स।
आभोगमणाभोगेण दलंती वज्जणिज्जा ए ॥

१ वाला—बालक के नासमझ और घर में अकेले होने पर उससे आहार लेना वर्जित है।

२ वृद्ध—जिसके मुंह में लाला वगैरह पड़ रही हों।

३ मत—शराब वगैरह पिया हुआ।

४ उन्मत्त—घमण्डी या पागल जो ग्रह, वात, या और किसी बिमारी से अपनी विचार-शक्ति खो चुका हो।

५ वेपमान—जिसका शरीर कांप रहा हो।

६ ज्वरित—ज्वर रोग से पीड़ित।

७ अन्ध—जिसकी नजर चली गई हो।

८ प्रगलित—गलित कुष्ट वाला।

९ आरूढ़—खड़ाऊं या जूते वगैरह पहिना हुआ।

१०–११ बद्ध—हथकड़ी या बेड़ियों से बंधा हुआ। बंधा हुआ दायक जब भिक्षा देता है तो देने और लेने वाले दोनों को दुःख होता है इस कारण से आहार लेने की तर्जना है। दाता को अगर देने में प्रसन्नता हो या साधु का ऐसा अभिग्र हो तो लेने में दोष नहीं है।

हाथ वगैरह सुविधा पूर्वक नहीं धो सकने के कारण उसके अशुचि होने की भी आशंका है। अशुचिता से होने वाली लोकनिन्दा से बचना भी ऐसे आहार को वर्जने का कारण है।

१२ छिन्न—जिसके हाथ या पैर कटे हुए हों।

१३ त्रैराशिक—नपुंसक। नपुंसक से परिचय साधु के लिए वर्जित है। इसलिए उससे बार-बार भिक्षा नहीं लेना चाहिये। लोकनिन्दा से बचने के लिये उससे भिक्षा लेना वर्जित है।

१४ गर्बिणी—गर्भवती।

१५ बाल-वत्सा—दूध पीते बच्चे वाली। छोटे बच्चे के लिये माता को हर वक्त सावधान रहना चाहिये। अगर वह बालक को जमीन या चारपाई वगैरह पर सुला कर भिक्षा देने के लिए जाती तो बिल्ली आदि से बालक को हानि पहुंचने का भय है। उस समय आहार वर्जने का यही कारण है।

१६ भुञ्जाना—भोजन करती हुई। भोजन करते समय भिक्षा देने के लिए कच्चे पानी से हाथ धोने में हिंसा होती है। नहीं धोने पर जूठे हाथों से भिक्षा लेने में लोक निन्दा है। भोजन करते हुए से भिक्षा न लेने का यही कारण है।

१७ घुसुलिन्त—दही वगैरह बिलौती हुई। उस समय भिक्षा देने के लिये उठने में हाथ से दही टपकता रहता है। इससे नीचे चलती हुई कीड़ी आदि की हिंसा होने का भय है। इसी कारण से उस समय आहार लेना वर्जित है।

१८ भर्जमाना—कड़ाही वगैरह में चने आदि भूनती हुई।

१९ **दलयन्ती**—चक्की में गेहूं वगैरह पीसती हुई।

२० **कण्डयन्ती**—ऊखली में धान वगैरह कूटती हुई।

२१ **पिषन्ती**—शिला पर तिल-आमले वगैरह पीसती हुई।

२२ **पिंजयन्ती**—रूई वगैरह पींजती हुई।

२३ **रुंचन्ती**—चरखी (कपास से बिनौले अलग करने की मशीन) द्वारा कपास बेलती हुई।

२४ **कृतंन्ती**—कातती हुई। भिक्षा देकर हाथ धोने के कारण।

२५ **प्रभृन्दती**—हाथों से रुई को पोला करती हुई। भिक्षा देकर हाथ धोने के कारण।

२६ **षट्कायव्यग्रहस्ता**-जिसके हाथ पृथ्वी, जल, अग्नि वायु वनस्पति या त्रसजीवों में रूंधे हुए हों।

२७ **निक्षियन्ती**—साधु के लिए उन जीवों को भूमि पर रख आहार देती हुई।

२८ **अवगाहमाना**—उन जीवों को पैरों से हटाती हुई।

२९ **संघट्यन्ती**—शरीर के दूसरे अंगों से छूती हुई।

३० **आरंभमाला**—षट्काय की विराधना करती

हुई । कुदाली आदि से जमीन खोदना पृथ्वीकाय का आरम्भ है । स्नान करना, कपड़े धोना, वृक्ष बेल वगैरह सींचना अप्काय का आरम्भ है । आग में फूंक मारना अग्नि और वायुकाय का आरम्भ है । सचित्त वायु से भरे हुए गोले वगैरह को इधर-उधर फेंकने से भी वायुकाय का आरम्भ होता है । वनस्पति (लीलोती) काटना या धूप में सुखाना, चावल, मूंग वगैरह बीनना वनस्पति काय का आरम्भ है । त्रस जीवों की विराधना त्रसकाय का आरम्भ है । इसमें से कोई भी आरंभ करते हुए से भिक्षा लेने में दोष है ।

३१ **लिप्तहस्ता**—जिसके हाथ दही वगैरह चिकनी वस्तु से भरे हों ।

३२ **लिप्तमाला**—जिसका बर्तन चिकनी वस्तु से लिप्त हो । इन दोनों में चिकनापन रहने से ऊपर के जीवों की हिंसा का भय है ।

३३ **उद्वर्तयन्ती**—किसी बड़े मटके या बर्तन को उलट कर उसमें से कुछ देती हुई ।

३४ **साधारणदात्री**—बहुतों के अधिकार की वस्तु देती हुई ।

३५ **चौरितदात्री**—चुराई हुई वस्तु को देती हुई ।

३६ **प्राभृतिकां स्थापयन्ती**—साधु को देने के लिए पहिले से ही आहारादि को बड़े बर्तन से निकाल कर छोटे बर्तन में अलग रखती हुई ।

६ संलेखना—अन्तिम समय में संथारे से शरीर छोड़ने के लिये।

पिंडनियुक्ति गा. ६३५-६६८

ये पांच ग्रासैषणा अर्थात् मांडला के दोष साधुओं को लगते हैं।

।। इति आहारादि के ४७ दोष ।।



भाग २

तैंतीस बोल

उपयोग का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र २९ वां पद)

उपयोग के दो भेद—साकार-उपयोग और अनाकार-उपयोग। साकार-उपयोग आठ प्रकार का है—पांच ज्ञान और तीन अज्ञान। पांच ज्ञान-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। तीन अज्ञान-मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभंगज्ञान। अनाकार-उपयोग के चार भेद-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। समुच्चय जीव में दोनों उपयोग पाये जाते हैं—साकार-उपयोग और अनाकार-उपयोग। समुच्चय जीव में साकार-उपयोग आठ प्रकार का और अनाकार-उपयोग चारों प्रकार का पाया जाता है। नैरयिक, देव और तिर्यंच पंचेन्द्रियों

कारणों से आहार करे। उन कारणों के न होने पर भी आहार करने से कारण दोष लगता है।

१ वेदना—क्षुधावेदनीय की शान्ति के लिये।

२ वैयावृत्य—अपने से बड़े आचार्यादि की वैयावृत्य करने के लिये।

३ ईर्यापथ—मार्गादि की शुद्धि के लिये।

४ सयमार्थ—प्रेक्षादि संयम की रक्षा के लिये।

५ प्राणप्रत्ययाथ—अपने प्राणों की रक्षा के लिये।

६ धर्मचिन्तार्थ—शास्त्र पठन-पाठन आदि धर्मचिन्ता के लिए। ऊपर लिखे छह कारणों से साधु भोजन करे! नीचे लिखे छह कारण उपस्थिति होने पर छोड़ दे।

१ आतंक—बीमार होने पर।

२ उपसर्ग—राजा, स्वजन, देव, तिर्यञ्च आदि द्वारा उपसर्ग किए जाने पर।

३ ब्रह्मचर्यगुप्ति—ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये।

४ प्राणिदयार्थ—प्राण, भूत, जीव और सत्वों की रक्षा के लिये।

५ तपोहेतु—तप करने के लिये।

में दोनों उपयोग-साकार-उपयोग, अनाकार-उपयोग पाये जाते हैं, साकार-उपयोग में तीन ज्ञान और तीन अज्ञान और अनाकार-उपयोग में तीन दर्शन पाये जाते हैं। पांच स्थावरों में दोनों उपयोग होते हैं। साकार-उपयोग में दो अज्ञान (मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान) और अनाकार उपयोग में एक अचक्षु दर्शन पाया जाता है। विकलेन्द्रियों में दोनों उपयोग पाये जाते हैं। साकार-उपयोग में दो ज्ञान, दो अज्ञान और अनाकार उपयोग में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय में एक अचक्षु दर्शन तथा चतुरिन्द्रिय में दो चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन पाये जाते हैं। मनुष्य में समुच्चय जीव की तरह कहना। सिद्ध भगवान् में दोनों उपयोग पाये जाते हैं। साकार-उपयोग में केवलज्ञान और अनाकार-उपयोग में केवलदर्शन जानना चाहिये।

पश्यत्ता (पासणया) का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र ३० वां पद)

'पश्यत्ता' शब्द दृशिर्—देखना धातु से बना है किन्तु रूढ़िवश 'पश्यत्ता' शब्द यहां साकार अनाकार ज्ञान का प्रतिपादक है। पश्यत्ता के दो भेद हैं–साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता। त्रैकालिक अर्थात् तीनों काल विषयक ज्ञान साकारपश्यत्ता है और स्पष्ट रूप से देखना अनाकार-पश्यत्ता है। साकार पश्यत्ता के छह-भेद-हैं—श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान और श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान। अनाकारपश्यत्ता के तीन भेद हैं– चक्षुदर्शन,

अवधिदर्शन और केवलदर्शन । समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक में दोनों-साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता पाई जाती है । समुच्चय जीव में साकारपश्यत्ता के छहों भेद और अनाकारपश्यत्ता के तीनों भेद पाये जाते हैं । नैरयिक, देव और तिर्यंच पंचेन्द्रियों में साकारपश्यत्ता के चार भेद–श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभंगज्ञान पाये जाते जाते हैं और अनाकारपश्यत्ता के दो भेद–चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन-पाये जाते हैं । पांच स्थावर में साकारपश्यत्ता का एक भेद-श्रुत अज्ञान पाता है । द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय में साकारपश्यत्ता के दो भेद–श्रुतज्ञान और श्रुत-अज्ञान पाये जाते हैं । इनके चक्षुरिन्द्रिय न होने से अनाकारपश्यत्ता नहीं पायी जाती है । चतुरिन्द्रिय में साकारपश्यत्ता के दो भेद–श्रुतज्ञान और श्रुत-अज्ञान पाये जाते हैं और अनाकारपश्यत्ता का एक भेद-चक्षुदर्शन पाया जाता है । मनुष्य में समुच्चय जीव की तरह कहना चाहिये । सिद्ध भगवान् में दोनों पश्यत्ता पाई जाती हैं । साकारपश्यत्ता में केवलज्ञान और अनाकारपश्यत्ता में केवलदर्शन पाया जाता है ।



३. संज्ञीपद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३१ वां पद)

नेरइय-तिरिय-मणुया य, वणयरसुराय सण्णीऽसण्णी य । वेगलिंदिया असण्णी, जोइस-वैमाणिया सण्णी ॥

समुच्चय जीव संज्ञी×असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं। समुच्चय जीव की तरह मनुष्य भी संज्ञी, असंज्ञी और नो-संज्ञी-नोअसंज्ञी हैं। नैरयिक, दस भवनपति, व्यन्तर, तिर्यंच पंचेन्द्रिय संज्ञी और असंज्ञी हैं, किन्तु नोसंज्ञी-नो-असंज्ञी नहीं हैं। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय असंज्ञी हैं। ज्योतिषी और वैमानिक देव संज्ञी हैं। सिद्ध भगवान् संज्ञी नहीं, असंज्ञी नहीं, किन्तु नोसंज्ञी–नोअसंज्ञी हैं।



४. संयती पद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३२ वां पद)

संजय अस्संजय मीसगा य, जीवा तहेव मणुया य।
संजतरहिया तिरिया, सेसा अस्संजता होंति॥

× यहां संज्ञी में से आकार उत्पन्न होने वाले को संज्ञी माना है और असंज्ञी में से उत्पन्न होने वाले को असंज्ञी कहा है। ज्योतिषी, वैमानिक असंज्ञी में से उत्पन्न नहीं होते, संज्ञी में से ही उत्पन्न होते हैं, अतः इन्हें संज्ञी कहा है। नैरयिक, भवनपति, व्यन्तर देव, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय और मनुष्य संज्ञी और असंज्ञी दोनों में से उत्पन्न होते हैं, अतः इन्हें संज्ञी, असंज्ञी दोनों कहा है। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय मन वाले नहीं हैं, अतः इन्हें असंज्ञी कहा है।

समुच्चय जीव संयत, असंयत, संयतासंयत, नोसंयत, नोअसंयत, नोसंयतासंयत होता है। तिर्यंच, पंचेन्द्रिय और मनुष्य के सिवाय शेष २२ दण्डक के जीव असंयत होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय असंयत और संयतासंयत होते हैं और मनुष्य संयत, असंयत और संयतासंयता होते हैं। सिद्ध भगवान् न संयत होते हैं, न असंयत होते हैं और न संयतासंयत होते हैं किन्तु तेवे नोसंयत, नो असंयत और नो संयतासंयत होते हैं।



५. अवधिपद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३३ वाँ पद)

भेद विसय संठाणे, अब्भितर-बाहिरे य देसोही।
ओहिस्स य खय-वुड्ढी, पडिवाई चेवऽपडिवाई॥

इस थोकड़े में आठ द्वारों से अवधिज्ञान का वर्णन किया जाता है - १. भेदद्वार, २. विषयद्वार, ३. संस्थानद्वार, ४. आभ्यन्तर-बाह्यद्वार, ५. देश-अवधि सर्व-अवधिद्वार, ६. हीयमान, वर्धमान, अवस्थितद्वार, ७. अनुगामी अननुगामीद्वार, ८. प्रतिपाती-अप्रतिपातीद्वार।

(१) भेदद्वार—अवधिज्ञान के दो भेद हैं—भवप्रत्यय और क्षायोपशमिक। नैरयिक और देव के भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। मनुष्य और तिर्यंचपंचेन्द्रिय के क्षायोपशमिक अवधिज्ञान होता है।

(२) विषयद्वार—नैरयिक के अवधिज्ञान का विषय जघन्य आधे कोश (गउ) का और उत्कृष्ट चार कोश का है। पहली नरक से सातवीं नरक तक के नैरयिक के अवधिज्ञान का विषय इस प्रकार है—

नाम	जघन्य विषय	उत्कृष्ट विषय
१. रत्नप्रभा	साढे तीन कोश	चार कोश
२. शर्कराप्रभा	तीन कोश	साढे तीन कोश
३. वालुकाप्रभा	ढाई कोश	तीन कोश
४. पंकप्रभा	दो कोश	ढाई कोश
५. धूमप्रभा	डेढ कोश	दो कोश
६. तमःप्रभा	एक कोश	डेढ कोश
७. तमस्तमःप्रभा	आधा कोश	एक कोश

असुरकुमार देव × के अवधिज्ञान का विषय जघन्य पचीस योजन, उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप-समुद्र है। इतना विशेष जानना कि पल्योपम की आयु वाले असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का विषय संख्यात द्वीप-समुद्र है और सागरोपम की आयुवाले असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का विषय असंख्यात द्वीप-समुद्र है नागकुमार आदि नव निकाय × के देवों और व्यन्तर देवों × के अवधिज्ञान का विषय जघन्य २५ योजन, उत्कृष्ट संख्यात द्वीप-समुद्र है।

× भवनपति और वाणव्यंतर देवों में अवधिज्ञान का विषय जघन्य पचीस योजन कहा है, वह दस हजार वर्ष की स्थिति वाले असुरकुमार देवों की अपेक्षा समझना।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप-समुद्र है। मनुष्य के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट संपूर्ण लोक है तथा अलोक के लोक-प्रमाण असंख्यात खण्ड जानने का सामर्थ्य है, किन्तु अलोक में अवधिज्ञान के विषय रूपी द्रव्य नहीं हैं।

ज्योतिषी देवों के अवधिज्ञान का विषय जघन्य उत्कृष्ट संख्यात द्वीप-समुद्र है। पहले, दूसरे देवलोक के देवों+के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट नीचे रत्नप्रभापृथ्वी का नीचे का चरमान्त, तिर्छे असंख्यात द्वीप-समुद्र तथा ऊपर अपने-अपने विमान की ध्वजा-पताका तक है। तीसरे, चौथे देवलोक के देवों के अवधिज्ञान का विषय पहले, दूसरे देवलोक के देवों के समान है किन्तु इतना अन्तर है कि नीचे दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक जानते-देखते हैं। पांचवें, छठे देवलोक के देव नीचे तीसरे बालुकाप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, सातवें, आठवें देवलोक के देव नीचे चौथी पंकप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, नौवें से बारहवें देवलोक के देव, नीचे पांचवीं धूमप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, नवग्रैवेयक के नीचे की और बीच की त्रिक के देव नीचे छठी तमःप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक

+वैमानिकदेव जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानते देखते हैं जो कहा है, वह पूर्वभव की अपेक्षा से कहा है।

और ऊपर की त्रिक के देव नीचे सातवीं तमस्तमप्रभापृथ्वी के नीचे चरमान्त तक जानते-देखते हैं। ये सभी तिर्छे असंख्यात द्वीप-समुद्र और ऊपर अपने-अपने विमान की ध्वजा-पताका तक जानते-देखते हैं। पांच अनुत्तर विमान के देव-संभिभलोकनाड़ी अर्थात् पूरी चौदह राजू प्रमाण लोकनाड़ी को जानते-देखते हैं।

(३) संस्थानद्वार—नैरयिक के अवधिज्ञान का संस्थान आकार तप्र×जैसा होता है। भवनपतिदेवों के अवधिज्ञान का संस्थान पल्लग+(पल्लक-पाला) जैसा होता है। तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य के अवधिज्ञान का संस्थान नाना प्रकार का होता है। व्यन्तरदेवों के अवधिज्ञान का संस्थान पटह (ढोल) सरीखा और ज्योतिषीदेवों के अवधिज्ञान का संस्थान झल्लरी (झालर) जैसा होता है। बारह देवलोक के देवों के अवधिज्ञान का संस्थान खड़ी मृदंग के आकार का होता है। नवग्रैवेयक के देवों के

X तप्र का अर्थ टीका में 'नदी के प्रवाह में दूर से बहता हुआ काष्ठ समुदाय' बताया है। यह काष्ठसमुदाय लम्बा और त्रिकोण होता है, इसी तरह नैरयिक के अवधिज्ञान का संस्थान भी लम्बा और त्रिकोण होता है। थोकड़े जानने वाले तिपाई का आकार कहते हैं।

+ 'पल्लग' लाट देश में प्रसिद्ध धान्य रखने का विशेष प्रकार का पात्र है। जो नीचे और ऊपर लम्बा होता है और उपरिभाग में कुछ संकरा होता है।

अवधिज्ञान का संस्थान गूंथे हुए फूलों के शिखर वाला–फूलों की चंगेरी जैसा तथा अनुत्तर विमान के देवों के अवधिज्ञान का संस्थान जवनालिका अर्थात् कन्या की चोली (कंचुक) जैसा होता है ।

(४) आभ्यन्तर-बाह्यद्वार—जो अवधिज्ञान निरन्तर अवधिज्ञानी के साथ रहता है और सभी दिशाओं में अपने जानने योग्य क्षेत्र को जानता हैं, उसे आभ्यन्तर-अवधिज्ञान कहते हैं । जो अवधिज्ञान सदा अवधिज्ञानी के साथ नहीं रहता, बीच-बीच में विच्छिन्न हो जाता है, वह बाह्य-अवधिज्ञान है । आभ्यन्तर-अवधिज्ञान जन्म से साथ आता है और बाह्य-अवधिज्ञान पीछे से उत्पन्न होता है । नैरयिक और देव के तेरह दण्डक में आभ्यन्तर–अवधिज्ञान होता है । तिर्यंचपंचेन्द्रिय में बाह्य–अवधिज्ञान होता है । मनुष्य में आभ्यन्तर और बाह्य दोनों अवधिज्ञान होते हैं ।

(५) देश-अवधि सर्व-अवधिद्वार—नैरयिक तथा देव के १३ दण्डक में तथा तिर्यंचपंचेन्द्रिय में देश–अवधि होता है, सर्व-अवधि इनमें नहीं होता । मनुष्य में देश–अवधि भी होता है और सर्व–अवधि भी होता है ।

(६) हीयमान, वर्धमान और अवस्थित अवधिज्ञान-द्वार—नैरयिक तथा देव के १३ दण्डक में अवस्थित अवधिज्ञान होता है । तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य में तीनों प्रकार का—हीयमान, वर्धमान और अवस्थित–अवधिज्ञान होता है ।

(७) अनुगामी अननुगामी अवधिज्ञानद्वार–जो अवधिज्ञान ज्ञानी के साथ जाता है, वह अनुगामी–अवधिज्ञान है। जैसे मनुष्य दीपक साथ में लेकर चलता है तो प्रकाश उसके साथ–साथ जाता है। जो अवधिज्ञान जहां उत्पन्न हुआ है वहीं रहता है, ज्ञानी के उस स्थान से चले जाने पर जो ज्ञानी के साथ नहीं जाता और ज्ञानी के वापिस वहां आने पर जो पुनः हो जाता है, वह अननुगामी–अवधिज्ञान है। जैसे धूणी का प्रकाश धूणी के आसपास रहता है, धूणी से दूर जाने पर धूणी का प्रकाश साथ में नहीं जाता और धूणी पर लौट आने पर पुनः प्रकाश प्राप्त होता है। नैरयिक तथा देव के १३ दण्डक में अनुगामी-अवधिज्ञान होता है। तिर्यंच–पंचेन्द्रिय और मनुष्य में अनुगामी और अननुगामी दोनों प्रकार का अवधिज्ञान होता है।

(८) प्रतिपाति–अप्रतिपातिद्वार—नैरयिक और देव के १३ दण्डक में अप्रतिपाति–अवधिज्ञान होता है। तिर्यंच-पंचेन्द्रिय और मनुष्य में प्रतिपाती और अप्रतिपाति दोनों अवधिज्ञान होते हैं।



७. वेदना का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र ३५ वां पद)

सीता य दव्व सारीर, साता तह वेदणा भवति दुक्खा।
अब्भुवगमोवक्कमिया, निदा य अणिदा य नायव्वा॥

सायमसायं सव्वे सुहं च, दुक्खं अदुक्खमसुहं च।
माणसरहियं विगलिंदिया, उ सेसा दुविहमेव॥

१—वेदना तीन प्रकार की होती है—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। २—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से वेदना चार प्रकार की है। ३—वेदना के शारीरिक, मानसिक और शारीरिक-मानसिक के भेद से तीन प्रकार हैं। ४—साता, असाता और साता-असाता के भेद से वेदना तीन प्रकार की है। ५—सुखा, दुःखा और अदुःख-सुखा (सुख-दुःखरूप) के भेद से भी वेदना तीन प्रकार की है। ६—आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी के भेद से वेदना के दो भेद है। ७—निदा और अनिदा के भेद से वेदना के दो प्रकार हैं। इस तरह सात तरह से यहां वेदना के भेद बताये हैं।

(१) पहली, दूसरी और तीसरी नरक में शीतयोनि वाले नैरयिक होते हैं। ये उष्णवेदना वेदते हैं। चौथी नरक में शीतयोनि वाले और ऊष्णयोनि वाले नैरयिक होते हैं। शीतयोनि वाले उष्णवेदना वेदते हैं और उष्णयोनि वाले शीतवेदना वेदते हैं। इस नरक में शीतयोनि वाले बहुत हैं और उष्णयोनि वाले थोड़े हैं, इसलिये उष्णवेदना वाले अधिक हैं और शीतवेदना वाले थोड़े हैं। पांचवीं नरक में भी दोनों तरह के—शीतयोनि वाले और उष्ण-योनि वाले नैरयिक हैं। शीतयोनि वाले उष्णवेदना वेदते हैं और उष्णयोनि वाले शीतवेदना वेदते हैं। इसमें शीत-योनि वाले थोड़े हैं और उष्णयोनि वाले बहुत हैं, अतः उष्णवेदना वाले थोड़े, शीतवेदना वाले बहुत हैं। छठी नरक में उष्णयोनि वाले नैरयिक हैं उन्हें शीत की वेदना होती है। सातवीं नरक में महा उष्णयोनि वाले नैरयिक हैं और उन्हें शीत की प्रचण्ड वेदना होती है। इस तरह

नरक में शीतवेदना और उष्णवेदना होती है। शेष तेईस दण्डक में तीनों वेदना—शीतवेदना, उष्णवेदना और शीतोष्णवेदना—होती हैं।

(२)द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप सामग्री से उत्पन्न होने वाली वेदना क्रमशः द्रव्यवेदना, क्षेत्रवेदना, कालवेदना और भाववेदना है। वेदना का पुद्‌गलद्रव्य के सम्बन्ध की अपेक्षा से जब विचार करते हैं तब वह द्रव्यवेदना है। नरकादि उत्पत्ति के क्षेत्र की अनेक्षा से जब वेदना का विचार किया जाता है तब वह क्षेत्रवेदना है। इसी तरह नैरयिक के भव सम्बन्धी काल की अपेक्षा से जब वेदना का विचार किया जाता है तब वह काल वेदना है। वेदनीयकर्म के उदय की अपेक्षा जब वेदना का विचार किया जाता है तब वह भाववेदना है। चौबीस दण्डक में चारों वेदना—द्रव्यवेदना, क्षेत्रवेदना, कालवेदना और भाववेदना वेदते हैं।

(३) नैरयिक, १३ देव, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य इन सोलह दण्डकों में तीनों प्रकार की—शारीरिकवेदना, मानसिकवेदना और शारीरिक-मानसिकवेदना होती है। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में एक शारीरिकवेदना ही होती है।

(४) सुखरूप*साता वेदना है, दुःखरूप असाता-

---

* साता और असाता तथा सुख और दुःख में क्या अन्तर है ? साता, असाता, साता-असातारूप जो वेदना कही गई है, वह क्रम से उदयप्राप्त वेदनीयकर्म पुद्‌गलों

वेदना है और सुख-दुःखरूप साता–असातावेदना है। चौबीस दण्डक में साता, असाता और साता–असाता रूप तीनों प्रकार की वेदना होती है।

(५) सुखा, दुःखा, अदुःख-सुखा (सुख-दुःखरूप)–यह तीनों वेदना भी चौबीसों दण्डकों में पाई जाती है।

(६) आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना जो वेदना स्वयं अंगीकार की जाती है। वह आभ्युपगमिकीवेदना है, जैसे केशलुंचन, आतापना लेना। स्वयं उदय हुए या उदीरणा द्वारा उदय में लाये वेदनीयकर्म के अनुभव से होने वाली वेदना औपक्रमिकीवेदना है। तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी दोनों वेदना वेदते हैं। शेष २२ दण्डक के जीव एक औपक्रमिकी वेदना वेदते हैं।

(७) निदा, अनिदावेदना—जिस वेदना में मानसिक ज्ञान होता है वह निदावेदना है और जिस वेदना में मानसिक ज्ञान नहीं होता वह अनिदावेदना है। नैरयिक, भवनपति, व्यन्तर, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य ये चौदह दण्डक संज्ञीभूत और असंज्ञीभूत होते हैं, यानी संज्ञी से उत्पन्न होते हैं और असंज्ञी से उत्पन्न होते हैं। जो संज्ञीभूत हैं, वे निदावेदना वेदते हैं और जो असंज्ञीभूत हैं, वे अनिदावेदना वेदते है। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय असंज्ञीभूत

के अनुभव से होती है और सुखा, दुःखा और अदुःख-सुखा-वेदना दूसरों द्वारा दी जाती है।

हैं, अतः अनिदावेदना वेदते हैं। ज्योतिषी और वैमानिक दो प्रकार के होते हैं—मायीमिथ्यादृष्टि और अमायी सम्यग्दृष्टि। मायीमिथ्यादृष्टि अनिदावेदना वेदना वेदते हैं और अमायी सम्यग्दृष्टि निदावेदना वेदते हैं।



८. काल विशेषण का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, छठा शतक, उद्देशा सातवां)

१ अहो भगवन् ! कोठा में, खाई आदि में बन्द किये हुए, छांदण दिये हुए (छंदित–मुद्रांकित किये, सील लगाकर रखे) धान की योनि (अंकुर उत्पन्न करने की शक्ति) कितने काल तक रहती है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त सचित्त रहती है, ❀बाद में अचित्त-अबीज हो जाती है, उत्कृष्ट शालि (कलमी आदि अनेक जाति के चावल), व्रीहि (सामान्य जाति के चावल), गेहूं, जव, जवार की योनि ३ वर्ष तक सचित्त रहती है।

कलाय (मटर), मसूर, तिल, मूंग, उड़द, चवला, कुलथ, (चोला के आकार वाला चपटा धान–कलथी) तूर, चना आदि की योनि (उत्कृष्ट) ५ वर्ष तक सचित्त रहती

❀ जघन्य सब धान की योनि अन्तर्मुहूर्त तक सचित्त रहती है।

है। अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कांगणी, वरटी, राल, सण, सरसों आदि की योनि (उत्कृष्ट) ७ वर्ष तक सचित्त रहती है, बाद में अचित्त हो जाती है।

२—अहो भगवन् ? एक मुहूर्त के कितने श्वासोच्छ्वास होते हैं ? हे गौतम ! एक मुहूर्त में ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते हैं। एक समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक गणित है। इसके बाद पल्योपम, सागरोपम यावत् कालचक्र तक उपमाकाल है।

३—अहो भगवन् ! अवसर्पिणीकाल के सुषमासुषम आरा में इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कैसा भाव था ? हे गौतम ! भूमिभाग बहुत सम-रमणीय था यावत् देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र के जुगलियों की तरह यहां ६ प्रकार के उत्कृष्ट सुख वाले मनुष्य निवास करते थे—१ पद्म समान गन्ध वाले, २ कस्तूरी समान गन्ध वाले, ३ ममत्वरहित, ४ तेजस्वी, रूपवन्त, ५ सहनशील, ६ उतावलरहित गम्भीर गति से चलने वाले मनुष्य निवास करते थे।



९. पृथ्वी आदि का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, छठा शतक, उद्देशा आठवां)

तमुकाए कप्पपणए अगणी पुढवी य, अगणि पुढवीसु।
आऊ-तेऊ-वणस्सइ, कप्पुवरिम—कण्हराईसु ॥

१—अहो भगवन् ! पृथ्वियां कितनी हैं ? हे

गौतम ! पृथ्वियां ८ हैं (७ नरक, १ ईषत्प्राग्भारा—सिद्धशिला) ।

२—अहो भगवन् ! क्या ७ नरक, १२ देवलोक, नव ग्रैवेयक, पांच अनुत्तरविमान, १ सिद्धशिला, इन २२ स्थानों के नीचे घर, हाट, ग्रामादि हैं ? हे गौतम ! नहीं हैं ।

३—अहो भगवन् ! नारकी और देवलोकों के नीचे गाज, बीज, मेघ, बादल, वृष्टि कौन करते हैं ? हे गौतम ! पहली दूसरी नारकी के नीचे गाज, बीज, मेघ, बादल, और वृष्टि देव, असुरकुमार और नागकुमार ये ३ करते हैं । तीसरी नरक, पहले दूसरे देवलोक के नीचे देव और असुरकुमार, ये दो करते हैं । शेष ४ नरक और तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक तक, इन १४ के नीचे देव (वैमानिक देव) करते हैं (असुरकुमार, नागकुमार नहीं) । नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तरविमान और सिद्धशिला के नीचे कोई नहीं करता । सात नरकों के नीचे बादर अग्निकाय नहीं है, परन्तु विग्रहगति वाले जीव पाये जाते हैं । देवलोकों से लेकर सिद्धशिला तक १५ स्थानों के नीचे बादर पृथ्वीकाय, बादर अग्निकाय नहीं है परन्तु विग्रहगति वाले जीव पाये जाते हैं । नवमें देवलोक से लेकर सिद्धशिला तक इन नौ स्थानों के नीचे बादर अप्काय भी नहीं है परन्तु विग्रहगति वाले जीव पाये जाते हैं । २२ ही स्थानों के नीचे चन्द्र सूर्य आदि नहीं हैं, चन्द्र सूर्य आदि की प्रभा भी नहीं है ।

❀

१०. 'आयुष्यबन्ध' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र छठा शतक, उद्देशा आठवां)

१—अहो भगवन् ! आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम ! आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है—१. जातिनामनिधत्तायु, २. गतिनामनिधतायु ३. स्थितिनामनिधत्तायु, ४. अवगाहनानामनिधत्तायु, ५. प्रदेशनामनिधत्तायु, ६. अनुभागनामनिधत्तायु। ये ६ निधत्त (ढीला) बन्ध की अपेक्षा से हैं और ६ निकाचित (गाढ़ा-मजबूत) बन्ध की अपेक्षा से हैं। ये १२ एक जीव की अपेक्षा से और १२ बहुत जीव की अपेक्षा से, ये २४ आलापक भंटा हुए। २४ समुच्चय के और २४ नीचगोत्र के साथ बंधने वाले तथा २४ उच्चगोत्र के साथ बंधने वाले, ये ७२ आलापाक हुए। इनको समुच्चय जीव और २४ दण्डक, इन २५ से गुणा करने से १८०० आलापक होते हैं।



११. जीवपरिणाम का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १३ वां पद)

परिणमन—एक रूप से अन्य रूप में परिवर्तित होना परिणाम है। द्रव्यास्तिक और पर्यायास्तिक नय की अपेक्षा परिणाम का स्वरूप इस प्रकार है। द्रव्यास्तिकनय

की अपेक्षा अपना अस्तित्व रखते हुए उत्तरपर्याय प्राप्त करना परिणाम है। इसमें एक रूप से पूर्वपर्याय न कायम ही रहती है, न उसका नाश ही होता है। पर्यायास्तिकनय की अपेक्षा विद्यमान पूर्व पर्याय का नाश होना और अविद्यमान उत्तर पर्याय का प्रगट होना परिणाम है।

परिणाम के दो प्रकार हैं—जीवपरिणाम और अजीवपरिणाम। अजीवपरिणाम का वर्णन अगले थोकड़े में किया जायगा। यहां जीवपरिणाम का वर्णन है। जीवपरिणाम के १० भेद हैं—१. गतिपरिणाम, २. इन्द्रियपरिणाम ३. कषायपरिणाम, ४. लेश्यापरिणाम, ५. योगपरिणाम, ६. उपयोगपरिणाम, ७. ज्ञानपरिणाम, ८. दर्शनपरिणाम, ९. चारित्रपरिणाम, १०. वेदपरिणाम।

१. गति—चार गति, २. इन्द्रिय—पांच इन्द्रिय और एक अनिन्द्रिय, ३. कषाय—चार कषाय और एक अकषायी, ४. लेश्या—छह लेश्या और एक अलेशी, ५. योग—तीन योग, एक अयोगी, ६. उपयोग—दो उपयोग—साकार-उपयोग, अनाकार-उपयोग, ७. ज्ञान—आठ, पांच ज्ञान और तीन अज्ञान, ८. दर्शन—तीन, सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन और सम्यगमिथ्या (मिश्र) दर्शन, ९. चारित्र-पांच चारित्र, असंयती और संयतासंयती, १०. वेद—तीन वेद और एक अवेद। कुल ५० बोल हुए।

नरक में इन ५० बोलों में से २९ बोल पाये जाते हैं—गति १, इन्द्रिय ५, कषाय ४, लेश्या ३, योग ३,

उपयोग २, ज्ञान ३, अज्ञान ३, दर्शन ३, चारित्र १ (असंयती), वेद १, नपुंसक=२९ ।

भवनपति और व्यन्तर में ३१-३१ बोल पाये जाते हैं । उपर्युक्त २९ में से नपुंसक वेद कम करना और तेजोलेश्या और दो वेद—स्त्रीवेद पुरुषवेद बढ़ाना । ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में २८-२८ बोल पाये जाते हैं । उक्त ३१ में से पहली तीन लेश्या नहीं होती है । तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक में २७-२७ बोल पाये जाते हैं, उक्त अट्ठाईस में से स्त्रीवेद कम करना चाहिये । तीसरे, चौथे, पांचवें देवलोक में तेजोलेश्या के बदले पद्म-लेश्या कहना और छठे से बारहवें देवलोक में शुक्लालेश्या कहना नवग्रैवेयक में २६ बोल पाये जाते हैं—उक्त २७ में से मिश्रदर्शन नहीं होता है । पांच अनुत्तर विमान में २२ बोल पाये जाते हैं । उक्त २६ में से मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व) और तीन अज्ञान नहीं होते हैं ।

पृथ्वीकाय, अप्पकाय, वनस्पति काय में १८-१८ बोल होते हैं—गति १, इन्द्रिय १, कषाय ४, लेश्या ४, योग १, उपयोग २, अज्ञान २, दर्शन १ (मिथ्यादर्शन), चारित्र १ (असंयती), वेद १ (नपुंसक)=१८ । तेजस्काय और वायुकाय में १७ बोल हैं, तेजोलेश्या नहीं होती है । द्वीन्द्रिय में २२ बोल पाये जाते हैं—उक्त १७ बोल तथा रसनाइन्द्रिय, वचनयोग, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और सम्यग्द-दर्शन=२२ । त्रीन्द्रिय में २३ बोल हैं—उक्त २२ बोलों में घ्राणेन्द्रिय बढ़ी । चतुरिन्द्रिय में २४ बोल हैं—उक्त २३ बोलों में चक्षुइन्द्रिय बढ़ी । तिर्यंचपंचेन्द्रिय में ३५ बोल हैं—

गति १, इन्द्रिय ५, कषाय ४, लेश्या ६, योग ३, उपयोग २, ज्ञान ३, अज्ञान ३, दर्शन ३, चारित्र २ (असंयती और संयतासंयती) वेद ३=३५। मनुष्य में ४७ बोल पाये जाते हैं—तीन गति नहीं पायी जाती हैं।

११. अजीवपरिणाम का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र, १३ वां पद)

अजीवपरिणाम दस प्रकार का है—१. बंधपरिणाम २. गतिपरिणाम, ३. संस्थानपरिणाम, ४. भेदपरिणाम, ५. वर्णपरिणाम, ६. गंधपरिणाम, ७. रसपरिणाम, ८. स्पर्शपरिणाम, ९. अगुरुलघुपरिणाम, १०. शब्दपरिणाम।

१. बंधपरिणाम दो प्रकार का है—स्निग्धबंधपरिणाम और रूक्षबंधपरिणाम। समस्निग्ध और समरूक्ष होने पर परस्पर बंध नहीं होता, किन्तु यदि परस्पर स्निग्धता और रूक्षता की विषममात्रा होती है तब स्कन्ध का बन्ध होता है। आशय यह है कि समगुण स्निग्धपरमाणु आदि का समगुण स्निग्धपरमाणु आदि के साथ बंध नहीं होता और इसी तरह समगुण रूक्षपरमाणु आदि का समगुण रूक्षपरमाणु आदि के साथ बंध नहीं होता, किन्तु यदि स्निग्ध स्निग्ध के साथ और रूक्ष रूक्ष के साथ विषमगुण वाला होता है तो विषममात्रा होने से परस्पर बंध हो जाता है। यह विषमात्रा एकगुण अधिक न होकर दो गुण अधिक, तीन गुण अधिक आदि होनी चाहिए। एकगुण स्निग्ध और एक गुण स्निग्ध का बंध नहीं होता, एक गुण स्निग्ध

और दो गुण स्निग्ध का बंध नहीं होता, दो गुण स्निग्ध और दो गुण स्निग्ध का तथा दो गुण स्निग्ध और तीन गुण स्निग्ध का बन्ध नहीं होता किन्तु दो गुण स्निग्ध और चार गुण स्निग्ध का बन्ध हो जाता है। स्निग्ध और रूक्ष का आपस में बन्ध तभी होता है जब दोनों जघन्य गुण न हों। जघन्य गुण से अधिक होने पर सममात्रा में या विषममात्रा बन्ध हो सकता है, जैसे दो गुण स्निग्ध और दो गुण रूक्ष का बन्ध होता है, दो गुण स्निग्ध और तीन गुण रूक्ष का बन्ध होता है।

२. गतिपरिणाम—गति के दो भेद—स्पृशद्गतिपरिणाम (फुसमाणगतिपरिणाम) और अस्पृशद्गतिपरिणाम (अफुसमाण गतिपरिणाम)। दूसरी वस्तु को स्पर्श करते हुए जो गतिपरिणाम होता है वह स्पृशद्गतिपरिणाम हैं, जैसे प्रयत्न पूर्वक जल पर फेंकी हुई ठीकरी जल का स्पर्श करती हुई जाती है। जो वस्तु गति करते हुए बीच में किसी के साथ स्पृष्ट नहीं होती, वह अस्पृशद्गतिपरिणाम है, जैसे आकाश में उड़ता हुआ पक्षी उड़ते हुए किसी का स्पर्श नहीं करता। अथवा गतिपरिणाम के दो भेद—दीर्घगतिपरिणाम और ह्रस्वगतिपरिणाम। दूर के देशान्तर की प्राप्ति का परिणाम दीर्घगतिपरिणाम है। इसके विपरीत समीप के देशान्तर की प्राप्ति का परिणाम ह्रस्वगतिपरिणाम है।

३. संस्थानपरिणाम के पांच भेद—परिमंडलसंस्थान वृत्त (वट्ट-गोलाकार) संस्थान, त्र्यस्र (तंस-त्रिकोण) संस्थान,

चतुरस्र (चउरंस-चतुष्कोण) संस्थान, आयत (लंबा) संस्थान।

४. भेदपरिणाम के पांच भेद – खंडभेदपरिणाम, प्रतरभेदपरिणाम, चूर्णिकाभेदपरिणाम, अनुतरिकाभेदपरिणाम और उत्करिकाभेदपरिणाम। भाषा के थोकड़े में इनका स्वरूप बताया जा चुका है।

५. वर्णपरिणाम के पांच भेद – काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। ६. गन्ध परिणाम के दो भेद—सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध। ७. रसपरिणाम के पांच भेद—तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा। ८. स्पर्शपरिणाम के आठ भेद—कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष।

९. अगुरुलघुपरिणाम (न हल्का न भारी)—चार स्पर्श वाले कर्म, मन और भाषा के द्रव्य तथा अमूर्त आकाश आदि अगुरुलघुपरिणाम वाले हैं। अष्ट स्पर्शी औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस गुरुलघुपरिणाम वाले होते हैं।

१०. शब्दपरिणाम के दो भेद—सुरभिशब्द (शुभशब्द) और दुरभिशब्द (अशुभशब्द)।



१२. कषाय का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १४ वाँ पद)

आयपइट्ठिय खेत्तं, पडुच्चऽणंताणुबंधि आभोगे ।
चिव उवचिण बंध उदीर, वेद तह निज्जरा चेव ।।

कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ । समुच्चय जीव और चौबीस दंडक में चारों कषाय पाये जाते हैं ।

क्रोध चार स्थानों में रहा हुआ है । १. आत्मप्रतिष्ठित—अपने आचरण का ऐहिक कुफल जानकर अपनी आत्मा पर क्रोध करना । २. परप्रतिष्ठित—किसी के गाली देने पर उस पर क्रोध करना । ३. तदुभयप्रतिष्ठित दोनों यानी अपनी आत्मा पर और दूसरे पर क्रोध करना । ४. अप्रतिष्ठित—क्रोधवेदनीय के उदय होने पर निष्कारण क्रोध करना ।

चार प्रकार से क्रोध उत्पन्न होता है—क्षेत्र, वस्तु, शरीर और उपाधि । क्षेत्र—खेत कुआ आदि । वास्तु—हाट, हवेली आदि । शरीर—दास, दासी आदि । उपधि—भण्डोपकरण, आभूषण, वस्त्र आदि । इन चार बोलों से क्रोध की उत्पत्ति होती है ।

क्रोध चार प्रकार का होता है—अनन्तानुबन्धीक्रोध, अप्रत्याख्यानीक्रोध, प्रत्याख्यानावरणीयक्रोध और संज्वलनक्रोध । अनन्तानुबंधीक्रोध सम्यक्त्व का घात करता है ।

अप्रत्याख्यानीक्रोध देशविरति का घात करता है। प्रत्याख्यानावरणीयक्रोध सर्वविरति का घात करता है। संज्वलन-क्रोध यथाख्यातचारित्र का घात करता है।

क्रोध के चार प्रकार—१. आभोगनिर्वर्तित (आभोग निव्वत्तिए) क्रोध—क्रोध का कारण और क्रोध का फल जानकर क्रोध करना। २. अनाभोगनिर्वर्तित (अणभोग-निव्वत्तिए) क्रोध—गुण-दोष जाने बिना परवश होकर क्रोध करना। ३. उपशांत क्रोध—जो क्रोध अन्दर हो पर ऊपर से शांत दिखाई दे, उदय में नहीं आया हुआ है। ४. अनुपशान्तक्रोध—उदय में आया हुआ क्रोध। इसी तरह मान, माया और लोभ के स्थान, कारण और प्रकार जानना चाहिये। ४×४=१६×२५=४००।

चार स्थान - क्रोध, मान, माया और लोभ के वश होकर जीव ने भूतकाल में आठ कर्मों का चय किया है, उपचय किया है, आठ कर्म बांधे हैं, आठ कर्मों की उदीरणा की है, आठ कर्म वेदे हैं और आठ कर्म की निर्जरा की है। वर्तमान में भी आठ कर्मों का चय, उपचय, बंध, उदीरणा, वेदन और निर्जरा करता है और भविष्य में भी करेगा।

१. चय—कषायपरिणत आत्मा का कर्मपुद्गल ग्रहण करना। उपचय—अबाधाकाल समाप्त हो जाने पर ज्ञाना-

वरणीयादि आठ कर्मों का निषेक+करना। ३. बंध—निकाचितबंध करना। ४. उदीरणा—उदय में नहीं आये हुए कर्मों का तप आदि प्रयत्न द्वारा उदयावलि में प्रवेश कराना। ५. वेदन—अबाधाकाल के पश्चात् उदयप्राप्त तथा उदीरणा द्वारा उदयावलि में आये हुए कर्मों का फल-भोग करना। ६. निर्जरा—कर्मों का फल भोगकर उन्हें अकर्मरूप करना अर्थात् पूर्वकृत कर्मों का फल भोगकर उन्हें नाश करना।

चय, उपचय आदि को समझाने के लिए स्थूल दृष्टि से कंडों (छाणा) का दृष्टान्त दिया जाता है, जैसे—कंडों को इकट्ठा करना (चय), जमाना (उपचय), जमे हुए कंडों को गोबर या मिट्टी से लीपना (बंध), वापिस बिखेरना (उदीरणा), एक-एक करके जलाना (वेदन), सभी कंडे जलाकर जगह साफ कर देना (निर्जरा) है।

+ कर्मविशेष का अबाधाकाल समाप्त होने पर प्रथम समय में बहुत प्रदेशों का उदय में आना और दूसरे, तीसरे आदि समयों में हीन, हीनतर प्रदेशों का उदय में आना निषेक है। असत्कल्पना से २५ समय की स्थिति वाले कर्मविशेष के १०५० परमाणु बांधे। पांच समय का अबाधाकाल समाप्त होने पर छठे समय में १००, सातवें समय में ९५, आठवें समय में ९० यावत् २५ वें समय में पांच कर्मपरमाणु उदय आकर यह कर्म निःशेष हो जाता है।

ये छह बोल समुच्चय जीव और चौबीस दंडक की अपेक्षा ६×२५=१५० हुए। तीन काल की अपेक्षा १५०×३=४५० हुए। एक जीव और अनेक जीव की अपेक्षा ४५०×२=९०० हुए। ये ९०० तथा ऊपर कहे हुए ४०० कुल १३०० आलापक हुए। १३०० क्रोध के, १३०० मान के, १३०० माया के और १३०० लोभ के कुल १३००×४=५२०० आलापक (भंग) हुए।



१३. 'अणगार वैक्रिय' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, तीसरा शतक, उद्देशा पांचवां)

गाथा—इत्थी असि पडागा, जण्णोवइए य होइ बोद्धव्वे।
पल्हत्थिय पलियंके, अभिओग विकुव्वणा मायी॥

१-अहो भगवन् ! लब्धिवंत भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गल लेकर अनेक स्त्री, पुरुष, हाथी, घोड़ा, सिंह, व्याघ्र आदि रूप यावत् शिविका (पालखी), स्यन्दमाणी (म्याना) का रूप, ढ़ाल और तलवार वाले मनुष्य के रूप, एक जनेऊ, दो जनेऊ वाले मनुष्य के रूप, एक तरफ पलाठी (पालखी मार कर बैठना), दोनों तरफ पलाठी, एक तरफ पर्यंकासन, दोनों तरफ पर्यंकासना इत्यादि रूप बनाकर आकाश में उड़ने में समर्थ हैं ? युवति युवा के दृष्टान्त से, चक्रनाभि के दृष्टान्त से वैक्रियरूप बनाकर जम्बूद्वीप को भरने में समर्थ हैं ? हां, गौतम ! समर्थ हैं, विषय की

अपेक्षा से ऐसी शक्ति है, परन्तु कभी ऐसा किया नहीं, करते नहीं और करेंगे नहीं।

इसी तरह बाहर के पुद्गल ग्रहण करके हाथी, घोड़ा, सिंह, व्याघ्र आदि के रूप बनाकर अनेक योजन जाने में समर्थ हैं। उनको हाथी, घोड़ा आदि नहीं कहना, किन्तु अनगार कहना। वे आत्मऋद्धि, आत्मकर्म और आत्मप्रयोग से जाते हैं, किन्तु परऋद्धि, परकर्म और पर-प्रयोग से नहीं जाते। ऐसी विकुर्वणा मायी (प्रमादी) अनगार करते है, अमायी (अप्रमादी) अनगार नहीं करते। मायी अनगार उस बात की आलोयणा (आलोचना) किये बिना काल करे तो आभियोगिक (दास-सेवक) देव उत्पन्न होते हैं, कोई देवपदवी नहीं पाते। अमायी (अप्रमादी) अनगार आलोयणा करके काल करें तो आभियोगिक (सेवक) देवपने उत्पन्न नहीं होते किन्तु अनाभियोगिक (इन्द्र सामानिक, तायतिसक, लोकपाल, अहमिन्द्र) नवग्रैवेयक, अनुत्तर विमानों में देवपने उत्पन्न होते हैं।



१४. 'विस्मय' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र दसवां शतक, उद्देशा तीसरा)

१—अहो भगवन् ! क्या देव चार पांच आवास (देवों के रहने के स्थान) तक अपनी ऋद्धि से (मूल रूप से) जाते हैं और उसके आगे पराई ऋद्धि से (उत्तर-वैक्रिय बनाकर) जाते हैं ? हां गौतम ! देव चार पांच

आवास तक अपनी ऋद्धि से जाते हैं और उसके आगे पराई ऋद्धि से जाते हैं।

२–अहो भगवन् ! क्या अल्पऋद्धि (अल्प शक्ति) वाला देव महाऋद्धि (महाशक्ति) वाले देव के बीचोंबीच होकर जाता है ? हे गौतम ! नो इणट्ठे समट्ठे (नहीं जा सकता है)।

३—अहो भगवन् ! क्या समऋद्धि (समानशक्ति) का देव समऋद्धि वाले देव के बीचोंबीच होकर जा सकता है ? हे गौतम ! जाने की शक्ति नहीं, किन्तु वह (सामने वाला) देव प्रमाद में हो तो चला जाता है।

४—अहो भगवन् ! वह देव विस्मय उत्पन्न कर जाता है या विस्मय उत्पन्न किए बिना ही जाता है ? हे गौतम ! विस्मय उत्पन्न कर जाता है। (धूंवर, अन्धकार आदि करके सामने वाले देव को आश्चर्य में डाल देता है। फिर उसके बिना देखे ही चला जाता हैं) विस्मय उत्पन्न किये बिना नहीं जाता।

५—अहो भगवन् ! पहले विस्मय उत्पन्न करता है पीछे जाता है या पहले जाता है पीछे विस्मय उत्पन्न करता

नोट—भगवतीसूत्र शतक दसवां का पहिला उद्देशा, ग्यारहवां शतक का दसवां उद्देशा और सोलहवां शतक का आठवां उद्देशा, ये तीनों उद्देशों का ? थोकड़ा करने का उद्देश्य यह है कि सीखने वाले को सुगम रहे, क्योंकि तीनों शतक के भांगे प्रायः एक माफिक ही हैं।

है ? हे गौतम ! पहले विस्मय उत्पन्न करता है, पीछे जाता है, किन्तु पहले जाता है पीछे विस्मय उत्पन्न करता है यह बात नहीं है।

६—अहो भगवन् ! क्या महाऋद्धिवाला देव अल्पऋद्धि के देव के बीचोंबीच होकर जाता है ? हां, गौतम ! जाता है। अहो भगवन् ! विस्मय उत्पन्न कर जाता है या विस्मय उत्पन्न किये बिना ही जाता है ? हे गौतम ! विस्मय उत्पन्न कर भी जाता है और विस्मय उत्पन्न किये बिना भी जाता है। अहो भगवन् ! विस्मय उत्पन्न कर जाता है तो क्या पहले विस्मय उत्पन्न करता है, पीछे जाता है या पहले जाता है, पीछे विस्मय उत्पन्न करता है ? हे गौतम ! जाने वाले देव की जैसी इच्छा हो, उस तरह से जाता है (पहले विस्मय उत्पन्न करता है, पीछे जाता है या पहले जाता है पीछे विस्मय उत्पन्न करता है)। इस तरह १३ दण्डक देव के कह देना। समुच्चय देव और १३ दण्डक देव के, ये १४ आलापक हुए।

७—अहो भगवन् ! क्या अल्पऋद्धि देव महाऋद्धि के देव के बीचोंबीच होकर जाता है ? हे गौतम ! नो इणट्ठे समट्ठे (नहीं जा सकता)। यावत् ऊपर की तरह कहना चाहिये। समुच्चय देव और १३ दण्डक के देव, इन चौदह में तीन अलापक (१. अल्पऋद्धिक के साथ महाऋद्धिक, २. समऋद्धिक के साथ समऋद्धिक, ३. महाऋद्धिक के साथ अल्पऋद्धिक) करने से ४२ (१४×३=४२) आलापक हुए। ४२ आलापक देव का देवता के साथ कहना, ४२ आलापक देव का देवी के साथ कहना, ४२

आलापक देवी का देव के साथ कहना, ४२✽ आलापक देवी का देवी के साथ कहना। कुल १६८ (४२X४= १६८) आलापक हुए।



१५. 'वृक्ष' आदि का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, दसवां शतक, उद्देशा तीसरा)

१. अहो भगवन्! वृक्ष कितने प्रकार के हैं! हे गौतम! वृक्ष तीन प्रकार के हैं—संख्यातजीवी, असंख्यातजीवी, अनन्तजीवी। संख्यातजीवी (संख्यात जीव वाले)—ताल, तमाल, तक्कली, तेतली, नारियल आदि हैं। असंख्यातजीवी (असंख्यात जीव वाले) के दो भेद—एगट्ठिया और बहुबीजा। एगट्ठिया में एक बीज (गुठली) होता है–जैसे-नीम, आम, जामुन आदि अनेक भेद हैं। बहुबीजा (एक फल में बहुत बीज)–बड़, पीपल, उंबर आदि। अनंत जीवी (अनंत जीव वाले)—आलू, मूला आदि जमीकन्द हैं।

२—अहो भगवन्! कछुआ, कछुए की श्रेणी, गोह,

✽ समुच्चय देव के ४२, देव का देव के साथ ४२, देव का देवी के साथ ४२, देवी का देव के साथ ४२, देवी का देवी के साथ ४२, ये कुल २१० आलापक (भंग) होते हैं ऐसा कोई थोकड़ा वाले कहते हैं। तत्त्व केवली-गम्य है।

गोह की श्रेणी, गाय, गाय की श्रेणी, मनुष्य, मनुष्य की श्रेणी, महिष (भैंसा), महिष की श्रेणी, इन सब के दो तीन यावत् संख्यात खण्ड किये हों तो क्या बीच में जीव के प्रदेश फरसते हैं ? हां- गौतम ! फरसते हैं।

३—अहो भगवन् ! क्या शस्त्रप्रहार, अग्निताप आदि से उन प्रदेशों को बाधा पीड़ा होती है ? हे गौतम ! बाधा, पीड़ा नहीं होती है×।

४—अहो भगवन् ! पृथ्वियां कितनी हैं ? हे गौतम! पृथ्वियां आठ हैं—१. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. वालुकाप्रभा, ४. पंकप्रभा, ५. धूमप्रभा, ६. तमप्रभा, ७. तमतमाप्रभा, ८. ईसिपब्भारा (सिद्धशिला) ❀ ।



१६. 'आजीविक' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, आठवां शतक, उद्देशा पांचवां)

१—अहो भगवन् ! कोई श्रावक घर की सब वस्तुओं को वोसिरा (त्याग) कर सामायिक, पौषध आदि

X वृक्षों का तथा कछुए आदि का विस्तार श्री पन्नवणा सूत्र के प्रथम पद से जानना ।

❀ रत्नप्रभा चरम है या अचरम है इत्यादि विस्तार श्री पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों के प्रथम भाग से जानना ।

व्रत करके उपाश्रय में बैठा है। कोई चोर उसकी वस्तु को चुरा ले गया। सामायिक, पौषध पार कर वह श्रावक उस वस्तु की खोज करे तो क्या वह वस्तु उसी की है या दूसरे की है ? हे गौतम ! वह वस्तु उस श्रावक की ही है, क्योंकि उस वस्तु पर श्रावक की ममता है, ममता छूटी नहीं। इसी तरह कोई श्रावक सब कुटुम्ब परिवार को वोसिरा कर सामायिक, पौषध आदि व्रत कर उपाश्रय में बैठा है, उस वक्त कोई व्यभिचारी लम्पट पुरुष उस श्रावक की स्त्री को भोगता है, तो क्या वह जाया (श्रावक की स्त्री को) भोगता है, या अजाया (श्रावक की स्त्री नहीं) को भोगता है ? हे गौतम ! उस श्रावक की जाया को भोगता है, अजाया को नहीं। क्योंकि श्रावक का उस पर प्रेमबन्ध है, प्रेमबन्ध छूटा नहीं।

श्रावक के त्याग-पच्चक्खाण के करण (करना, कराना, अनुमोदना), योग (मन, वचन, काया) संबन्धी ४९ भांगे हैं। अतीतकाल (भूतकाल) के पाप से निवृत्त होता है, वर्तमान में संवर करता है, और आगामी काल के पच्चक्खाण करता है। इस तरह तीन काल संबन्धी ४९×३=१४७ भांगे होते हैं। पांच अणुव्रत संबन्धी १४७×५=७३५ मूल भांगे होते हैं। ४९ भांगों के ४९× ४९=२४०१ उत्तर भांगे होते हैं।

अहो भगवन् ! इस तरह कारण, योग के भांगे गोशालक के श्रावकों के होते हैं ? हे गौतम ! नहीं होते हैं।

अहो भगवन् ! गोशालक के मुख्य श्रावक कितने हैं ? हे गौतम !. १२ हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—१. ताल, २. तालप्रलम्ब, ३. उद्विध, ४. संविध, ५. अवविध, ६. उदय, ७. नामोदय, ८. नर्मोदय, ६. अनुपालक, १०. शंखपालक, ११. आयंबुल, १२. कातर । ये गोशालक को देव मानते हैं । माता-पिता की सेवा करते हैं । पांच प्रकार के फल नहीं खाते—१. उंबर का फल, २. बड़ का फल, ३. बोर, ४. सत्तर (शहतूत) का फल, ५. पीपल का फल । वे लहसुन, कांदा आदि कन्दमूल नहीं खाते । वे अनिर्लांछित (नपुंसक नहीं बनाये हुए) तथा नाक नहीं बिंधे हुए बैलों से त्रसप्राणी की हिंसारहित व्यापार करके आजीविका करते हैं ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के श्रावकों को १५ कर्मादान करना, कराना, अनुमोदना नहीं कल्पता है ।❀

❀ पन्द्रह कर्मादान

जिन धधों और कार्यों (कर्म) से उत्कट ज्ञानवरणीय आदि कर्मों का बन्ध होता है उन्हें कर्मादान कहते हैं । कर्मादान श्रावकों के जानने योग्य हैं पर आचरण योग्य नहीं हैं । ये कर्मादान पन्द्रह हैं:—

१—इंगालकम्मे (अंगारकर्म)—जंगल को खरीदकर व ठेके लेकर कोयले बनाने और बेचने का धन्धा करना अंगारकर्म है । इस में छः काय के जीवों का वध है ।

१५ कर्मादानों के नाम—१. इंगालकम्मे, २. वणकम्मे, ३. साडीकम्मे. ४. भाडीकम्मे, ५. फोड़ीकम्मे, ६. दंतवाणिज्जे, ७. लक्खवाणिज्जे, ८. केसवाणिज्जे, ९. रसवाणिज्जे, १०. विसवाणिज्जे, ११. जंतपीलणकम्मे, १२. निल्लंछणकम्मे, १३. दवग्गिदावणया, १४. सरदहतलायसोसणया १५. असईजणपोसणया । ये श्रावक त्याग-पच्चक्खाण का निर्मल पालन करके किसी एक देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

अहो भगवन् ! देवलोक कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! चार प्रकार के हैं—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ।

२—वणकम्मे (वनकर्म)—जंगल को खरीदकर वृक्षों को काटकर बेचना और इससे आजीविका करना वनकर्म है ।

३—साड़ीकम्मे (शाकटिककर्म)—वाहन सहित गाड़ी, तांगा, इक्का आदि बनाने और बेचने का धंधा कर आजीविका करना शाकटिककर्म है ।

४—भाड़ीकम्मे (भाटीकर्म)—गाड़ी आदि से दूसरों का समान भाड़े पर ले जाना तथा बैल, घोड़े आदि को भाड़े देना—इस प्रकार भाड़े से आजीविका करना भाटीकर्म है ।

५—फोडीकम्मे (स्फोटककर्म) हल, कुदाली, सुरंग आदि से भूमि, खान आदि फोड़ना और निकले हुए पत्थर आदि को बेचकर आजीविका करना अथवा जमीन

खोदने का ठेका लेकर जमीन खोदना और इस प्रकार आजीविका करना स्फोटककर्म है।

६—दंतवाणिज्जे (दंतवाणिज्य)—हाथीदांत, शंख, चर्म, चामर आदि खरीदने बेचने का धंधा कर आजीविका करना दन्तवाणिज्य है। ये धन्धे करने वाले लोग हाथीदांत आदि निकालने वालों को पहले इनके लिये अग्रिम मूल्य दे देते हैं और वे लोग हाथी आदि की हिंसा कर हाथीदांत आदि लाकर देते हैं। इस प्रकार ये व्यापार महा हिंसाकारी है।

७—लक्ख वाणिज्जे (लाक्षा वाणिज्य)—लाख का क्रय विक्रय कर आजीविका करना लाक्षा वाणिज्य है। इसमें त्रस जीवों की बड़ी हिंसा होती है।

८—रसवाणिज्जे (रसवाणिज्य)—मदिरा आदि बनाने और बेचने का कलाल आदि का धंधा कर आजीविका करना रसवाणिज्य है। मदिरा बनाने में हिंसा तो होती ही है, किन्तु इसके पीने से अन्य बहुत से दोष संभव हैं।

९—विषवाणिज्जे (विषवाणिज्य)—विष शंखिया आदि बेचने का धंधा करना विषवाणिज्य है। इसमें बहुत जीवों की हिंसा होती है।

१०—केशवाणिज्जे (केशवाणिज्य)—दासी को खरीद कर दूसरी जगह अधिक मूल्य में बेचने का धन्धा करना केशवाणिज्य है।

११—जंतपीलणकम्मे (यन्त्रपीड़नकर्म)—तिल, ईख आदि पीलने के यन्त्र कोल्हू, चरखिये आदि से तिल आदि पीलने का धंधा करना यन्त्रपीडनकर्म है। उस समय में प्रायः यही यन्त्र प्रसिद्ध थे। आज के युग के महा-रम्भपोषक जितने भी यन्त्र हैं, उनको भी उपलक्षण से यंत्रपीड़नकर्म में शामिल किया जा सकता है।

१२—निल्लंक्षणकम्मे (निलाञ्छनकर्म)- बैल, घोड़े आदि को नपुंसक बनाने का धंधा करना निर्लाञ्छनकर्म है।

१३—दवग्गिदावणया (दावग्निदापनता)—क्षेत्रादि साफ करने के लिये जंगल में आग लगा देना दावाग्नि-दापनता है। इसमें लाखों जीवों की हिंसा होती है।

१४—सरदहतलायसोसणया (सरोह्रदतडागशोषणता)—गेहूं आदि धान बोने के लिये सरोवर, ह्रद और तालाब को सुखाना सरोह्रदतडागशोषणता है।

१५—असईजणपोसणया (असतीजनपोषणता)—आजीविका के लिये दुश्चरित्र स्त्रियों का पोषण करना असतीजन पोषणता है।



१७. 'श्रमण निर्ग्रन्थों के सुख की तुल्यता का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक चौदहवां, उद्देशा नौवां)

१—अहो भगवन् ! जो श्रमण-निर्ग्रन्थ आर्यपने-पापकर्म रहितपने विचरते हैं, उनका सुख कैसा होता है ? हे गौतम ! एक मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख वाणव्यन्तर देवों के सुख से बढ़कर होता है। दो मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख असुरेन्द्र के सिवाय बाकी भवनपतिदेवों (नव निकाय के देवों) के सुखसे बढ़कर होता है। तीन मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख असुरकुमारों से बढ़कर होता है। चार मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख ग्रह, नक्षत्र, तारा इन तीन ज्योतिषी देवों के सुख से बढ़कर होता है। पांच मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सूर्य, चन्द्र ज्योतिषी देवों के सुख से बढ़कर होता है। छह मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सौधर्म-ईशान देवलोक के देवों के सुख से बढ़कर होता है। सात मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सनत्कुमार—माहेन्द्र देवलोक के देवों के सुख से बढ़कर होता है। आठ मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख ब्रह्मदेवलोक-लांतकदेवलोक के देवों के सुख से बढ़कर होता है। नौ मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख महाशुक्र-सहस्रार देवलोक के देवों के सुख से बढ़कर होता है। दस मास की दीक्षापर्याय वाले

श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख आणत-प्राणत, आरण-अच्युत देवलोकों के देवों के सुख से बढ़कर होता है। ग्यारह मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण निर्ग्रन्थ का सुख ग्रैवेयकदेवों के सुख से बढ़कर होता है। बारह मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख पांच अनुत्तरविमान के देवों के सुख से बढ़कर होता है। इसके बाद अधिकाधिक शुद्ध (शुद्ध और शुद्धतर) परिणाम वाला होकर सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।



१८. 'केवली और सिद्ध' का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवां, उद्देशा दसवां)

१ - अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते और देखते हैं ? हां, गौतम ! जानते और देखते हैं। इसी तरह सिद्ध भगवान् भी छद्मस्थ को जानते और देखते हैं।

२—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी आधोवधिक (नियत क्षेत्र विषयक अवधिज्ञानी) को, परमावधिज्ञानी को, केवलज्ञानी को और सिद्धों को जानते और देखते हैं ? हां, गौतम ! जानते और देखते हैं। इसी तरह सिद्ध भगवान् भी इन सब को जानते और देखते हैं।

३—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी बोलते और प्रश्न का उत्तर देते हैं ? हां गौतम ! बोलते और प्रश्न का उत्तर देते हैं।

४—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी की तरह सिद्ध-भगवान् भी बोलते और प्रश्न का उत्तर देते हैं ? हे गौतम ! नहीं, सिद्ध भगवान् बोलते नहीं और प्रश्न का उत्तर भी नहीं देते हैं। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! केवलज्ञानी उत्थान (खड़ा होना), कर्म (गमनादि क्रिया करना) बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम सहित हैं और सिद्ध भगवान् उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषकार-पराक्रम रहित हैं। इसलिये वे केवलज्ञानी की तरह बोलते नहीं और प्रश्न का उत्तर भी नहीं देते हैं।

५—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी अपनी आंख को खोलते और बन्द करते हैं, शरीर को संकोचते और पसारते हैं, खड़े रहते और बैठते हैं, शय्या (वसति) और नैषेधिकी (थोड़े समय के लिये वसति) क्रिया करते हैं ? हां गौतम ! ये सब क्रियाएं करते हैं।

६—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी रत्नप्रभा पृथ्वी को 'यह रत्नप्रभा पृथ्वी है' इस तरह जानते और देखते हैं ? हां, गौतम ! जानते और देखते हैं। इसी तरह सिद्ध भगवान् के लिये कह देना चाहिए। इसी तरह शर्करा-पृथ्वी यावत् तमतमाप्रभापृथ्वी, बारह देवलोक, नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान, ईषत्प्राग्भारापृथ्वी को भी जानते और देखते हैं।

७—अहो भगवन् ! क्या केवलीज्ञानी परमाणु पुद्-गल को, 'यह परमाणु पुद्गल है' इस तरह जानते और देखते हैं ? हां गौतम ! जानते और देखते हैं। इसी तरह

दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को जानते और देखते है। इसी तरह सिद्ध भी परमाणु यावत् अनन्त प्रदेशी स्कंध को जानते और देखते हैं।



१९. तीन जागरणा का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक १२ वां, उद्देशा पहला)

१. अहो भगवन् ! जागरणा कितने प्रकार की है? हे गौतम ! जागरणा तीन प्रकार की है※ १. धर्म जागरणा, २. अधर्मजागरणा, ३. सुदक्खु जागरणा। (१) धर्म जागरणा के ४ भेद—१ आचार धर्म, २. क्रिया धर्म, ३. दया धर्म, ४. स्वभाव धर्म। आचार धर्म के ५ भेद—१. ज्ञानाचार, २, दर्शनाचार, ३. चारित्राचार, ४. तपाचार, ५, वीर्याचार। ज्ञानाचार के ८ भेद, दर्शनाचार के ८ भेद, चारित्राचार के ८ भेद, तपाचार के १२ भेद, वीर्याचार के ३ भेद, ये सब मिलाकर ३९ भेद हुए।

ज्ञानाचार के आठ भेद—

(१) कालाचार—शास्त्र में जिस समय जो सूत्र पढ़ने की आज्ञा है, उस समय ही उसे पढ़ना।

(२) विनयाचार—ज्ञानदाता गुरु का विनय करना।

※ भेदानुभेद अन्य ग्रन्थों से लिये गये हैं।

(३) बहुमानाचार—ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय में भक्ति और श्रद्धा के भाव रखना।

(४) उपधानाचार—ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना।

(५) अनिह्नवाचार—ज्ञान पढ़ाने वाले गुरु का नाम नहीं छिपाना।

(६) व्यञ्जनाचार—सूत्र के पाठ का शुद्ध उच्चारण करना।

(७) अर्थाचार—सूत्र का शुद्ध एवं सत्य अर्थ करना।

(८) तदुभयाचार—सूत्र और अर्थ दोनों को शुद्ध पढ़ना और समझना।

दर्शनाचार के ८ भेद—

(१) निशंकिय (निशंकित)—वीतराग सर्वज्ञ के वचनों में संदेह न करना।

(२) निकंखिय (निःकांक्षित)—परदर्शन (मिथ्यामत) की वांछा नहीं करना।

(३) निव्वितिगिच्छा (निर्विचित्सा)—क्रिया के फल में (धर्मफल की प्राप्ति के विषय में) सन्देह न करना।

(४) अमूढदिट्ठि (अमूढदृष्टि)—पाखण्डियों का

(मिथ्यामत का) आडम्बर देखकर उसमें मोहित (मूर्च्छित) न होना ।

(५) उववूह—गुणी पुरुषों को देखकर उनके गुणों की प्रशंसा करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना ।

(६) थिरीकरणे (स्थिरीकरण)—धर्म से डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करना ।

(७) वच्छल (वात्सल्य)—अपने धर्म से तथा स्व-धर्मी बन्धुओं से प्रेम रखना ।

(८) प्रभावना—वीतरागप्ररूपित धर्म की उन्नति करना, प्रचार करना, दिपाना, कृष्ण वासुदेव और श्रेणिक राजा की तरह ।

चारित्राचार के ८ भेद—१. ईर्यासमिति, २. भाषा-समिति, ३. एषणासमिति, ४. आयाणभंडमत्तनिखेवणासमिति, (आदानभंडामात्रनिक्षेपणासमिति), ५. उच्चार-पासवण-खेल-जल्लसिंघाणपरिठावणियासमिति (उच्चार-प्रश्रवण-खेल-जल्लसिंघाणपरिस्थापनिकासमिति), ६. मनगुप्ति, ७. वचनगुप्ति, ८. कायगुप्ति ।

तपाचार के १२ भेद—छह बाह्यतप, छह आभ्यन्तर-तप । छह बाह्यतप के नाम—१. अनशन, २. ऊनोदरी, ३. भिक्षाचरी, ४. रसपरित्याग, ५ कायक्लेश, ६. प्रतिसंली-नता । आभ्यन्तरतप के ६ भेद—१. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावच्च, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान, ६. कायोत्सर्ग । तप

के ये १२ भेद हैं। इसलोक और परलोक में सुख प्राप्ति आदि की वांछा रहित तप करना अथवा आजीविका रहित तप करना। ये तप के १२ आचार हैं।

वीर्याचार के ३ भेद—धर्मके कार्य में बल- वीर्य को गोपे (छिपावे) नहीं, २. पूर्वोक्त ३६ बोलों में उद्यम करे, ३. शक्ति अनुसार धर्मकार्य करे। ये सब मिलाकर आचार-धर्म के ३९ भेद हुए।

२ क्रियाधर्म—करणसत्तरि के ७० बोल—

गाथा-पिंडविसोही समिई, भावणा पडिमा इंदियनिग्गहो य।
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहं चेव करणं तु ॥

अर्थ—४ चार प्रकार की पिण्डविशुद्धि, ५ पांच समिति १२ बारह भावना, १२ बारह भिक्षुपडिमा, ५ पांच इन्द्रियों का निरोध, २५ पच्चीस प्रकार की पडिलेहणा, ३ तीन गुप्ति, ४ चार अभिग्रह, ये सब मिलाकर ७० भेद हुए।

चरण सत्तरि के ७० बोल—

वय समणधम्म, संजम वेयावच्चं च वंभगुत्तीओ।
नाणाइतीयं तव, कोइ निग्गहाइ चरणमेयं ॥

अर्थ—५ महाव्रत, १० यतिधर्म, १७ प्रकार का संयम १० प्रकार की वैयावच्च, ९ ब्रह्मचर्य की नव वाड़, ३ तीन रत्न (ज्ञान, दर्शन, चारित्र), १२ बारह प्रकार का तप, ४ चार कषाय का निग्रह, ये सब मिलाकर चरणसत्तरि के ७० भेद हुए।

३ दयाधर्म के ८ भेद—१. स्वदया-अपनी आत्मा

को—पाप से बचाना, २. परदया—दूसरे जीवों की रक्षा करना, ३ द्रव्यदया—देखादेखी दया पालना या शर्म से जीवों की रक्षा करना अथवा कुलाचार से दया पालना, ४. भावदया—ज्ञान से जीव को जीवात्मा जानकर उस पर अनुकम्पा लाकर बचाना (जीव की रक्षा करना), ५. व्यवहार-दया—श्रावक के लिये जिस तरह दया पालना कहा है उसी तरह दया पालना, घर का कार्य करते हुए यतना रखना, ६. निश्चयदया—अपनी आत्मा को कर्मबन्धन से छुड़ाना, पुद्गल पर-वस्तु है, उस पर से ममता उतार कर, उसका परिचय छोड़कर आत्मगुण में रमण करना जीव का कर्म-रहित शुद्ध स्वरूप प्रकट करना, यह निश्चयदया चौदहवें गुणस्थान के अन्त में पूर्णरूप से प्राप्त होती है। ७. स्वरूप-दया—किसी जीव को मारने के लिए पहले उसको खूब खिला पिला कर मोटा ताजा करे, सार-संभाल करे। यह दया ऊपर से दिखावा मात्र है, क्योंकि पीछे उसको मारने के परिणाम है। जैसे कि उत्तराध्ययन सूत्र के सातवें अध्ययन में बकरे का दृष्टान्त दिया गया है। ८ अनुबन्ध-दया—जीव को ऊपर से तकलीफ देवे किन्तु अन्दर के परिणाम उसको साता (सुख-शांति) पहुंचाने के हैं। जैसे-माता पुत्र का रोग मिटाने के लिये उसे कड़वी औषधि पिलावे। यद्यपि वह ऊपर से कड़वी औषधि पिलाती है, किन्तु अन्दर में उसका भला चाहती है। जैसे पिता पुत्र को अच्छी शिक्षा देने के लिये ऊपर से ताड़ना तर्जना करता है, मारता-पीटता है, किन्तु अन्दर में उसका भला चाहता है, गुण बढ़ाना चाहता है। जैसे—डाक्टर रोगी का चीरा-फाड़ा करता है। ऊपर से देखने में वह भयंकर

दिखता है, किन्तु अन्दर का परिणाम उसका रोग मिटाकर अच्छा करने का है।

४. स्वभावधर्म—जीव अथवा अजीव की परिणति को स्वभावधर्म कहते हैं। इसके २ भेद हैं—एक तो शुद्ध स्वभाव से शुद्ध परिणति। दूसरी कर्म के संयोग से अशुद्ध परिणति। इसको विभावपरिणति कहते हैं। जीव और पुद्गल के विभाव-परिणाम को दूर करके जीव अपने ज्ञानादि गुण में रमण करे, वह जीव का स्वभावधर्म है। एक वर्ण, एक गंध, एक रस, दो स्पर्श यह पुद्गल का शुद्ध स्वभाव धर्म है। धर्मास्तिकाय का चलनगुण, अधर्मास्तिकाय का स्थिरगुण, आकाशस्तिकाय का अवकाशगुण और काल का वर्तनागुण है। यह चारों स्वभावधर्म है, परन्तु विभावधर्म नहीं है। ये चारों अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। इसलिये यह इनका शुद्ध स्वभावधर्म है। यह चार प्रकार की धर्मजागरणा कही गई है।

(२) अधर्मजागरणा—संसार में धन, कुटुम्ब, परिवार का संयोग मिलाना, उनके लिए आरम्भादिक करना, धन की रक्षा करना, उसमें एकाग्रदृष्टि रखना। यह अधर्मजागरणा है।

(३) सुदुक्खुजागरणा–'सु' का मतलव है भली (अच्छी) 'दक्खु' का मतलव है चतुराई वाली जागरणा। यह जागरणा श्रावक के होती है, क्योंकि श्रावक सम्यग्ज्ञान-दर्शन सहित है। वह धन, कुटुम्बादिक को तथा विषय, कषाय को बुरा समझता है। इनसे देशतः (किंचित् अंश

से) निवर्ता है। उदयभाव से उदासीनपने रहता है, तीन मनोरथ चितवता है। यह सुदक्खु जागरणा है।



२०. जयन्तीबाई का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक १२ वां, उद्देशा दूसरा)

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। चन्द्रावतरण नाम का बगीचा था। कौशाम्बी नगरी में सहस्रानीक राजा का पौत्र, शतानीक राजा का पुत्र, चेड़ा (चेटक) राजा का दोहिता, मृगावती देवी का अंगजात, जयन्ती श्रमणोपासिका का भतीजा उदायन नाम का राजा राज्य करता था। सहस्रानीक राजा की पुत्रवधू (बेटे की बहू), शतानीक राजा की पत्नी, चेड़ा राजा की पुत्री, उदायन राजा की माता, जयन्ती श्रमणोपासिका की भोजाई, मृगावती नाम की रानी थी। वह सुकुमाल यावत् सुरूप वाली श्रमणोपासिका थी। सहस्रानीक राजा की पुत्री, शतानीक राजा की बहन, उदायन राजा की भुआ, मृगावती रानी की ननद, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के साधुओं की प्रथम शय्यातर (मकान देने वाली) जयन्ती नाम की श्रमणोपासिका थी। वह सुकुमाल यावत् जीवाजीव के स्वरूप को जानने वाली थी।

नोट—तीन जागरणा तो भगवती में कही हैं, लेकिन इस थोकड़े का विस्तार दूसरी जगह से लिया है।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे। यह समाचार सुनकर सब हर्षित हुए। राजादि सब वन्दनार्थ गये। जयन्ती श्रमणोपासिका भी मृगावती रानी के साथ वन्दना करने के लिए गई। भगवान् ने धर्म-कथा फरमाई। धर्मकथा सुनकर परिषद् वापिस चली गये। उस समय जयन्ती श्रमणोपासिका ने भगवान् को वन्दना नमस्कार करके विनय पूर्वक प्रश्न पूछे—

१—अहो भगवन् ! किस कारण से जीव हल्का होता है और किस कारण से भारी होता है ? हे जयन्ती ! १८ पापों से निवर्तने से जीव हल्का होता है और १८ पापों में प्रवर्तने से जीव भारी होता है।

२—अहो भगवन् ! किस कारण से जीव संसार घटाता है और किस कारण से संसार बढ़ाता है ? हे जयन्ती ! १८ पापों से निवर्तने से जीव संसार घटाता है और १८ पापों में प्रवर्तने से जीव संसार बढ़ाता है।

३—अहो भगवन् ! किस कारण से जीव स्थिति (कर्मों की स्थिति) घटाता है और किस कारण से जीव स्थिति बढ़ाता है ? हे जयन्ती ! १८ पापों से निवर्तने से जीव स्थिति घटाता है और १८ पापों में प्रवर्तने से जीव स्थिति बढ़ाता है।

४—अहो—भगवन् ! किस कारण से जीव संसार सागर तिरता है और किस कारण से जीव संसार में परि-भ्रमण करता है ? हे जयन्ती ! १८ पापों से निवर्तने से

जीव संसारसागर तिरता है और १८ पापों में प्रवर्तने से जीव संसार में परिभ्रमण करता है ।

५—अहो भगवन् ! जीवों के भवसिद्धिपना स्वभाव से है या परिणाम से ? हे जयन्ती ! जीवों के भवसिद्धिपना ※ स्वभाव से है, परिणाम से नहीं ।

६—अहो भगवन् ! क्या सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावेंगे ? हां, जयन्ती × सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावेंगे।

७—अहो भगवन् ! सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष में चले जावेंगे तो क्या लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जायगा ? हे जयन्ती ! णो इणट्ठे समट्ठे अर्थात् सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावेंगे तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा ।

अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? यथा दृष्टान्त

※ स्वाभाविकभाव को स्वभाव कहते हैं । जैसे पुद्गल मूर्तत्व (मूर्तपना) स्वाभाविक भाव है । रूपान्तर एक रूप से दूसरे रूप में बदल जाने को परिणाम कहते हैं। जैसे बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि परिणाम हैं ।

X भवी जीव तीन प्रकार के होते हैं—१. जातिभवी, २. दुर्भवी, ३ निकटभवी । जाति भवी तो कभी मोक्ष में नहीं जाते हैं । दुर्भवी भवस्थिति पकने पर मोक्ष जावेंगे। निकटभवी जल्दी ही मोक्ष जावेंगे । यहां पर निकटभवी के लिये यह प्रश्न संभव होता है । तत्त्व केवलीगम्य ।

–जैसे सर्वआकाश की श्रेणी अनादि-अनन्त है। उसमें से एक-एक परमाणुखण्ड एक-एक समय अपहरे (निकाले)। इस तरह निकलते-निकलते अनन्ती अवसर्पिणी उत्सर्पिणी पूरी हो जावे तो भी वह आकाशश्रेणी खाली नहीं होती। इसी तरह भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावें तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से खाली नहीं होगा।

८—अहो भगवन्! क्या जीव सोते हुए अच्छे या जागते हुए अच्छे? हे जयन्ती! कोई जीव सोते हुए अच्छे और कोई जीव जागते हुए अच्छे। अहो भगवन्! इसका क्या कारण? हे जयन्ती! जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते हैं, अधर्म में आनन्द मानते हैं यावत् अधर्म से आजीविका करते हैं, वे जीव सोते हुए अच्छे हैं। सोते हुए वे सर्व प्राणभूत, जीव, सत्त्व को दुःख नहीं उपजाते यावत् परितापना नहीं उपजाते। अपनी तथा दूसरों की आत्मा को अधर्म नहीं जोड़ते, इस कारण से अधर्मी जीव सोते हुए अच्छे हैं। जो जीव धर्मी हैं यावत् धर्म से आजीविका करते हैं वे जागते हुए अच्छे हैं, क्योंकि जागते हुए वे सर्व प्राण, भूत, जीव, सत्त्व को सुख उपजाते हैं यावत् अपनी तथा दूसरों की आत्मा को धर्म में जोड़ते हैं।

९–१०—जिस तरह सोते, जागते का कहा उसी तरह बलवान् और निर्बल का तथा उद्यमी और आलसी का कह देना चाहिए, सिर्फ इतनी विशेषता है कि जो उद्यमी होगा वह आचार्य उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी यावत् स्वधर्मी की वैयावच्च में अपनी आत्मा को जोड़ेगा।

११—अहो भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय के वश हुआ जीव क्या बांधता है ? हे जयन्ती ! आयुष्यकर्म को छोड़कर बाकी ७ कर्मों की प्रकृति ढीली हो तो गाढ़ी करता है, थोड़े काल की स्थिति हो तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्दरस हो तो तीव्र रस करता है, अल्पप्रदेश हो तो बहुप्रदेश करता है। आयुष्य बांधता है, अथवा नहीं बांधता है। असातावेदनीयकर्म बारम्बार बांधता है, चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है।

१२-१५—जिस तरह श्रोत्रेन्द्रिय का कहा, उसी तरह से चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय का कह देना चाहिए।

प्रश्नों का उत्तर सुनकर जयन्तीबाई श्रमणोपासिका हर्ष, सन्तोष को प्राप्त हुई यावत् देवानन्दाजी की तरह दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गई।



२१. तेतीस बोल का थोकड़ा

पहले बोले—एक प्रकार का असंयम-सर्व आस्रव से निवृत्त नहीं होना।

दूसरे बोले—दो प्रकार का बन्धन—रागबन्धन और द्वेषबन्धन।

तीसरे बोले—१ तीन प्रकार का दण्ड—१ मनदण्ड, २ वचनदण्ड, ३ कायदण्ड ।

२ तीन प्रकार की गुप्ति—१ मनगुप्ति, २ वचन-गुप्ति, ३ कायगुप्ति ।

३ तीन प्रकार का शल्य—१ मायाशल्य, २ नियाण (निदान) शल्य, ३ मिथ्यादर्शनशल्य ।

४ तीन प्रकार का गर्व—१ ऋद्धिगर्व, २ रसगर्व ३ सातागर्व ।

५ तीन प्रकार की विराधना—१ ज्ञान-की विरा-धना, २ दर्शन की विराधना, ३ चारित्र की विराधना ।

चौथे बोल—चार कषाय-१ क्रोधकषाय, २ मान-कषाय, ३ मायाकषाय, ४ लोभकषाय ।

चार संज्ञा—१ आहारसंज्ञा, २ भयसंज्ञा, ३ मैथुन-संज्ञा, ४ परिग्रहसंज्ञा ।

चार कथा—१ राज्यकथा, २ देशकथा, ३ स्त्रीकथा, ४ भातकथा (इन चारों सम्बन्धी कथा) ।

चार ध्यान—१ आर्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्म-ध्यान, ४ शुक्लध्यान तथा १ पदस्थ, २ पिण्डस्थ, ३ रूप-स्थ और ४ रूपातीतध्यान ।

पांचवें बोले—पांच क्रिया—१ कायिकी, २ अधिकर-णिकी, ३ प्रद्वेषिकी, ४ पारितापनिकी, ५ प्राणातिपातिकी ।

पांच कामगुण—शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श।

पांच महाव्रत—१ सर्वथा प्राणातिपात से निवृत्ति, २ सर्वथा मृषावाद से निवृत्ति, ३ सर्वथा अदत्तादान से निवृत्ति, ४ सर्वथा मैथुन से निवृत्ति ५ सर्वथा परिग्रह से निवृत्ति (सर्वथा त्रिकरण त्रिजोग से)।

पांच समिति—१ ईर्यासमिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति, ४ आदानभंडमत्तनिक्षेपनासमिति, ५ उच्चारप्रस्रवणखेलजलश्लेष्मपरिस्थापनिकासमिति) (इन कामों में शुद्ध उपयोग)।

पांच प्रमाद—१ मद, २ विषय, ३ कषाय, ४ निद्रा, ५ विकथा।

छठे बोले - छह काय १ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ त्रसकाय।

छह लेश्या—१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, २ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या, ६ शुक्ललेश्या।

सातवें बोले—सात भय—१ इहलोकभय—मनुष्य से मनुष्य को भय।

२ परलोकभय - मनुष्य को देवता या तिर्यंच से भय।

३ आदानभय—धन-दौलत के नष्ट होने का भय।

४ अकस्मात् भय—कहीं से अनधारी आपत्ति आ जावे—अचानक दुःख आ जावे ऐसा भय।

५ आजीविकाभय—भविष्य में खाने-पीने को मिलेगा या नहीं, सुख से गुजर होने में बाधा न आ जावे, ऐसा भय ।

६ अपयशभय—किसी तरह इज्जत में हरकत पहुंचे या यशकीर्ति जैसी है वैसी कैसे बनी रहेगी, ऐसा भय ।

७ मरणभय—मौत का डर—कब मरुंगा यह निश्चित नहीं होने से हर समय मरण की शंका रखना ।

आठवें बोले—आठ मद—१ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ तपमद, ६ लाभमद, ७ सूत्रमद, ८ ऐश्वर्यमद (अहंकार) ।

नववें बोले—ब्रह्मचर्य की नव गुप्ति—रक्षा-वाडें— (१) ब्रह्मचारी पुरुष ऐसे स्थान में न रहे जहां स्त्री, पशु, नपुंसक रहते हैं वा बारम्बार आते-जाते हो और रहे तो चूहे और बिल्ली का दृष्टान्त—जिस जगह बिल्ली रहती हो उस जगह चूहे, चाहे जितनी सावधानी से रहे, तो भी उनके मारे जाने का संभव है। तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री वगैरह सहित स्थान भोगवे तो उसके ब्रह्मचर्य के खण्डित होने का संभव है। (२) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री सम्बन्धी का कामराग बढ़ाने वाली कथा-वार्ता करे नहीं और करे तो निम्बू और रसना (जीभ) का दृष्टान्त । जैसे—निम्बू रस का जानकार जब निम्बू का नाम लेता है कि उसके मुंह में पानी—छूटने लगता है—आ जाता है तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री सम्बन्धी वार्ता करे तो शीलरत्न

के भंग होने की संभावना रहती है, (३) स्त्री जिस स्थान पर कुछ देर बैठी होवे उस स्थान पर ब्रह्मचारी को कुछ समय तक बैठना नहीं तथा स्त्री के साथ भी बैठना नहीं और बैठे तो कोरा और कणक का दृष्टान्त जैसे कोरे का फल कणक (भिजा हुवा आटा) के पास रखा जावे तो वह कणक ज्यादा-ज्यादा गीला होता जाता है और उसका रसकस घटता जाता है, तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष का स्त्री के आसन पर बैठने से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। (४) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अंगोपांग, रूपलावण्य निरखे नहीं-वारम्बार नजर-भरके देखे नहीं, देखे तो कच्ची आंख और सूय का दृष्टान्त। जैसे जन्मता बालक सूर्य को देखे तो अन्धा हो जाता है या उसका दृष्टिविषय घट जाता है, तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अंग उपांग निरखे तो ब्रह्मचर्य का नाश होने का संभव है। (५) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के रुदन, गीत, हास्य, आक्रंद, कूजित इत्यादि शब्द सुनाई पड़े, वैसी भींत या टाटी की आड़ में वास करे नहीं (पास के मकान में से भी इनकी ध्वनि कानों में आती हो, वहां न रहे) और रहे तो मेघ और मोर का दृष्टान्त। मेघ के बादल के गर्जने पर मोर (मयूर) अवश्य बोलता है —कोकाट करता है, तैसे ही स्त्री के हास्यादि शब्द सुनने पर कामराग बढ़ता और ब्रह्मचर्य खण्डित होने का सभंव रहता है। (६) ब्रह्मचारी पुरुष पूर्वकाल के स्त्री के साथ भोगे हुवे भोगों को याद न करे और करे तो जिनरक्ख और रयणादेवी का दृष्टान्त जैसे जिनरक्ख रयणादेवी के साथ के कामभोग याद करके ललचा गया और प्राण खोये, तैसे ब्रह्मचारी पुरुष पूर्व के कामभोग का

बारम्बार स्मरण करे तो शीलरत्न गुमा देता हैं। (७) ब्रह्मचारी पुरुष हमेशा सरस-स्वादिष्ट आहार करे नहीं और करे तो सन्निपात के रोगी का दूध-मिश्री का दृष्टान्त, अर्थात् जिसको सन्निपात-शीत हो गया है उसे दूध मिश्री पिलाई जावे तो वह मर जाता हैं, तैसे ही हमेशा सरस पुष्ट आहार करने वाला ब्रह्मचारी अपना ब्रह्मचर्य खो बैठता है। (८) ब्रह्मचारी पुरुष लूखा नीरस आहार भी दाब-दाब के करे नहीं, अधिक करे तो सेर की हांडी में सवा सेर का दृष्टान्त, अर्थात् जिस गारे की (कच्ची मिट्टी की) हांडी में सेर धान्य पकता है, उसमें सवासेर रांधा जावे तो हांडी का नुकसान होता है—फट जाती है, तैसे ब्रह्म-चारी अधिक भोजन करे तो ब्रह्मचर्य गुमा देता है—नष्ट कर देता है।

(६) ब्रह्मचारी पुरुष को स्नान शृंगार करना नहीं, शरीर का मण्डन-विभूषा करना नहीं और करे तो रंक के हाथ में रत्ना का दृष्टान्त—जिस प्रकार रंक पुरुष में रत्न रखने की योग्यता न होने से उसे बाजार में हाथों में उछालता चलता है, देखने वाले का मन चल जाता है और रत्न खोस लिया जाता है, वह मूर्ख उसे पेटी में बन्द नहीं रखता है, तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष नहावे, धोवे शृंगार करे तो उसमें भी शील रत्न को रखने की अयोग्यता है, स्त्री वगैर का मन शीलरत्न को लुटाने का हो जाता है और ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

दसवें बोल—दस प्रकार का यतिधर्म—(१) खन्ति—अपराधी पर वैरभाव नहीं रखना, क्षमा धारना (२) मुत्ति—

लोभरहित बनना, (३) अज्जवे—सरलता, निष्कपटता, (४) मद्दवे—मार्दव, नम्रता, अहंकार का त्याग, (५) लाघवे—भण्डोपगरणा की उपाधि थोड़ी होना, (६) सच्चे-सचाई से, प्रामाणिकता से बोलना व आचरण करना,(७) संयमे—शरीर, मन और इन्द्रियों को काबू में रखना, वश करके नियम में रखना, (८) तवोआत्मशक्ति बढ़े, इच्छा-शक्ति बढ़े, मनोबल दृढ़ होवे, उस विधि से उपवास वगैरह तप करना, (९) चियाए—ममता का त्याग करना, (१०) बम्भ चेरवासे—शुद्ध आचार पाले, मैथुन से संपूर्ण निवृत्ति करे, पराङ्गमुख रहे। दश प्रकार की समाचारी (१)आव-स्सिया—उपाश्रय (स्थानक) बाहर जाने का होवे तब बड़े मुनि से अर्ज करे कि मुझे बाहर जाना जरूरी है। (२) निसीहिया—उपाश्रय में पीछा लौटते वख्त गुर्वादिसे कहे मैं अपने काम से निवृत्त होकर आ गया हूं। (३)आपुच्छणा-खुद के काम होवे तो गुरु से पूछे। (४) पडिपुच्छणा—अन्य मुनियों के काम होवे तो गुरु से बारम्बार पूछे।(५) छन्दणा—अपनी लाई हुई वस्तु बड़ों को धामे, देने को कहे। (६) इच्छाकार—गुरु से अर्ज करे कि अगर आपकी इच्छा होवे तो मुझे सूत्रार्थज्ञानदान दीजिये। (७)मिच्छा-कार—पाप कर्म को गुरु के सामने मिथ्या दुष्कृत कहे। (८) तहक्कार—गुरु के वचन को प्रमाण करे। स्वीकार करे अथवा आप जैसा कहते हो वैसा ही है, ऐसा कहे। (९) अब्भुट्ठाणं—गुरु तथा वड़े मुनिवर आवें तव सात आठ कदम-पग सामा जावे और पीछा लौटे तब उतना ही पहुंचाने जावे, (१०) उवसंपया—गुरुजनों से सूत्रार्थ लक्ष्मी पाने के वास्ते हमेशा सावधान रहे और गुरु के पास में

रहे ।

इग्यारहवें बोल—श्रावक की ग्यारह प्रतिमा—(१) दर्शन-प्रतिमा-एक मास की, शुद्ध अतिचार रहित समकित धर्म पाले । (२) व्रत–प्रतिमा—दो मास की, नाना प्रकार के व्रत नियम अतिचार रहित पाले, (३) सामायिक प्रतिमा—तीन मास की अतिचार रहित हमेशा सामायिक करे, (४) पौषधप्रतिमा—चार मास की, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा वगैरह को पौषध अतिचार रहित करे, (५) कायोत्सर्गप्रतिमा—मास की, हमेशा रात्रि के अन्दर कायोत्सर्ग करे और पांच बातों का पालन करे—१ स्नान न करे, २ रात्रिभोजन त्यागे, ३ धोती की लांग खुली रखे, ४ दिन को ब्रह्मचर्य पाले ५ रात्रि को ब्रह्मचर्य का परि–माण करे" (६) ब्रह्मचर्यप्रतिमा—छह मास की, निरतिचार पूर्ण ब्रह्मचर्य पाले । (७) सचित्तप्रतिमा—जघन्य (कमती से कमती) एक दिन की उत्कृष्ट (ज्यादा से ज्यादा) सात मास की, सचित्तवस्तु नहीं भोगे ।(८)आरंभ प्रतिमा—जघन्य एक दिन की उत्कृष्ट आठ मास की, आप खुद आरंभ करे नहीं । (९) प्रेष्यप्रतिमा—जघन्य एक दिन की उत्कृष्ट नव मास की, दूसरे से भी आरंभ करावे नहीं । (१०) उद्दिष्टचय प्रतिमा—जघन्य एक दिन की उत्कृष्ट दस मास की, इनके वास्ते आरंभ करके कोई वस्तु देवे तो लेवे नहीं, खुरमुण्डन करावे–शिखा रखे कोई उनसे कुछ बात एक वक्त पूछे या बारम्बार पूछे जानते होवे तब तो हां कहे और नहीं जानते होवे तो ना कहे । (११) श्रमणभूतप्रतिमा—उत्कृष्ट ग्यारह मास की, खुरमुण्डन करे या लोच करे, साधु जितना ही

उपकरण पात्र रजोहरण रखे, स्वज्ञाति की गौचरी करे और कहे कि मैं श्रावक हूं, साधु माफक उपदेश देवे । सर्व प्रतिमा में साढ़े पांच वर्ष लगे ।

बारहवें बोले—भिक्षु की बारह प्रतिमा—निचे लिखी हुई तेरह कलमें हरएक प्रतिमाधारी पाले, (१) पहेली प्रतिमा एक मास की–जिसमें (१) शरीर पर ममता रखे नहीं, शरीर की शुश्रुषा करे नहीं, देव मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग सम परिणाम से सहन करे ।

(२) एक दाति आहार और एक दाति पाणी—प्रासुक तथा ऐषणिक लेवे । (दाति=धार=एक साथ, धार खण्डित हुवे विना जितना पात्र में पड़े इतने को दाति कहते हैं ।

(३) प्रतिमाधारी साधु गौचरी के वास्ते दिन के तीन विभाग करे और तीन भागों में से चाहे जिस एक विभाग में गोचरी करे ।

(४) प्रतिमारी साधु छह प्रकार से गोचरी करे । (१) पेटी के आकारे, (२) अर्धपेटी के आकारे, (३) बैल के मूत्र के आकारे, (४) पतंग उड़े उस तरह, (५) शंखावर्तन, (६) जावतां करे तो आवतां नहीं करे और आवतां करे तो जावतां नहीं करे ।

(५) गाम के लोगों को मालूम पड़ जावे कि यह यह प्रतिमाधारी मुनि है तो वहां एक रात ही रहे और ऐसा मालूम नहीं पड़े तो दो रात्रि रहे, उपरान्त जितनी

रात रहे उतना प्रायश्चित का भागी बनें ।

(६) प्रतिमाधारी साधु चार कारण से बोलते हैं। १. याचना करने को, २. मार्ग पूछने को, ३. आज्ञा पाने को, ४. प्रश्न के उत्तर देने को ।

(७) प्रतिमाधारी साधु तीन स्थान में निवास करे— १ बागबगीचा, २ श्मशान–छत्री, ३ वृक्ष का तला, इनकी याचना करे ।

(८) प्रतिमाधारी साधु को तीन प्रकार की शय्या— १ पृथ्वी, २ शिला, ३ काष्ट ।

(९) प्रतिमाधारी साधु जिस स्थान में है, वहां स्त्री प्रमुख आवे तो भय के मारे बाहर निकले नहीं, कोई जबरन् हाथ पकड़ कर काढ़े तो ईर्यासमिति सहित बाहर हो जावे तथा वहां आग लगे तो भी भय से बाहर आवे नहीं, कोई बाहर काढ़े तो ईर्यासमिति पूर्वक बाहर निकल जावे ।

(१०) प्रतिमाधारी साधु के पग में कांटा लग जावे और आंख में कांटा (धूल-तृण प्रमुख) पड़ जावे तो आप उसे अपने हाथों से काढ़े नहीं ।

(११) प्रतिमाधारी साधु सूर्योदय से सूर्य के अस्त होने तक विहार करे, बाद में एक पग भी चले नहीं ।

(१२) प्रतिमाधारी साधु को सचित्त पृथ्वी पर बैठना, सोना कल्पे नहीं तथा सचित्त रज लगे हुवे पैरों से

(पग से) गृहस्थ के यहां गोचरी जाना कल्पे नहीं।

(१३) प्रतिमाधारी साधु प्रासुक जल से भी हाथ पग मुंह प्रमुख धोवे नहीं, अशुचि का लेप दूर करने को धोना कल्पता है।

(१४) प्रतिमाधारी साधु के मार्ग में हाथी, घोड़ा अथवा जंगली जानवर सामने आया होवे तो भी मुनि भय से रास्ता छोड़े नहीं–जानवर की दया खातिर अलग हो जाते हैं तथा रास्ते चलते तड़के से छाया में और छाया से तड़के में आवे नहीं, शीत-उष्णता को सम परिणाम से सहन करे।

(२) दूसरी प्रतिमा एक मास की, जिसमें दो दाति अन्न और दो दाति पानी का लेना कल्पता है।

(३) तीसरी प्रतिमा एक मास की, जिसमें तीन दाति अन्न और तीन पानी लेना कल्पे। इस तरह चौथी, पांचवी, छट्ठी, सातवीं प्रतिमा भी एक–एक मास की। उनमें चार दाति, पांच दाति, छह दाति, सात दाति आहार-पानी लेना कल्पे।

(८) आठवीं प्रतिमा सात दिन। की चौविहार एकान्तर तप करे, ग्राम के बाहर रहे। तीन आसन करे–चित्ता सुवे, करवट (एक बाजु पर) सुवे, पलांठी (पालखी) लगाकर सुवे, परिसह से डरे नहीं।

(९) नवमी प्रतिमा सात दिन की ऊपर प्रमाणे,

इतना विशेष की तीन आसन करे—दण्ड—आसन, लकुट—आसन, उत्कट—आसन ।

(१०) दशमी प्रतिमा सात दिन की। उपर प्रमाणे, इतना विशेष की तीन में से एक आसन करे—गोदुह—आसन, वीरासन, अम्बकुब्ज—आसन ।

(११)ग्यारहवीं प्रतिमा एक दिन की । चौविहार बेला करे, गाम बाहर पग संकोचकर, हाथ पसारकर कायोत्सर्ग करे ।

(१२) बारहवीं प्रतिमा एक दिन की। चौविहार तेला करे, गाम बाहर शरीर त्याग के, नेत्र खुले रख कर, पग संकोच, हाथ पसार, अमुक वस्तु पर दृष्टि लगाकर ध्यान करे । देव—मनुष्य—तिर्यंचसम्बन्धी उपसर्ग सहे । इस प्रतिमा के आराधन से अवधि—मनःपर्यय—केवल—ज्ञान इन तीन में का एक ज्ञान होता है और आसन से चल जावे तो पागल बन जावे, दीर्घकाल का रोग पावे, केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट बने ।

इन कुल बारह प्रतिमाओं का काल आठ मास का है ।

तेरहवें बोले—तेरह क्रियास्थान—(१) अर्थदण्ड—खुद के लिये हिंसादि करे, (२) अनर्थदण्ड—निरर्थक वा कुत्सित अर्थ के वास्ते हिंसादि करे, (३) हिंसादण्ड—उसने मुझे मारा था, मारता है वा मारेगा । इस भाव से उसे मारना, (४) अकस्मात्दण्ड, मारना किसे था और बीच

में मर जाने दूसरा, (५) दृष्टिविपर्यासदृष्टि - दुश्मन जान-कर मित्र को मार डालना, (६) मृषावाददण्ड—असत्य-भाषण करना, (७) अदत्तादान—दण्ड–चोरी करना, (८) अभ्यस्थदण्ड—मन में दुष्ट कल्पना करना, (९) मान–दण्ड-गर्व करना, (१०) मित्रदण्ड माता-पिता, मित्रवर्ग को अल्प अपराध पर भी भारी दण्ड देना, (११) मायादण्ड, कपट करना, (१२) लोभदण्ड— लोभ करना, (१३) ईर्यापथि-कदण्ड—रास्ते चालतां जीव- हिंसा होवे ।

चौदहवें बोले—जीव के चौदह भेद । (१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, (३) बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (४) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, (५) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, (६) द्वीन्द्रिय पर्याप्त, (७) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, (८) त्रीन्द्रिय पर्याप्त, (९) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, (१०) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, (११) असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (१२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, (१३) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, (१४) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ।

पन्दरहवें बोले - पन्दरह परमाधर्मीदेव—(१) आम्र, (२) आम्ररस, (३) शाम, (४) सबल, (५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०) धनुष, (११) कुंभ, (१२) वालुक, (१३) वैतरणी, (१४) खरस्वर, (१५) महाघोष ।

सोलहवें बोले—सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन–नाम—(१) स्वसमय–परसमय, (२) वैदा-दिक, (३) उपसर्गप्रज्ञा, (४) स्त्रीप्रज्ञा, (५) नरकविभक्ति,

(६) वीरस्तुति, (७) कुशीलपरिभाषा, (८) वीर्याध्ययन, (९) धर्मध्यान, (१०) समाधि, (११) मोक्षमार्ग, (१२) समवसरण, (१३) अथातथ्य, (१४)ग्रन्थी, (१५)यमतिथि, (१६) गाथा ।

सतरहवें बोले—सत्तरह प्रकार का संयम,(१)पृथ्वीयसंयम, (२) अप्कायसंयम,(३) तेजस्कायसंयम,(४) वायुकायसंयम, (५) वनस्पतिकायसंयम, (६) द्वीन्द्रियसंयम, (७)त्रीन्द्रिय-संयम, (८) चतुरिन्द्रियसंयम, (९) पंचेन्द्रियसंयम, (१०) अजीवकायसंयम, (११) प्रेक्षासंयम, (१२) उत्प्रेक्षासंयम, (१३) अपहृत्य-(पढाना) संयम, (१४) प्रमार्जनासंयम, (१५) मनःसंयम, (१६) वचनसंयम, (१७) शरीर-संयम ।

अठारहवें बोले—अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य—१-मन करके, वचन करके, काया करके औदारिक-शरीरसम्बन्धी भोग सेवे नहीं, सेवावे नहीं और जो सेवन करते हैं, उन्हें अनुमोदे (प्रशंसे) नहीं (३×३=९ हुए) तैसे ही नव भेदे वैक्रियशरीरसम्बन्धी त्रिकरण त्रिजोग के हैं ।

उन्नीसवें बोले—उन्नीस (१९) ज्ञातासूत्र के अध्ययन हैं—१. उत्क्षिप्त मेघकुमार का, २. धन्नासार्थवाह और विजय चोर का, ३. मोर के अण्डों का, ४. काचवा(कूर्म) का, ५. शैलक राजर्षि का, ६. तुंबड़े का, ७. धन्नासार्थ-वाह और चार बहुओं का, ८. मल्लीभगवती का, ९. जिनपाल और जिनरक्षित का, १०. चन्द्र की कला का, ११. दावानल का, १२. जितशत्रु राजा और सुबुद्धिप्रधान

का, १३. नन्दमणिकार का, १४. तेतलीपुत्र प्रधान और सुनार की पुत्री पोटिला का, १५. नंदीफल का, १६. अमरकंका का, १७. समुद्रअश्व का, १८. सुसीमा दारिका का, १९. पुंडरीक कुंडरीक का ।

बीसवें बोले—बीस असमाधि के स्थानक—१. उतावले से चाले, २. पुंज्यां बिना चाले, ३. अयोग्य रीति से पूंजे, ४. पाट-पाटला ज्यादा रखे, ५. बड़ों के, गुरुजनों के सामे बोले, ६. वृद्धस्थविर-गुरु का उपघात करे, (मृतप्रायः करे), ७. साता-रस-विभूषानिमित्त एकेन्द्रिय जीव हणे, ८. पल-पल में क्रोध करे, ९. हमेशा क्रोध में जलता रहे, १०. दूसरे के अवगुण खोले, चुगली—निंदा करे, ११. निश्चयकारी भाषा बोले, १२. नया क्लेश खड़ा करे, १३. उपशमे (मिटे) हुए क्लेश को पीछा चेतावे, १४. अकाले स्वाध्याय करे, १५. सचित्त पृथ्वी से भरे हुए हाथों से गोचरी करे, १६. एक प्रहर रात्रि बीतने पर भी जोर-जोर से बोले, १७. गच्छ में भेद पाडे, १८. क्लेश फैलाकर गच्छ में परस्पर दुःख उपजावे, १९. दिन उगने से अस्त होने तक हरदम आहार लिया ही करे, २०. अनेषणिक अप्रासुक आहार लेवे ।

एकवीसवें बोले—एकवीस प्रकार के सबल (भारी) दोष—१. हस्तकर्म करे, २. मैथुन सेवे, ३. रात्रिभोजन करे; ४. आधाकर्मी भोगवे; ५. राजपिण्ड भोगवे; ६. पांच बोले सेवे—खरीद किया हुआ, उधार लिया हुआ, जबरन खोसा (लिया) हुआ, खास मालिक की रजा बिना लिया हुआ, स्थानपर सामा लाया हुआ आहार वगैरह देवे और

साधु उसे लेवे (साधु को देने वास्ते खरीदा होवे, स्वाभाविक तो सब खरीदा जाता है), ७. बारंबार त्याग करे और भांगे, ८. एक मास में तीन वक्त कच्चा जल का स्पर्श करे—नदी उतरे, ९. छह-छह महीना में गण-संप्रदाय पलटे, पलटना नहीं चाहिये, १०. एक मास में तीन वक्त माया-कपट करे, ११. जिसके मकान में रहे हों उसी के यहां से आहार करे—शय्यातर पिण्ड भोगवे, १२. इरादा पूर्वक हिंसा करे, १३. इरादा पूर्वक झूठ बोले, १४. इरादा पूर्वक चोरी करे, १५. इरादा पूर्वक सचित्त पृथ्वी पर शयन आसन करे, १६. इरादा पूर्वक सचित्त मिश्र पृथ्वी शय्या वगैरह करे, १७. सचित्त शिला तथा जिसमें छोटे-छोटे जन्तु रहें, वैसे काष्ट प्रमुख वस्तु पर अपना शयन आसन लगावे, १८. इरादा पूर्वक दस जात की सचित्त वस्तु खावे—मूल, कंद, स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज, १९. एक साल में दस वक्त सचित्त जल का स्पर्श करे—नदी उतरे, २०. एक साल में दस माया-कपट सेवे, २१. सचित्त जल से भीगे हुए हाथ से आहारादि गृहस्थ देवे, उसे इरादा पूर्वक लेकर भोगवे।

बावीसवें बोले—बावीस प्रकार के परीषह—१. क्षुधा, २. तृषा, ३. शीत, ४. उष्ण, ५. डांस-मच्छर, ६. अचेल (वस्त्ररहित), ७. अरति, ८. स्त्री, ९. चलनेका, १०. स्थिर आसन लगाकर एक जगह बैठे रहने का, ११. शय्या-उपाश्रय का, १२. आक्रोश, १३. वध-प्राणनाश, १४. याचना, १५. अलाभ—मांगी हुई वस्तु का नहीं मिलना, १६. रोग, १७. तृणस्पर्श, १८. जलमैल-पसीना तथा मैल,

१६. सत्कार-पुरस्कार, २०. प्रज्ञा २१. अज्ञान, २२. अदर्शन-श्रद्धा रहित बनने का।

तेवीसवें बोले—सूत्रकृतांग के २३ अध्ययन-प्रथम श्रुत-स्कंध के १६ अध्ययन सोलहवें बोलवत्, दूसरे श्रुत-स्कंध के सात अध्ययन—१. पुण्डरीक कमल, २. क्रियास्थान, ३. आहारप्रतिज्ञा, ४. प्रत्याख्यानप्रज्ञा, ५. अनगारसुत, ६. आर्द्रकुमार, ७. उदक (पेढाल पुत्र)।

चौवीसवें बोले—चौवीस प्रकार के देवता—१० भवनपति, ८ व्यन्तर, ५ ज्योतिषी, १ वैमानिक, कुल २४ हुए।

पच्चीसवें बोले—पंच महाव्रत की पच्चीस भावना। पहले महाव्रत की पांच—१. ईर्यासमितिभावना, २. मनः समितिभावना, ३. वचनसमितिभावना, ४. ऐषणासमिति-भावना, ५. आदानभण्डमात्रनिक्षेपनासमितिभावना। दूसरे महाव्रत की पांच भावना—१. बिना विचार किये बोलना नहीं, ३. लोभ से बोलना नहीं, ४. भय से बोलना नहीं, ५. हास्य से बोलना नहीं। तीसरे महाव्रत की पांच भावना। १. निर्दोष स्थानक मांग के लेना, २. तृण वगैरह मांग के लेना, ३. स्थानक वगैरह सुधारना नहीं, ४. स्वधर्मी का अदत्त लेना नहीं और आहार का संविभाग करना, ५. तपस्वी, ग्लान आदि की वैयावच्च करना। चौथे महाव्रत की पांच भावना—१. स्त्री, पशु, नपुंसक सहित स्थानक में ठहरना नहीं, २. स्त्री के हाव-भाव व स्त्री सम्बन्धी कथा वार्ता करना नहीं, ३. स्त्री के अंग-उपांग रागदृष्टि से

देखना नहीं, ४. पहले के कामभोग याद करना नहीं, ५. सरस तथा बलवान आहार करना नहीं। पांचवें महाव्रत की पांच भावना—१. भले शब्द पर राग, भुंडे शब्द पर द्वेष करना नहीं, तैसे ही २. रूप पर, ३. गन्ध पर, ४. रस पर और ५. स्पर्श पर रागद्वेष नहीं करना।

छबीसवें बोले—छबीस अध्ययन—दस दशाश्रुतस्कंध के, छह बृहत्कल्प के और दश व्यवहारसूत्र के। (इनमें साधु का विधिवाद है)।

सतावीसवें बोले—सत्तावीस साधु के गुण–पांच महाव्रत, पांच इन्द्रिय का निग्रह करना, चार कषाय का विजय करना, (५, ५, ४=१४) १५. भावसत्य, १६. करणसत्य, १७. जोगसत्य, १८. क्षमा, १९. वैराग्य, २०. मनःसमाधारणता, २१. वचनक्षमाधारणता, २२. कायसमाधारणता, २३. ज्ञान, २४. दर्शन, २५. चारित्र, २६. वेदनासहिष्णुता २७. मरणसहिष्णुता।

अट्ठावीसवें बोले—अट्ठावीस आचारकल्प—१. एक–मास का प्रायश्चित, २. दूसरा एक मास और पांच दिन का, ३. तीसरा एक मास और दस दिन का, इस तरह पांच-पांच दिन बढ़ाते हुए पांच महीने तक कहना। इस प्रकार पचीस उपघातिक हैं २६. अनुपघातिक आरोपण, २७. कृत्स्न—संपूर्ण, २८. अकृत्स्न—अपूर्ण।

गुनतीसवें बोले—२९ पापसूत्र—१. भूमिकम्मशास्त्र, २. उत्पातशास्त्र, ३. स्वप्नशास्त्र, ४. अंतरीक्ष–आकाशशास्त्र, ५. अंगस्फुरणशास्त्र, ६. स्वरशास्त्र, ७. व्यंजन-

तल—मसादि चिह्नशास्त्र, ८. लक्षणशास्त्र । ये आठ सूत्र-रूप, आठ वृत्तिरूप, आठ वार्तिकरूप, कुल चौवीस हुए। २५. विकथा—अनुयोग २६. विद्या-अनुयोग, २७. मंत्र-अनुयोग, २८. भोग-अनुयोग, २९. अन्यतीर्थिक प्रवृत्त-अनुयोग ।

तीसवें बोले—महामोहनीयकर्म बन्धने के तीस स्थान का—१. त्रसजीव को जल में डुबाकर मारे तो, २. त्रस-जीव को श्वास रूंध के मारे तो, ३. त्रसजीवों को बाड़े में बंद करके मारे तो, ४. तलवारादि से (शस्त्र से) मस्तकादि अंगोपांग काटे तो, ५. मस्तक पर गीला चमड़ा बांध कर मारे तो, ६. ठग होकर गले में फासा डालकर मारे, विश्वासघात करे, ७. कपट कर के अपना अनाचार, दुष्ट-आचार छिपावे, सूत्रार्थ छिपावे तो, ८. आप कुकर्म करे और दूसरे निरपराधी मनुष्य पर आरोप लगावे तथा दूसरे की यशकीर्ति घटाने को झूठा कलंक लगावे तो, ९. लोक में अच्छा दिखने के वास्ते, क्लेश बढाने के वास्ते सभा के बीच में मिश्रभाषा बोले तो, १०. राजा का भंडारी, राजा की लक्ष्मी हरण करना चाहे, राजा राणी से कुशील सेवन करना चाहे, राजा के प्रेमीजनों के मन को पलटना चाहे तथा राजा को राज्याधिकार से बाहर करना चाहे तो, ११. विषयलम्पटी बनकर परणा हुवा होकर भी कुंवारा होने का कहे तो, १२. ब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी ब्रह्मचारी कहलावे तो, १३. नौकर मालिक की लक्ष्मी लूटे तथा लुटावे तो, १४. जिस पुरुष ने अपने को धनवान इज्जतवान अधिकारी बनाया, उस उपकारी की ईर्ष्या परि-णाम से बुराई करे, हलका बनाने की चेष्टा करे, उपकार

का बदला अपकार से देवे तो, १५. भरणपोषण करनेवाले राजादि को तथा ज्ञानदाता गुरु को हणे तो, १६. १ राजा, २. नगरसेठ तथा ३ मुखिया-बहुल यशवाले इन तीन जनों को हणे तो, १७. बहुत से मनुष्यों का आधारभूत जो मनुष्य है उसे हणे तो, १८. संयम लेने को तैयार हुआ है, उसका दिल हटावे तो तथा संयम लिए हुए को धर्म से भ्रष्ट करे तो, १९. तीर्थंकर के अवर्णवाद बोले तो, २०. तीर्थङ्कर प्ररूपित न्यायमार्ग का द्वेषी बनकर (उस मार्ग की) निन्दा करे तथा उस मार्ग से लोगों का मन दूर हटावे तो, २१. आचार्य उपाध्याय—सूत्र, विनय के सिखाने वाले पुरुषों की निन्दा करे, उपहास करे तो, २२. आचार्य उपाध्याय के मन को आराधे नहीं तथा अहंकारभाव से भक्ति नहीं करे तो, २३. अल्प शास्त्रज्ञान का जानकार होते हुए भी खुद की तारीफ करे तथा स्वाध्याय का वाद करे तो, २४. तपस्वी नहीं होते हुए भी तपस्वी कहलावे तो, २५. शक्ति होते हुए भी गुर्वादि तथा स्थविर, ग्लान मुनि का विनय, वैयावच्च करे नहीं और कहे कि इन्होंने मेरी वैयावच्च नहीं की थी, ऐसा अनुकम्पारहित होवे तो, २६. चार तीर्थ में भेद पड़े ऐसी कथा—क्लेशकारी वार्ता करे तो, २७. अपनी तारीफ के वास्ते तथा दूसरे के साथ मित्रता करने का, अधर्मयोग—वशीकरणादि प्रयोग करे तो, २८. मनुष्य तथा देव सम्बन्धी भोग अतृप्तपने से—अत्यन्त आसक्त परिणाम से सेवे तो, २९. महाऋद्धिवान-महायश के धणी देवता हैं, उनके बल वीर्य का अवगुण—अपवाद बोले तो, ३०. अज्ञानी जीव लोगों से पूजा का गरजी चार जाति के देवता-को नहीं देखता है तो भी कहे कि मैं उन्हें देखता हूं ।

इकतीसवें बोले—इकतीस गुण सिद्ध महाराज के आठ कर्म की इकतीस प्रकृति नष्ट होने से ये गुण प्रगट होते हैं वास्ते उन इकतीस प्रकृति को बताते हैं। ज्ञानावरणीयकर्म की पांच–१. मतिज्ञानावरणीय, २. श्रुतज्ञानावरणीय, ३. अवधिज्ञानावरणीय, ४. मनःपर्ययज्ञानावरणीय, ५. केवलज्ञानावरणीय । दर्शनावरणीयकर्म की नव—१. निद्रा, २. प्रचला, ३. निद्रा-निद्रा, ४. प्रचला-प्रचला, ५. थीणद्धि–स्त्यानगृद्धि, ६. चक्षुदर्शनावरणीय, ७. अचक्षुदर्शनावरणीय, ८. अवधिदर्शनावरणीय, ९. केवलदर्शनावरणीय। वेदनीयकर्म की दो प्रकृति—१. सातावेदनीय, २. असातावेदनीय । मोहनीयकर्म की दो प्रकृति—१. दर्शनमोहनीय, २. चारित्रमोहनीय । आयुकर्म की चार प्रकृति—१. नरकआयुष् २. तिर्यग्आयुष्, ३. मनुष्य-आयुष्; ४. देवआयुष्; नामकर्म की दो प्रकृति–१. शुभनाम, २. अशुभनाम । गोत्रकर्म की दो प्रकृति—१. उच्चगोत्र, २. नीचगोत्र । अन्तरायकर्म की पांच प्रकृति–१. दानान्तराय, २. लाभान्तराय, ३. भोगान्तराय, ४. उपभोगान्तराय, ५. वीर्यान्तराय ।

बत्तीसवें बोले—बत्तीस प्रकार का योग संग्रह—१. लगे हुए पापों का प्रायश्चित लेने का संग्रह करना, २. दूसरे के लिये हुए प्रायश्चित को और किसी को नहीं कहने का संग्रह करना, ३ विपत्ति आने पर भी धर्म में दृढ़ रहने का संग्रह करना, ४. निरपेक्ष तप करने का संग्रह करना, ५. सूत्रार्थ ग्रहण करने का संग्रह करना, ६. शुश्रुषा टालने का संग्रह करना, ७. अज्ञात कुल की गोचरी करने का संग्रह करना, ८. निर्लोभी होने का

संग्रह करना, ९. बावीस परीषह सहने का संग्रह करना, १०. साफ दिल—सरल रहने का संग्रह करना, ११. सत्य संयम रखने का संग्रह करना, १२. सम्यक्त्व निर्मल रखने का संग्रह करना, १३. समाधि सहित रहने का संग्रह करना, १४. पंच आचार पालने का संग्रह करना, १५. विनय करने का संग्रह करना, १६. धैर्य रखने का संग्रह करना, १७. वैराग्य रखने का संग्रह करना, १८. शरीर को स्थिर रखने का संग्रह करना, १९. विधिपूर्वक अच्छे अनुष्ठान का संग्रह करना, २०. आस्रव रोकने का संग्रह करना, २१. आत्मा के दोष टालने का संग्रह करना, २२. सब विषयों से विमुख रहने का संग्रह करना. २३. प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) करने का संग्रह करना, २४. द्रव्य से उपाधि, भाव में गर्वादि के त्याग का संग्रह करना, २५. अप्रमादी बनने का संग्रह करना, २६. काल-काले क्रिया करने का संग्रह करना, २७. धर्मध्यान का संग्रह करना, २८. संवर-योग का संग्रह करना, २९. मरण, आतंक, रोग उपजने पर मन को क्षुभित नहीं बनाने का संग्रह करना, ३०. स्वजनादि को त्यागने का संग्रह करना, ३१. लिये हुए प्रायश्चित्त को संग्रह करना, ३२. आराधिक पण्डित मरण होवे वैसी आराधना करने का संग्रह करना, यानि अप्रशस्त जोगों का निरुधन करना।

तेतीसवें बोले—तेतीस प्रकार की आसातना—१. गुरु या बड़ों के सामने शिष्य अविनय से चाले तो, २. गुरु आदि के बराबर चाले तो, ३. गुर्वादि के पीछे भी अविनय से चाले तो, ४. ५. ६. गुर्वादि के आगे, पीछे या बराबर अविनय से उभा रहे तो, ७. ८. ९. गुर्वादि के आगे, पीछे

या बराबर अविनय से बैठे तो, १०. शिष्य बड़े लोगों के साथ बाहर-जंगल फिरागत जावे और वहां से पहले शौच-कर्म से निवृत्त होकर आगे चला आवे तो, ११. शिष्य गुरु के साथ बाहर गया हो और पीछा लौटने पर ईर्यापथिक पहले प्रतिक्रमे तो, १२. कोई पुरुष उपाश्रय में आवे तब पहले बड़े गुरु आदि को बोलना उचित है, तथापि पहले शिष्य बोले और गुरु पीछे बोले तो, १३. रात्रि के समय जब गुरु कहे—अहो आर्य ! कौन नींद में है और कौन जागते हैं ? तब आप जागता होते हुए भी उत्तर देवे नहीं तो, १४. जो आहारादि लाया है, उस बाबत पहले अन्य मुनि से कहे और बाद में गुरु से कहे तो, १५. आहारादि पहले अन्य मुनि को बतावे और बाद में गुरु को बतावे तो, १६. आहारादि पहले अन्य मुनि को आमंत्रे और पीछे गुरु को धामे तो, १७. आहारादि गुरुजनों को पूछे बिना ही अन्य मुनियों को जिन पर कि उसका प्रेम है थोड़ा-थोड़ा दे देवे तो, १८. बड़ों के साथ भोजन करते समय सरस-मनोज्ञ आहार झट-झट करे तो, १६. गुर्वादि के पुकारने पर मौन रहे तो, २०. गुर्वादि के बुलाने पर अपने आसन पर बैठा-बैठा कहे मैं यहां हूं, परन्तु आसन छोड़ उनके पास जावे नहीं इस डर से कि कहीं कुछ काम बता-वेंगे, २१. गुरु के बुलाने पर जोर से तथा अविनय से कहे कि क्या कहते हो ? २२. गुर्वादि कहे हे शिष्य ! यह काम (वैयावच्चादि) तेरे लाभकारी है, इसे कर, तब पीछा कहे अगर लाभकारी है तो आपही क्यों नहीं कर लेते हो, २३. शिष्य बड़ों के साथ कठोर कर्कश भाषा वापरे २४. शिष्य गुरुजन के साथ वैसे ही शब्द वापरे (काम में

लावे), जैसे गुरुजन शिष्य के साथ काम में लाते हैं, २५. गुरुजन व्याख्यान–धर्मोपदेश देते हों तब सभा के बीच में कहे कि आप जो कहते हो वैसा व्याख्यान कहां है ? २६. गुरुजन के व्याख्यान में कहे कि आप तो भूलते हो, यह कहना सत्य नहीं है । २७. गुरुजन के व्याख्यान से राजी न रहते नाराजी दिखावे (इस विचार से कि इससे ज्यादा अच्छा तो मैं जानता हूं) । २७. गुरुजन व्याख्यान देते हों तब सभा में भेद डालने को, विसर्जन करने जैसा शब्द बोले—महाराज गोचरी का या अमुक काम का समय हो गया है । २९. गुरुजन व्याख्यान देते हैं तब श्रोताजनों के मन को व्याख्यान से नाराज करने की चेष्टा करे । ३०. गुरुजन का व्याख्यान पूरा बन्द नहीं हुवा हो, समास पूरा हुवा न हो, उससे पहले ही आप व्याख्यान शुरु कर देवे तो । ३१. गुर्वादि की शय्या-आसन वगैरह को पग से ठुकरावे तो । ३२. बड़ों की शय्या पर आप उभा रहे, बैठे, सोवे तो । ३३. गुरु के शयन–आसन से अपना शयन ऊंचा करे वा बराबर भी करे और उस पर सोवे, बैठे तो आसातना लागे ।

—❀—

भाग ३

१. जीव के सुख-दुःखादि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक छठा, उद्देशा दसवां)

जीवाण य सुहं दुक्खं, जीवे जीवति तहेव भविया य।
एगंतदुक्खं वेयण, अत्तमायाय केवली ॥

१—अहो भगवन् ! अन्यतीर्थी इस प्रकार कहते हैं कि राजगृह नगर में जितने जीव हैं, उन जीवों के सुख-दुःख बाहर निकाल कर हाथ में लेकर बोर की गुठली प्रमाण यावत् जूं लीख प्रमाण भी दिखाने में कोई समर्थ नहीं है। अहो भगवन् ! क्या यह ठीक है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थियों का यह कहना मिथ्या है। मैं इस तरह से कहता हूं कि सम्पूर्ण लोक के जीवों के सुख-दुःख को बाहर निकाल कर हाथ में लेकर दिखाने में कोई समर्थ नहीं है। अहो भगवन् ! किस कारण से दिखाने में समर्थ नहीं है ? हे गौतम ! जिस तरह तीन चुटकी बजावे उतने में इस जम्बूद्वीप की २१ परिक्रमा करे ऐसी शीघ्रगति वाला कोई देव सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में व्याप्त होवे ऐसा गन्ध का डिब्बा खोल कर जम्बूद्वीप की २१ परिक्रमा करे, उतने में गन्ध उड़ कर जीवों के नाक में प्रवेश करे, उस गन्ध को अलग निकाल कर बताने में कोई समर्थ नहीं है, इसी तरह जीवों के सुख-दुःख को बाहर निकाल कर बताने में कोई समर्थ नहीं है।

२—अहो भगवन् ! क्या जीव है सो चैतन्य है या

चैतन्य है सो जीव है ? हे गौतम ! जीव है सो चैतन्य है और चैतन्य है सो जीव है, जीव और चैतन्य एक ही है। नारकी का नैरयिक व नियमा जीव है, और जीव है सो नैरयिक अनैरयिक दोनों ही है। इसी तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिए।

३—अहो भगवन् ! जीव है सो प्राण धारण करता है या प्राण धारण करता है सो जीव है ? हे गौतम ! जो प्राण धारण करता है सो नियमा जीव है परन्तु जीव प्राण धारण करता भी है और नहीं भी करता है, जैसे सिद्ध भगवान्, द्रव्यप्राण धारण नहीं करते हैं। नारकी का नैरयिक नियमा प्राणधारी है और प्राणधारी है सो नैरयिक अनैरयिक दोनों ही है। इसी तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिए।

४ - अहो भगवन् ! भवसिद्धिक (भवी) नैरयिक होता है या नैरयिक भवसिद्धिक होता है ? हे गौतम ! भवसिद्धिक नैरयिक अनैरयिक दोनों ही होता है। इसी तरह नैरयिक भी भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक दोनों होता है। इस तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिए।

५—अहो भगवन् ! अन्यतीर्थी कहते हैं कि सब प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व एकान्त दुःखरूप वेदना वेदते हैं। क्या यह ठीक है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थियों का यह कहना मिथ्या है। मैं इस तरह से कहता हूं—नारकी का नैरयिक एकान्त दुःखरूप वेदना वेदता है, कदाचित् सुखरूप वेदना भी वेदता है। चारों ही जाति के देवता एकान्त सुखरूप

वेदना वेदते हैं, कदाचित् दुःख रूप वेदना भी वेदते हैं। औदारिक के १० दण्डक विविध प्रकार की (वेमाया) वेदना वेदते हैं अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं।

६—अहो भगवान् ! क्या नारकी का नैरयिक आत्म-शरीर क्षेत्रावगाढ़ (स्वशरीरक्षेत्र ओघाया) पुद्गलों को ग्रहण कर आहार करता है या अनन्तर क्षेत्रावगाढ़ (अपने शरीरक्षेत्र ओघाया की अपेक्षा दूसरा क्षेत्र) पुद्गलों को ग्रहण कर आहार करता है या परंपरक्षेत्रावगाढ़ (आत्म-क्षेत्र से अनन्तर क्षेत्र उससे पर क्षेत्र वह परंपरक्षेत्र) पुद्गलों को ग्रहण कर आहार करता है ? हे गौतम ! आत्मशरीर क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण कर आहार करता है। अनन्तर क्षेत्रावगाढ़ और परंपरक्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण कर आहार नहीं करता है। इसी तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिए।

७—अहो भगवन् ! क्या केवली महाराज इन्द्रियों से जानते और देखते हैं ? हे गौतम ! केवली महाराज इन्द्रियों से नहीं जानते और नहीं देखते हैं। छहों दिशाओं में द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव मित (मर्यादासहित) भी जानते-देखते हैं और अमित (मर्यादारहित) भी जानते-देखते हैं यावत् केवली का दर्शन निरावरण (आवरणरहित) है।

२. आहार का थोकड़ा

(भगवतसूत्री, शतक आठवां, उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन् ! जीव मर कर परभव में जाता हुआ कितने समय तक अनाहारक रहता है ? हे गौतम ! परभव में जाता हुआ जीव पहले, दूसरे, तीसरे समय में सिय (कदाचित्) आहारक, सिय अनाहारक होता है। चौथे समय में नियमा (अवश्य) आहारक होता है। समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में पहले, दूसरे तीसरे समय तक आहार की भजना है, चौथे समय में आहार की नियमा हैं। त्रस के १९ दण्डक के जीवों में पहले दूसरे समय आहार की भजना है तीसरे समय आहार की नियमा है।

२ - अहो भगवन् ! जीव किस समय अल्प आहारी होता है ? हे गौतम ! उत्पन्न होते वक्त प्रथम समय में और मरते वक्त चरम (अन्तिम) समय में जीव अल्प-आहारी होता है।

३—अहो भगवन् ! लोक का कैसा संठाण (संस्थान) है ? हे गौतम ! लोक का संठाण सुप्रतिष्ठ (सरावला) के आकार है। नीचे चौड़ा, बीच में संकड़ा और ऊपर पतला है। ऐसे शाश्वत लोक में केवलज्ञान केवल दर्शन के धारक अरिहन्त जिन केवली जीवों को अजीवों को सब को जानते देखते हैं। फिर वे सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं।

४—अहो भगवन् ! उपाश्रय में रहकर सामायिक करने वाले श्रावक को ईर्यापथिकी क्रिया लगती है या सांपरायिकी ? हे गौतम ! संकषायी होने से उसको सांप-रायिकी क्रिया लगती है ।

५—अहो भगवन् ! किसी श्रावक के त्रसजीवों को मारने का त्याग किया हुआ है लेकिन पृथ्वीकाय वध का त्याग नहीं है, वह पृथ्वी खोदे उस वक्त कोई त्रस जीव मर जाये तो क्या उसके व्रत में अतिचार लगता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे । वह श्रावक त्रस जीवों❋मारने की प्रवृत्ति नहीं करता है । इसलिए ग्रहण किये हुए उसके व्रत में अतिचार नहीं लगता है, व्रत भंग नहीं होता है । इसी तरह जिस श्रावक ने वनस्पति छेदने का त्याग किया है, पीछे पृथ्वी खोदते हुए जड़ मूलादि छेदन हो जाये तो उसके गहण किये हुए व्रत में अतिचार (दोष) नहीं लगता है, व्रत भंग नहीं होता है ?

६—अहो भगवन् ! तथारूप के (उत्तम) श्रमण माहण को प्रासुक एषणीय आहार पानी बहरावे (देवे) तो क्या लाभ होता है ? हे गौतम ! वह जीव समाधि

❋ सामान्य रीति से देश विरति श्रावक को संकल्प पूर्वक त्रस जीव की हिंसा का त्याग होता है, इसलिए जब तक जिसकी हिंसा का त्याग किया हो उसकी संकल्प पूर्वक हिंसा करने की प्रवृत्ति न करे तब तक उसके ग्रहण किये हुए व्रत में दोष नहीं लगता ।

प्राप्त करता है, बोध बीज समकित को प्राप्त करता है और अनुक्रम से मोक्ष में जाता है।

७. अहो भगवन् ! क्या कर्म रहित जीव की गति (गमन) होती है ? हां गौतम होती है। अहो भगवन् ! कर्म रहित जीव की कैसी गति होती है ? हे गौतम !❀ तुम्बी, कली धूम (धूंआ) बाण के दृष्टान्त से कर्म रहित जीव की गति ऊर्ध्व (ऊंची) होती है।

८. अहो भगवन् जीव दुःख से व्याप्त होता है ? अथवा अदुःखी (दुःख रहित) जीव दुःख से व्याप्त होता है ? हे गौतम ! दुःखी जीव दुःख से व्याप्त होता है परन्तु अदुःखी जीव दुःख से व्याप्त नहीं होता है। दुःखी

❀ जैसे कोई पुरुष तुम्बी पर मिट्टी के आठ लेप करके पानी में डाले तो भारी होने से वह तुम्बी नीचे चली जाये परन्तु वे मिट्टी के सब लेप गलकर उतर जाने से तुम्बी पानी के ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार आठ कर्म रहित जीव की भी ऊर्ध्वगति (ऊंची गति) होती है।

जैसे एरण्ड का फल सूखने पर उसका बीज उछल कर बाहर पड़ता है। धूम (धूंआ) स्वाभाविक ही ऊपर जाता है। धनुष से छूटा हुआ बाण एकदम सीधा जाता है। इसी तरह आठ कर्मों से छूटे हुए (रहित) जीव की गति ऊर्ध्व (ऊंची) होती है, इसलिए वह मोक्ष में जाता है।

जीव दुःख से व्याप्त होता है, २. दु.ख को ग्रहण करता है, ३. दुःख की उदीरणा करता है, ४. दुःख को वेदता है, ५. दुःख की निर्जरा करता है, ये पांच बोल समुच्चय जीव और २४ दण्डक के साथ कहने से १२५ आलापक हुए ।

९. अहो भगवन् ! बिना उपयोग गमन करते, खड़े बैठते, सोते, वस्त्र पात्रादि लेते रखते हुए साधु को ...ी है क्रिया लगती है या सांपरायिकी क्रिया लगती : हे गौतम ! उसे ईर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है ...न्तु सकषायी होने से उसको सांपरायिकी क्रिया लगती है ।

१०—अहो भगवन् ! इंगाल दोष, धूम दोष और संयोजना दोष किसको कहते हैं ! हे गौतम ! प्रासुक एषणीय आहार पानी लाकर मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त होकर आहार करे तो इंगाल-(अंगार) दोष लगता है । उसी आहार को क्रोध से खिन्न होकर माथा धुनता धुनता आहार करता है, (खाता है) तो धूमदोष लगता है । प्रासुक एषणीय निर्दोष आहार पानी लाकर उसमें स्वाद उत्पन्न करने के लिये एक दूसरे के साथ संयोग मिला कर आहार करे तो संयोजनादोष लगता है ।

११—अहो भगवन् ! खेत्ताइक्कंते (क्षेत्रातिक्रान्त), कालाइक्कंते, (कालातिक्रान्त), मग्गाइक्कंते (मार्गातिक्रान्त), पमाणाइक्कंते (प्रमाणातिक्रान्त) दोष किसे कहते हैं ? हे गौतम ! कोई साधु साध्वी सूर्य उदय से पहले आहार

पानी लाकर सूर्य उदय से पीछे भोगता है तो उसे खेत्ता-इक्कंते दोष लगता है । प्रथम पहर में लाये हुए आहार पानी को अन्तिम पहर में भोगता है तो कालाइक्कंते दोष लगता है । दो कोस (गाऊ) उपरान्त ले जाकर आहार पानी भोगता है तो मग्गाइक्कंते दोष लगता है । प्रमाण से अधिक आहार करता है तो पमाणाइक्कंते दोष लगता है ।

१२ – अहो भगवन् ! शस्त्रातीत शस्त्रपरिणत आहार पानी किसे कहते हैं ? हे गौतम ! जो अग्नि वगैरह शस्त्र से अच्छी तरह परिणत होकर अचित्त (जीव रहित) हो गया हो उस आहार पानी को शस्त्रातीत शस्त्रपरिणत कहते हैं ।

साधु को चाहिए कि आहार पानी के सब दोष टाल कर संयम निर्वाह के लिए शुद्ध आहार पानी भोगवे ।



३. सुपच्चक्खाण दुप्पच्चक्खाण का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवां, उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! कोई कहता है कि मुझे सर्व प्राण सर्व भूत सर्व जीव सर्व सत्त्व को हनने का (मारने का) पच्चक्खाण है तो उसके पच्चक्खाण को सुपच्चक्खाण कहना चाहिए या दुपच्चक्खाण कहना चाहिए ! हे

गौतम ! ❀ उसके पच्चक्खाण को सिय (कदाचित्) सुपच्चक्खात कहना चाहिए और सिय दुपच्चक्खाण कहना चाहिए। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिसको ऐसा जाणपणा नहीं है कि ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, यदि वह कहता है कि मुझे सर्व प्राण सर्व भूत सर्व जीव सर्व तत्त्व को हनने का त्याग है तो (१) वह मृषावादी है, सत्यवादी नहीं, २ तीन करण तीन जोग से असंयति है, ३ अविरति है, ४ पापकर्म नहीं पच्चक्खे हैं, ५ वह सक्रिय (आश्रवसहित) है, ६ असंवुडा (संवररहित) है, ७ छह काया का दण्डी (दण्ड देने वाला—हिंसा-करने वाला) है, ८ एकान्त बाल-अज्ञानी है, उसके पच्चक्खाण दुपच्चक्खाण है, सुपच्चक्खाण नहीं❀।

जिसको ऐसा जाणपणा (ज्ञान) है कि 'ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, यदि वह कहता है कि मुझे सर्व प्राण सर्व भूत सर्व जीव सर्व सत्त्व को हनने (मारने) का त्याग है तो १ वह सत्यवादी है, मृषावादी नहीं, २ तीन करण तीन जोग से संयति हैं, ३ विरति है, ४ पापकर्म का पच्चक्खाण किया है, ५ अक्रिय (आश्रवरहित) है, ६ संवुडा (संवर सहित) है, ७ छह काया का रक्षक है, ८ एकान्त पण्डित ज्ञानी है। उसके पच्चक्खाण सुपच्चक्खाण है, दुपच्चक्खाण नहीं❀ ।

❀ ये दोनों तरह के पच्चक्खाण साधु की अपेक्षा से (साधु के लिए) कहे हैं।

❀ ये पच्चक्खाण साधु के लिए हैं।

२—अहो भगवन् ! पच्चक्खाण कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! पच्चक्खाण दो प्रकार के हैं—मूलगुण-पच्चक्खाण और उत्तरगुणपच्चक्खाण । मूलगुणपच्चक्खाण के दो भेद—सर्वमूल गुणपच्चक्खाण और देशमूलगुणपच्च-क्खाण । सर्वमूलगुणपच्चक्खाण के ५ भेद—सर्वथा प्रकार से हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह का त्याग करना अर्थात् पांच महाव्रतों का पालन करना । देशमूलगुणपच्च-क्खाण के ५ भेद—स्थूलप्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का त्याग करना अर्थात् पांच अणुव्रतों का पालन करना । उत्तरगुणपच्चक्खाण के दो भेद—सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाण, देशउत्तरगुणपच्चक्खाण । सर्वउत्तरगुण पच्चक्खाण के ❀ १० भेद-१ अणागयं—(जो तप आगामी काल में करना है वह पहले कर लेवे), २ अइक्कंतं—(जो तप पहले करना था वह किसी कारण से नहीं हो सका तो पीछे करे) ३ कोडी-सहियं—(जैसा तप पहले दिन—आदि में करे वैसा पिछले दिन (अंत में) भी करे, बीच में नाना प्रकार का तप करे) ४ नियंटियं (नियमित दिन में विघ्न आने पर भी धारा हुआ—विचारा हुआ तप अवश्य करे), ५ सागारं (आगारसहित तप करे), ६ अणागारं (आगाररहित तप करे), ७ परिमाणकडं (×दत्तिदात ;कवल—(ग्रास), घर, चीज आदि का परिमाण करे), ८ निरवसेसं (चारों प्रकार के आहार का त्याग करे, संथारा करे), ९ संकेयं—(मुष्टि आदि संकेत पूर्वक तप करे), १० अद्धा÷(काल का परि-

---

÷गाथा—अणागय मइक्कंतं कोडीसहियं नियंटिय चेव ।
सागारमणागारं. परिमाण कडं निरवसेसं ।।
संकेयं चेव अद्धाए, पच्चखाणं भवे दसहा ।।

माण कर तप करे) । देशउत्तरगुणपच्चक्खाण के ७ भेद—तीन गुणव्रत (दिशाव्रत, उपभोगपरिभोग परिमाणव्रत, अनर्थदण्डविरमणव्रत) । चार शिक्षाव्रत (सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास, अतिथिसंविभागव्रत और ❀ संलेखना) ।

३—अहो भगवन् ! क्या जीव मूलगुणपच्चक्खाणी है या उत्तरगुणपच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है ? हे हे गौतम! समुच्चय जीव में भांगा तीन होते हैं । मनुष्य और तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय में भांगा होते हैं ३–३, बाकी २२ दण्डक अपचचक्खाणी हैं ।

अल्पवहुत्व—समुच्चय जीव में सब से थोड़े मूलगुणपच्चक्खाणी, उससे उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी अनन्तगुणा । तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय में सबसे

×एक साथ एक बार पात्र में पड़ा हुवा अन्नादि को १ दात कहते हैं ।

÷अद्धा तप के १० भेद हैं—१ नवकारसी, २ पोरिसी, ३ दो पोरिसी, ४ एकासन, ५ एकलठाण, ६ आयम्बल, ७ नीवि, ८ उपवास, ९ अभिग्रह १० दिवस-चरिम ।

❀ संलेखना का पूरा नाम है—अपश्चिममारणान्तिकसंलेखना जोषणाआराधना—सबसे पीछे मरण के समय में शरीर और कषायों को कृश करने के लिये जो तपविशेष स्वीकार कर आराधन किया जाय, उसे अपश्चिममारणान्तिकसंलेखनाजोषणाआराधना कहते हैं ।

थोड़े मूलगुणपच्चक्खाणी, उससे उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंख्यात गुणा, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यातगुणा । मनुष्य में सबसे थोड़े मूलगुणपच्चक्खाणी, उससे उत्तरगुणपच्चक्खाणी संख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यात-गुणा ।

४—अहो भगवन् ! क्या जीव सर्वमूलगुणपच्चक्खाणी है या देशमूलगुणपच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है ? हे गौतम ! समुच्चय जीव में भांगा होते हैं ३ । नारकी से वैमानिक तक मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय वर्ज कर २२ दण्डक में भांगा होता है एक—अपच्चक्खाणी । तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय में भांगा होते हैं २ (देशमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी) । मनुष्य में भांगा होते हैं ३ ।

अल्पबहुत्व—समुच्चय जीव में सबसे थोड़े सर्वमूलगुण पच्चक्खाणी, उससे देशमूलगुणपच्चक्खाणी असंख्यात-

---

देशउत्तरगुणपच्चक्खाण में दिशाव्रत आदि ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत ये सात गुणों की गिनती की गई है किन्तु संलेखना की गिनती नहीं की गई । इसका कारण यह है कि दिशाव्रत आदि सात गुण अवश्य देशोत्तरगुण रूप हैं परन्तु इस संलेखना का नियम नहीं है क्योंकि देशोत्तर गुण वाले को यह देशोत्तरगुण रूप है और सर्वोत्तरगुण वाले के लिए यह सर्वोत्तरगुणरूप है । देशोत्तरगुण वाले को भी अन्त में यह संलेखना करने योग्य है । यह बात बतलाने के लिए यहां पर आठवीं संलेखना कही गई है ।

गुणा, उससे अपच्चक्खाणी अनन्तगुणा। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में सबसे थोड़े देशमूलगुणपच्चक्खाणी, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यातगुणा। मनुष्य में सबसे थोड़े सर्वमूलगुणपच्चक्खाणी, उससे देशमूलगुणपच्चक्खाणी संख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यातगणा।

५—अहो भगवन्! क्या जीव सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी है या देशउत्तरगुणपच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है? हे गौतम! समुच्चय जीव में भांगा होते हैं ३। मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय में भांगा होते हैं ३-३। बाकी २२ दण्डक में भांगा होता है एक (अपच्चक्खाणी)।

अल्पबहुत्व—समुच्चय जीव में सबसे थोड़े सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी, उससे देशउत्तरगुणपच्चक्खाणी असंख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी अनन्तगुणा। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में सब से थोड़े सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी, उससे देशउत्तरगुणपच्चक्खाणी असंख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यातगुणा। मनुष्य में सबसे थोड़े सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी, उससे देशउत्तरगुणपच्चक्खाणी संख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यातगुणा।

४—अहो भगवन्! क्या जीव संयति है या असंयति है या संयतासंयति है? हे गौतम! समुच्च जीव में भांगा होते हैं ३। मनुष्य में भांगा होते हैं ३। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में भांगा होते हैं २ (असंयति और संयतासंयति)। बाकी २२ दंडक में भांगा होते हैं एक-असंयति।

अल्पबहुत्व—समुच्चय जीव में सब से थोड़े संयति, उससे संयतासंयति असंख्यातगुणा, उससे असंयति अनन्तगुणा। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में सबसे थोड़े संयतासंयति, उससे असंयति असंख्यातगुणा। मनुष्य में सबसे संयति, उससे संयतासंयति संख्यातगुणा, उससे असंयति असंख्यातगुणा।

७—अहो भगवन्! क्या जीव पच्चक्खाणी है या पच्चक्खाणापच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है? हे गौतम! समुच्चय जीव में भांगा होते हैं ३। मनुष्य में भांगा होते हैं ३। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में भांगा होते हैं २। बाकी २२ दण्डक में भांगा होता है एक–अपच्चक्खाणी।

अल्पबहुत्व—समुच्चय जीव में सबसे थोड़े पच्चक्खाणी, उससे पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असंख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी अनन्तगुणा। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में सबसे थोड़े पच्चक्खाणापच्चक्खाणी, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यात–गुणा। मनुष्य में सबसे थोड़े पच्चक्खाणी, उससे पच्चक्खाणापच्चक्खाणी संख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यात–गुणा।

८—अहो भगवन्! क्या जीव शाश्वत है या अशाश्वत है? हे गौतम! जीव द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है और पर्याय की अपेक्षा अशाश्वत है। इसी तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिये।

४. छद्मस्थ अवधिज्ञानी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवां उद्देशा आठवां)

१—अहो भगवन् ! गत अनन्त काल में क्या छद्मस्थ मनुष्य सिर्फ तप, संयम, संवर, ब्रह्मचर्य और आठ प्रवचन माता के पालने से सिद्ध बुद्ध मुक्त हुआ है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (ऐसा नहीं हुआ)। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! गत अनन्त काल में जो सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए हैं वे सब उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, अरिहंत जिन केवली होकर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए हैं, होते हैं और होवेंगे। जिस तरह छद्मस्थ का कहा उसी तरह अधोअवधिक और परम अधोअवधिक का भी कह देना चाहिए।

२—अहो भगवन् ! गत अनन्तकाल में क्या केवली मनुष्य सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए हैं ? हां, गौतम ! हुए हैं, वर्तमान काल में होते हैं और भविष्य काल में होवेंगे।

३—अहो भगवन् ! गत अनन्त काल में, वर्तमान काल में और भविष्यत काल में जितने सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए हैं, होते हैं, होवेंगे क्या वे सभी उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहंत जिन केवली होकर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए हैं होते हैं और होवेंगे ? हां, गौतम ! वे सब उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहंत जिन केवली होकर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए हैं, होवेंगे।

४—अहो भगवन् ! क्या उन उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहंत जिन केवली को 'अलमत्थु' (अलमस्तु-पूर्ण) कहना चाहिए ? हां, गौतम ! उन्हें अलमत्थु (अलमस्तु) पूर्ण कहना चाहिए ।

५—अहो भगवन् ! क्या हाथी और कुंथुआ का जीव समान है ? हां, गौतम ! ❀दीपक के दृष्टान्त अनुसार समान है, सिर्फ शरीर का फर्क है ।

नारकी के नैरयिक यावत् वैमानिक तक २४ ही दण्डक के जीव जो पापकर्म करते हैं, किये हैं और करेंगे, वे सब दुःख रूप हैं और जो निर्जरा करते हैं, की है और करेंगे वह सब सुख रूप है ।

४—अहो भगवन् ! संज्ञा कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! संज्ञा १० प्रकार की है—१ आहार संज्ञा, २

❀ जैसे एक दीपक का प्रकाश किसी एक कमरे में फैला हुआ है । यदि उसको किसी बर्तन द्वारा ढक दिया जाय तो उसका प्रकाश बर्तन परिमाण हो जाता है ! इसी तरह जब जीव हाथी का शरीर धारण करता है तो उतने बड़े शरीर में व्याप्त रहता है और जब कुंथुआ का शरीर धारण करता है तो उस छोटे शरीर में व्याप्त रहता है । इस प्रकार सिर्फ शरीर में फर्क रहता है । जीव में कुछ भी फर्क नहीं है । सब जीव समान हैं ।

भय संज्ञा, ३ मैथुनसंज्ञा, ४ परिग्रहसंज्ञा, ५ क्रोधसंज्ञा, ६ मानसंज्ञा, ७ मायासंज्ञा, ८ लोभसंज्ञा, ९ ❀ ओघसंज्ञा, ÷ १० लोकसंज्ञा । २४ ही दण्डक में १० संज्ञा पायी जाती है ।

५—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिक कितने प्रकार की वेदना वेदते हैं ? हे गौतम ! १० प्रकार की क्षेत्र-वेदना वेदते हैं—१ शीत, २ उष्ण, ३ भूख, ४ प्यास, ५ खाज-खुजली, ६ परतन्त्रता, ७ ज्वर, ८ दाह, ९ भय, १० शोक ।

६—अहो भगवन् ! क्या हाथी और कुंथुआ के अपच्चक्खाणियाक्रिया समान (सरीखी) होती है ? हां, गौतम ! अविरति के कारण से (पच्चक्खाण नहीं होने के कारण से) दोनों के अपच्चक्खाणियाक्रिया समान होती है ।

❀ मतिज्ञानावरणीयादि के क्षयोपशम से शब्द और अर्थ के सामान्य ज्ञान को ओघसंज्ञा कहते हैं ।

÷ सामान्य रूप से जानी हुई बात को विशेष रूप से जानने को लोकसंज्ञा कहते हैं ।

अर्थात् दर्शनोपयोग को ओघसंज्ञा तथा ज्ञानोपयोग को लोकसज्ञा कहते हैं । किसी के मत से ज्ञानोपयोग ओघसंज्ञा है और दर्शनोपयोग लोकसंज्ञा । सामान्य प्रवृत्ति को ओधसंज्ञा कहते हैं तथा लोकदृष्टि को लोकसंज्ञा कहते हैं, यह भी एक मत है ।

७—अहो भगवन् ! आधाकर्मी आहारादि (आहार, वस्त्र, पात्र, मकान) को सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है ? क्या करता है ? क्या चय करता है ? क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आयुष्यकर्म को छोड़ कर शिथिल बन्धन में बंधी हुई सात कर्म प्रकृतियों को मजबूत बन्धन में बांधता है यावत् बारम्बार संसार परिभ्रमण करता है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लंघन कर जाता है, वह पृथ्वीकाय के जीवों से लेकर त्रसकाय तक के जीवों की घात की परवाह नहीं करता और जिन जीवों के शरीर का वह भक्षण करता है, उन जीवों पर वह अनुकम्पा नहीं करता ।

८—अहो भगवन् ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है ? यावत् क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आयुष्यकर्म को छोड़ कर मजबूत बन्धन में बंधी हुई सात कर्मप्रकृतियों को शिथिल बन्धन वाली करता है, आदि सारा वर्णन*संवुडा (संवृत) अनगार की तरह कह देना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कदाचित् आयुष्यकर्म बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता । इस प्रकार अन्त में संसार-

---

* भगवतीसूत्र के थोकड़ों का पहिला भाग पृष्ठ २५ में विस्तृत वर्णन है ।

सागर को उल्लंघन कर जाता है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लंघन नहीं करता, वह पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के जीवों की रक्षा करता है, उन जीवों की अनुकम्पा करता है, इस कारण वह संसारसागर को तिर जाता है।

९—अहो भगवन् ! क्या अस्थिर पदार्थ बदलता है ? टूटता है और स्थिर पदार्थ नहीं बदलता, नहीं टूटता ? हां, गौतम ! अस्थिर पदार्थ बदलता है, टूटता है और स्थिर पदार्थ नहीं बदलता, नहीं टूटता है।

१०—अहो भगवन् ! क्या बालक शाश्वत है और बालकपना अशाश्वत है ? क्या पंडित शाश्वत है, पंडितपना अशाश्वत है ? हां, गौतम ! बालक शाश्वत है, बालकपना अशाश्वत है। पण्डित शाश्वत है, पंडितपना अशाश्वत है।

---

५. आयुष्यबंध आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवां, उद्देशा छठा)

अहो भगवन् ! नारकी में उत्पन्न होने वाला जीव नारकी का आयुष्य क्या इस भव में बांधता है, या नरक में उत्पन्न होती वक्त बांधता है या उत्पन्न होने के बाद बांधता है ? हे गौतम ! इस भव में बांधता है, नरक में

उत्पन्न होती वक्त नहीं बांधता है, उत्पन्न होने के वाद भी नहीं बांधता है । (पहले भांगे में बांधता है, दूसरे तीसरे भांगे में नहीं) । इसी तरह २४ दण्डक में कह देना ।

२—अहो भगवन् ! नारकी में उत्पन्न होने वाला जीव नरक का आयुष्य क्या इस भव में वेदता है ? या नरक में उत्पन्न होती वक्त वेदता है या उत्पन्न होने के वाद वेदता है ? हे गौतम ! इस भव में नहीं वेदता किन्तु उत्पन्न होती वक्त और उत्पन्न होने के वाद वेदता है । (पहले भांगे में नहीं वेदता, दूसरे तीसरे भांगे में वेदता है) इसी तरह २४ दण्डक में कह देना ।

अहो भगवन् ! नरक में उत्पन्न होने वाला जीव क्या इस भव में रहा हुआ महावेदना वाला होता है ? या नरक में उत्पन्न होते समय महावेदना वाला होता है ? या नरक में उत्पन्न होने के वाद महावेदना वाला होता है ? हे गौतम ! इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है, कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, नरक में उत्पन्न होते समय कदाचित् महावेदना वाला होता है कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, नरक में उत्पन्न होने के वाद एकान्त दुःखवेदना वेदता है, कदाचित् किंचित् सुखवेदना वेदता है । देवता में पहले, दूसरे भांगे में कदाचित् महावेदना वाला, कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है परन्तु देवता में उत्पन्न होने के वाद एकान्त सातावेदना वेदता है किन्तु किंचित् असातावेदना भी वेदता है । दस दण्डक औदारिक के जीव पहले, दूसरे भांगे में कदाचित् महावेदना वेदते हैं कदाचित् अल्पवेदना

वेदते हैं। उत्पन्न होने के बाद वेमाया (विविध प्रकार से) वेदना वेदते हैं।

३—अहो भगवन् ! क्या जीव आभोग (जाणपणा) से आयुष्य बांधता है या अनाभोग (अजाणपणा) से आयुष्य बांधता है ? हे गौतम ! जीव अनाभोग से आयुष्य बांधता है। इसी तरह २४ ही दण्डक में कह देना चाहिए।

४—अहो भगवन् ! क्या जीव कर्कशवेदनीय (दुःख से वेदने योग्य) कर्म बांधता है ? हां, गौतम ! बांधता है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ! हे गौतम ! १८ पाप करने से जीव कर्कश वेदनीयकर्म बांधता है। इसी तरह २४ ही दण्डक में कह देना चाहिए।

५—अहो भगवन् ! क्या जीव अकर्कशवेदनीय (सुखपूर्वक वेदने योग्य) कर्म बांधता है ? हां, गौतम ! बांधता है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! १८ पाप का त्याग करने से जीव अकर्कशवेदनीय कर्म बांधता है। इसी तरह मनुष्य में कह देना। शेष २३ दण्डक के जीव अकर्कश वेदनीयकर्म नहीं बांधते हैं ?

६—अहो भगवन् ! क्या जीव सातावेदनीय कर्म बांधता है ? हां, गौतम ! अहो भगवन् ! जीव सातावेदनीय कर्म किस तरह से बांधता है ? हे गौतम ! जीव

सातावेदनीय कर्म* १० प्रकार से बांधता है। इसी तरह २४ ही दण्डक में कह देना चाहिए।

७—अहो भगवन्! क्या जीव असातावेदनीयकर्म बांधता है? हां, गौतम! बांधता है। अहो भगवन्! जीव असातावेदनीयकर्म किस तरह से बांधता है? हे गौतम! जीव × १२ प्रकार से असातावेदनीयकर्म बांधता है। इसी तरह २४ ही दण्डक में कह देना चाहिए।

८—अहो भगवन्! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणीकाल का दुःषमा-दुःषम नाम का छठा आरा कैसा होगा? हे गौतम! यह छठा आरा मनुष्य पशु

---

*सातावेदनीयकर्म बन्ध के दस कारणः—

१–४ प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों पर अनुकम्पा करने से, ५–बहुत प्राण भूत जीव सत्त्वों को दुःख नहीं देने से, ६–उन्हें शोक नहीं उपजाने से, ७–खेद नहीं उपजाने से, ८–वेदना नहीं उपजाने से, ९–नहीं मारने से, १०–परिताप नहीं उपजाने से जीव सातावेदनीयकर्म बांधता है।

× असातावेदनीय कर्म बांधने के १२ कारण—

१–दूसरे जीवों को दुःख देने से, २–शोक उपजाने से, ३–खेद उपजाने से, ४–पीड़ा पहुंचाने से, ५–मारने से, ६–परिताप उपजाने से, ७–१२–बहुत प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों को दुःख देने से, शोक उपजाने से, खेद उपजाने से, पीड़ा पहुंचाने से, मारने से, परिताप उपजाने से, जीव असातावेदनीयकर्म बांधता है।

पक्षियों के दुःख जनित हाहाकार शब्द से व्याप्त होगा। इस आरे के प्रारंभ में धूलियुक्त भयंकर आंधी चलेगी, फिर संवर्तकहवा चलेगी, दिशाएं धूल से भर जाएंगी, प्रकाश रहित होंगी, अरस विरस क्षार खात अग्नि बिजली विष मिश्रित बरसात होगी। वनस्पतियां, × त्रसप्राणी, पर्वत नगर सब नष्ट हो जाएंगे। पर्वतों में एक वैताढ्यपर्वत और नदियों में गंगा, सिन्धु नदी रहेगी। सूर्य खूब तपेगा, चन्द्रमा अत्यन्त शीतल होवेगा। भूमि अंगार, भोमर, राख तथा तपे हुए तवे के समान होगी। गंगा सिन्धु नदियों का पाट रथ के चीले जितना चौड़ा रहेगा। उसमें रथ की धुरी प्रमाण पानी रहेगा। उसमें मच्छ कच्छ आदि जलचर जीव बहुत होंगे। गंगा, सिधु महानदियों के पूर्व पश्चिम तट पर ❀ ७२ बिल हैं। उनमें मनुष्य रहेंगे।

× बिलों और गंगा सिन्धु नदी के सिवा गांव और जंगल में चलने वाले त्रस प्राणी।

❀ वैताढ्यपर्वत के इस तरफ दक्षिण भारत में ९ बिल पूर्व के तट पर हैं और ९ बिल पश्चिम के तट पर हैं। इसी तरह १८ बिल वैताढ्यपर्वत के उत्तर की तरफ उत्तर भारत में है। ये ३६ बिल गंगा नदी के तट पर वैताढ्यपर्वत के पास हैं। ऐसे ही ३६ बिल सिंधु नदी के तट पर वैताढ्यपर्वत के पास हैं। इन ७२ बिलों में से ६३ बिलों में मनुष्य मनुष्यणी रहेंगे। ६ बिलों में चौपद पशु रहेंगे और बाकी ३ बिलों में पक्षी रहेंगे। मनुष्य मच्छ कच्छप का आहार करेंगे। पशु पक्षी उन मच्छ

वे मनुष्य खराब रूप वाले, दीन हीन अनिष्ट अमनोज्ञ स्वर वाले काले, कुरूप होंगे। उनकी उत्कृष्ट अवगाहना लगते आरे १ हाथ की, उतरते आरे मुण्ड हाथ (१ हाथ से कुछ कम) प्रमाण होगी और आयु लगते आरे २० वर्ष की, उतरते आरे १६ वर्ष की होगी। वे अधिक सन्तान वाले होंगे। उनका वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संहनन, संस्थान सब अशुभ होंगे। वे बहुत रोगी, क्रोधी, मानी, मायी, लोभी होंगे। वे लोग सूर्य उदय और अस्त के समय अपने बिलों में से बाहर निकल कर गंगा सिंधु नदियों में से मच्छ कच्छप पकड़ कर रेत में गाड़ देंगे। शाम को गाड़े हुए मच्छादि को सुबह निकाल कर खावेंगे और सुबह गाड़े हुए मच्छादि को शाम को निकाल कर खावेंगे। व्रत, नियम पच्चक्खाण से रहित मांसाहारी संक्लिष्ट परिणामी (खराब परिणाम वाले) वे जीव मर कर प्रायः नरक,

---

कच्छप आदि की हड्डियां आदि चाट कर रहेंगे। मनुष्यों के शरीर की रचना इस प्रकार होगी—घड़े के पींदा (नीचे का भाग) समान शिर होगा, जौ के शालू के समान माथे के केश होंगे, कढ़ाई के पींदे के समान ललाट होगा, चीड़ी के पांखों के समान भांफण होंगे, बकरे की नाक के समान नाक होगी, ऊंट की नौल के समान होठ होंगे सीप संखोलिया के समान नख होंगे। उदई की बम्बी के समान शरीर होगा, नाक कान आदि सब ही द्वार बहते रहेंगे। वे माता-पिता की लज्जा से रहित होंगे।

तिर्यंच गति में जावेंगे । पशु पक्षी भी मर कर प्रायः नरक, तिर्यंच गति में जावेंगे ।

यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का होगा ।



६. काम-भोगादि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवां, उद्देशा सातवां)

१—अहो भगवन् ! उपयोगसहित गमनागमनादि क्रिया करते हुए संवुडा (संवरयुक्त) अणगार को इरियावही (ऐर्यापथिकी) क्रिया लगती है या सांपरायिकीक्रिया लगती है ? हे गौतम ! अकषायी संवुडा अणगार सूत्र प्रमाणे चलता है, इसलिए उसे इरियावहीक्रिया लगती है, सांपरायिकी क्रिया नहीं लगती । कषायसहित, उत्सूत्र चलने वाले अणगार को सांपरायिकीक्रिया लगती है ।

२—अहो भगवन् ! काम कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! काम दो प्रकार के हैं—शब्द और रूप । अहो भगवन् ! काम रूपी हैं या अरूपी ? सचित्त हैं या अचित्त ? जीव हैं या अजीव ? हे गौतम ! काम रूपी हैं, अरूपी नहीं । काम सचित्त भी है और अचित्त भी है, काम जीव भी है और अजीव भी है । अहो भगवन् ! काम जीवों के होते हैं या अजीवों के होते हैं ? हे गौतम ! काम जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते ।

३—अहो भगवन् ! भोग कितने प्रकार के हैं ? हे

गौतम ! भोग कितने प्रकार के हैं—गंध, रस, स्पर्श । अहो भगवन् ! भोग रूपी हैं या अरूपी ? सचित्त हैं या अचित्त ? जीव हैं या अजीव ? हे गौतम ! भोग रूपी हैं, अरूपी नहीं । भोग सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं। भोग जीव भी हैं और अजीव भी हैं । अहो भगवन् ! भोग जीवों के होते हैं या अजीवों के होते हैं ? हे गौतम ! भोग जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते ।

४—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिक कामी हैं या भोगी हैं ? हे गौतम ! कामी भी हैं और भोगी भी हैं । अहो भगवन् इसका क्या कारण ? हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय चक्षुइन्द्रिय कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय रसेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं । इसी तरह भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य ये १५ दण्डक कह देना । चौइन्द्रिय चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा कामी हैं, घ्राणेन्द्रिय रसेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं । तेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय और एकेन्द्रिय (पांच स्थावर) भोगी हैं, कामी नहीं ।

अल्पवहुत्व—सबसे थोड़े कामी, भोगी, उससे नोकामी-नो-भोगी अनंतगुणा, उससे भोगी अनंतगुणा ।



७. अनगार क्रिया का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवां, उद्देशा सातवां)

१—अहो भगवन् ! किसी भी देवलोक में उत्पन्न होने योग्य क्षीण भोगी (दुर्बल शरीर वाला) छद्मस्थ मनुष्य क्या उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम द्वारा विपुल भोग (मनोज्ञ शब्दादि) भोगने में समर्थ नहीं होता । अहो भगवन् ! क्या आप इस अर्थ को ऐसा ही कहते हैं❀ ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (यह अर्थ ठीक नहीं है) । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! वह उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम से कोई भी विपुल भोग (मनोज्ञ शब्दादि) भोगने में समर्थ है । इसलिए वह भोगी पुरुष भोगों का त्याग पच्चक्खाण करने से महानिर्जरा वाला और महापर्यवसान (महाफल) वाला होता है ।

२—जिस तरह छद्मस्थ का कहा उसी तरह अधो-अवधिज्ञानी (नियत क्षेत्र के अवधिज्ञान वाले) का भी कह देना चाहिए ।

६—अहो भगवन् ! उसी भव में सिद्ध होने योग्य यावत् सर्व दुःखों का अन्त करने योग्य क्षीणभोगी (दुर्बल

❀ इस प्रश्न का आशय यह है कि जो भोग भोगने में समर्थ नहीं है, वह अभोगी है, किन्तु अभोगी होने मात्र से ही त्यागी नहीं हो सकता । त्याग करने से त्यागी होता है और त्याग करने से ही निर्जरा होती है ।

शरीर वाला) परम अवधिज्ञानी मनुष्य क्या उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम से विपुल भोग भोगने में समर्थ नहीं है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे—वह उत्थानादि से साधु के योग्य विपुल भोग भोगने में समर्थ है। भोगों का त्याग पच्चक्खाण करने से वह महानिर्जरा और महा-पर्यवसान (महाफल) वाला होता है।

४—जिस तरह परमावधिज्ञानी का कहा, उसी तरह से केवलज्ञानी का कह देना चाहिये।

अहो भगवन् ! क्या÷असंज्ञी (मनरहित) त्रस और पांच स्थावर अज्ञानी अज्ञान के अन्धकार में डूबे हुए अज्ञान रूपी मोह जाल में फंसे हुए अकामनिकरण (अनिच्छा पूर्वक) वेदना वेदते हैं ? हां, गौतम ! वेदते हैं।

❀ अहो भगवन् ! क्या संज्ञी (मनसहित) जीव

÷ जो जीव असंज्ञी (मनरहित) हैं, उनके मन नहीं होने से इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति के अभाव में क्या अकामनिकरण (अनिच्छापूर्वक) अज्ञानपणे वेदना-सुख दुःख का अनुभव करते हैं ? इस प्रश्न का यह भावार्थ है। इसका उत्तर - हां अनुभव करते हैं इस तरह दिया है।

❀ अहो भगवन् ! जो जीव इच्छा शक्ति युक्त और संज्ञी (मनसहितसमर्थ) हैं क्या वह भी अनिच्छापूर्वक अज्ञानपणे से सुख-दुःख का अनुभव करते हैं ? हां गौतम!

अकामनिकरण वेदना वेदते हैं ? हां, गौतम ! वेदते हैं। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जैसे अन्धकार में दीपक बिना आंखों से देखा नहीं जा सकता। छहों दिशाओं में दृष्टि फैला कर देखे बिना रूप देखा नहीं जा सकता। इस कारण से वे अकामनिकरण वेदना वेदते हैं।

७—× अहो भगवन् ! क्या संज्ञी (मनसहित)

करते हैं। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष देखने की शक्ति से युक्त है तो भी वह पुरुष दीपक के बिना अन्धकार में रहे हुए पदार्थों को नहीं देख सकता तथा उपयोग बिना ऊंचे, नीचे और पीठ पीछे के पदार्थों को नहीं देख सकता है। वे इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति युक्त होते हुए भी उपयोग विना सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। जिस प्रकार असंज्ञी जीव इच्छा और ज्ञानशक्ति रहित होने से अनिच्छापणे और अज्ञानदशा में सुख-दुःख वेदते हैं, उसी तरह से संज्ञी जीव इच्छा और ज्ञानशक्ति होते हुए भी शक्ति की प्रवृत्ति के अभाव में तीव्र अभिलाषा के कारण अनिच्छा पूर्वक सुख–दुःख वेदते हैं।

× अहो भगवन् ! क्या संज्ञी (मनसहित) जीव प्रकामनिकरणतीव्र अभिलाषा पूर्वक सुख-दुःख वेदते हैं ? हां, गौतम ! वेदते हैं। अहो भगवन् ! किस तरह वेदते हैं ? हे गौतम ! जो समुद्र के पार नहीं जा सकते, समुद्र के पार रहे हुए रूपों को नहीं देख सकते, वे तीव्र अभि-

जीव प्रकाम (तीव्रइच्छापूर्वक) वेदना वेदते हैं ? हां, गौतम ! वेदते हैं । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! वे समुद्र पार नहीं जा सकते, समुद्र पार के रूपों को नहीं देख सकते, देवलोक के रूपों को नहीं देख सकते, इस कारण से वे प्रकाम (तीव्रइच्छापूर्वक) वेदना वेदते हैं ।



८. काल का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक ग्यारहवां, उद्देशा ग्यारहवां)

वाणिज्य ग्राम के निवासी सुदर्शन श्रावक ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछा—

अहो भगवन् ! काल कितने प्रकार का है ? हे

लाषा पूर्वक सुख-दुःख वेदते हैं । वे इच्छाशक्ति और ज्ञान-शक्ति से युक्त हैं किन्तु उनको प्राप्त करने की शक्ति नहीं है, केवल तीव्र अभिलाषा है । इसलिए वे सुख-दुःख को वेदते हैं । असंज्ञी जीव इच्छा और ज्ञान शक्ति के अभाव से अनिच्छा और अज्ञानपूर्वक सुख-दुःख वेदते हैं । संज्ञी जीव इच्छा और ज्ञानशक्ति युक्त होते हुए भी उपयोग के अभाव से अनिच्छा और अज्ञान पूर्वक सुख-दुःख वेदते हैं तथा संज्ञी जीव सामर्थ्य और इच्छा युक्त होते हुए भी प्राप्त करने की शक्ति की प्रवृत्ति के अभाव से सिर्फ तीव्र अभिलाषापूर्वक सुख-दुःख वेदते हैं ।

सुदर्शन ! काल ४ प्रकार का है—१ प्रमाणकाल, २ अहाउनिव्वतिकाल (यथायुर्निर्वृत्तिकाल), ३ मरणकाल, ४ अद्धाकाल ।

अहो भगवन् ! प्रमाणकाल के कितने भेद हैं ? हे सुदर्शन ! प्रमाणकाल के २ भेद हैं दिवसप्रमाणकाल और रात्रिप्रमाणकाल । ४ पहर का दिन, ४ पहर की रात्रि होती है । आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सूर्य कर्कराशि में आकर प्रथम माँडले में चलता है उस दिन १८ मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है, ४॥ मुहूर्त की उत्कृष्ट पोरिसी होती है, और १२ मुहूर्त की जघन्य रात्रि होती है, ३ मुहूर्त की रात्रि की जघन्य पोरिसी होती है । फिर एक मुहूर्त के १२२ भाग में से एक-एक भाग दिन घटता जाता है और रात्रि बढ़ती जाती है । इस तरह पोस मास की पूर्णिमा के दिन १२ मुहूर्त का जघन्य दिन और १८ मुहूर्त की उत्कृष्ट रात्रि होती है । ३ मुहूर्त की दिन की जघन्य पोरिसी होती है और ४॥ मुहूर्त की रात्रि की उत्कृष्ट पोरिसी होती है । इस तरह १॥ मुहूर्त दिन की पोरिसी घटती है और १॥ मुहूर्त रात्रि की पोरिसी बढ़ती है । जब सूर्य अन्तिम मांडले में चलता है, तब फिर एक मुहूर्त के १२२ भाग में से एक-एक भाग रात्रि घटती जाती है और दिन बढ़ता जाता है । चैती पूर्णिमा और आसौजी पूर्णिमा को सूर्य मध्य मण्डल में चलता है तब १५ मुहूर्त का दिन और १५ मुहूर्त की रात्रि होती है । दिन और रात्रि दोनों बराबर होते हैं । ३॥। मुहूर्त की पोरिसी होती है ।

अहो भगवन् ! अहाउनिव्वत्तिकाल (यथायुर्निर्वृत्ति-काल) किसे कहते हैं ? हे सुदर्शन ! नारकी, देवता, मनुष्य, तिर्यंच सब संसारी जीव अपना-अपना बांधा हुआ आयुष्य भोगते हैं, उसे अहाउनिव्वतिकाल (यथायुर्निवृत्ति-काल) कहते हैं ।

अहो भगवन् ! मरणकाल किसको कहते हैं ? हे सुदर्शन ! जीव शरीर से और शरीर जीव से जुदा होता है, उसको मरणकाल कहते हैं ।

अहो भगवन्! अद्धाकाल किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं ? हे सुदर्शन ! समय, आवलिका आदि का अद्धा-काल कहते हैं । इसके अनेक ❀ भेद हैं—समय, आवलिका यावत् सव्वद्धाकाल ।

❀ अद्धाकाल के भेद इस प्रकार हैं—

(१) समय—काल का सबसे सूक्ष्म भाग ।
(२) आवलिका—असंख्यात समय की एक आवलिका होती है ।
(३) उच्छ्वास—संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास होता है ।
(४) निःश्वास—संख्यात आवलिका का एक निःश्वास होता है ।
(५) प्राण (आणपाणू)—एक उच्छ्वास और एक निःश्वास का एक प्राण होता है ।

(६) स्तोक—सात प्राण का एक स्तोक होता है ।

(७) लव—सात स्तोक का एक लव होता है ।

(८) मुहूर्त—७७ लव या ३७७३ प्राण का एक मुहूर्त होता है ।

(९) अहोरात्र - तीस मुहूर्त का अहोरात्र होता है ।

(१०) पक्ष—पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है ।

(११) मास—दो पक्ष का एक मास होता है ।

(१२) ऋतु—दो मास की एक ऋतु होती है ।

(१३) अयन—तीन ऋतुओं का एक अयन होता है ।

(१४) संवत्सर (वर्ष)—दो अयन का एक संवत्सर होता है ।

(१५) युग—पांच संवत्सर का एक युग होता है ।

(१६) वर्षशत बीस युग का एक वर्षशत (सौ वर्ष) होता है ।

(१७) वर्षसहस्र—दश वर्षशत का एक वर्षसहस्र (एक हजार वर्ष) होता है ।

(१८) वर्ष शतसहस्र—सौ वर्ष सहस्रों का एक शतसहस्र (एक लाख वर्ष) होता है ।

(१९) पूर्वाङ्ग—चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है ।

की। चौदह पूर्व का ज्ञान पढ़ा। बारह वर्ष श्रमणपर्याय का पालन कर सिद्ध, मुक्त हुए।

---

(२०) पूर्व - पूर्वाङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने से एक पूर्व होता है।

(२१) त्रुटितांग– पूर्व को चौरासी लाख से गुणा करने से एक त्रुटितांग होता है।

(२२) त्रुटित—त्रुटितांग को चौरासी लाख से गुणा करने से एक त्रुटित होता हैं।

इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशियां बनती है, वे इस प्रकार हैं—

(२३) अडडंगे (अटटांग) (२४) अडडे (अटट) (२५) अववंगे (अववांग) (२६) अववे (अवव) (२७) हूहुयंगे (हुहुकांग) (२८) हूहुए (हूहूक) (२९) उप्पलंगे (उप्पलांग) (३०) उप्पले (उत्पल) (३१) पउमंगे (पद्मांग) (३२) पउमे (पद्म) (३३) नलिणंगे (नलिनांग) (३४) नलिणे (नलिन) (३५) अच्छणिपूरंगे (अच्छनिपूराङ्ग) (३६) अच्छनिपूरे (अच्छनिपूर) (३७) अउयंगे (अयुतांग) (३८) अउये (अयुत) (३९) नउयंगे (नयुतांग) (४०) नउए (नयुत) (४१) पउयंगे (प्रयुतांग) (४२) पउए (प्रयुत), (४३) चूलियंगे (चूलिकांग) (४४) चूलिए (चूलिका) (४५) सीसपहेलियंगे (शीर्षप्रहेलिकाङ्ग) (४६) सीसपहेलिया (शीर्षप्रहेलिका)।

शीर्षप्रहेलिका १९४ अंकों की संख्या है। ७५८२६

६. योग का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक तेरहवां, उद्देशा सातवां)

१—अहो भगवन् ! क्या❀भाषा आत्मारूप (जीव-स्वरूप) है या अन्यरूप (पुद्गलस्वरूप) है ? हे गौतम ! भाषा आत्मारूप नहीं, किन्तु अन्य रूप है।

३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ इन चौपन अंकों पर १४० बिन्दियां लगाने से शीर्षप्रहेलिका संख्या का प्रमाण आता है। यहां तक का काल गणित का विषय माना गया है। इसके आगे भी काल का परिणाम बतलाया गया है, परन्तु वह उपमा का विषय है, गणित का नहीं। जैसे कि—पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गलपरावर्तन, भूत-काल, भविष्यतकाल, सर्वकाल (सव्वद्धाकाल)।

❀ भेदानुभेद अन्य ग्रन्थों से लिया गया है।

❀ उपर्युक्त प्रश्न का आशय है कि जीव के द्वारा भाषा का प्रयोग होता है तथा भाषा जीव के बन्ध और मोक्ष का कारण होती है, इसलिये जीव का धर्म होने से भाषा आत्मा-जीव है, क्या ऐसा कहा जा सकता ? अथवा भाषा आत्म-जीव नहीं है, क्या ऐसा कहा जा सकता ? क्योंकि भाषा श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण की जाती है, इसलिए मूर्त्त है। भाषा मूर्त्त होने से जीव से भिन्न है, क्योंकि जीव अमूर्त्त है। इस प्रकार की शंका से यह प्रश्न किया गया है। जिसका उत्तर दिया गया है कि भाषा आत्मा-जीव नहीं है क्योंकि वह पुद्गलरूप है।

२—अहो भगवन् ! क्या भाषा रूपी है या अरूपी है ? हे गौतम ! भाषा (पुद्गलमय होने से) रूपी है, अरूपी नहीं ।

३—अहो भगवन् ! क्या भाषा सचित्त (सजीव) है या अचित्त (अजीव) है ? हे गौतम ! भाषा सचित्त नहीं, अचित्त है ।

४—अहो भगवन् ! क्या भाषा जीव है या अजीव है ? हे गौतम ! भाषा जीव नहीं, अजीव है ।

५—अहो भगवन् ! क्या भाषा जीवों के होती है या अजीवों के होती है ? हे गौतम ! भाषा जीवों के होती है, अजीवों के नहीं होती ।

६- अहो भगवन् ! क्या बोलने से पहले भाषा कही जाती है या बोलते समय भाषा कही जाती है या बोलने के पीछे भाषा कही जाती है ? हे गौतम ! बोलने से पहले भाषा नहीं कही जाती, बोलने से पीछे भी भाषा नहीं कही जाती किन्तु बोलते समय भाषा कही जाती है ।

७—अहो भगवन् ! क्या बोलने से पहले भाषा का भेदन (टुकड़ा) होता है या बोलने से पीछे भाषा का भेदन होता है । बोलते समय भाषा का भेदन होता है ? हे गौतम ! बोलने से पहले भाषा (पुद्गल) का भेदन नहीं होता, बोलने के पीछे भी भेदन नहीं होता किन्तु बोलते समय भाषा का भेदन होता है ।

८—अहो भगवन् ! भाषा कितने प्रकार की है ?

हे गौतम ! भाषा चार प्रकार की है—सत्यभाषा, असत्य-भाषा, सत्यमृषाभाषा (मिश्रभाषा), असत्यामृषाभाषा (सत्य भी नहीं असत्य भी नहीं–व्यवहारभाषा) ।

९—अहो भगवन् ! क्या मन आत्मा है या अन्य है ? हे गौतम ! मन आत्मा नहीं, अन्य है । अजीवों के मन नहीं होता ।

१०—अहो भगवन् ! क्या मन रूपी है या अरूपी है ? हे गौतम ! मन रूपी है, अरूपी नहीं ।

११-अहो भगवन् ! क्या मन सचित्त है या अचित्त है ? हे गौतम ! मन सचित्त नहीं, अचित्त है ।

१२-अहो भगवन् ! मन जीव है या अजीव है ? गौतम ! मन जीव नहीं, अजीव है ।

१३--अहो भगवन् ! मन क्या जीवों के होता है या अजीवों के होता है ? हे गौतम ! मन जीवों के होता है, अजीवों के नहीं ।

१४-अहो भगवन् ! क्या मनन करने से पहले मन होता है या मनन करते समय मन होता है या मनन करने से पीछे मन होता है ? हे गौतम ! मनन करने से पहले मन नहीं होता, मनन करने से पीछे भी मन नहीं होता किन्तु मनन करते समय मन होता है ।

१५—अहो भगवन् ! क्या मनन करने से पहले मन का भेदन (टुकड़ा) होता है या मनन करते समय मन का भेदन होता है या मनन करने से पीछे मन का भेदन

होता है ? हे गौतम ! मनन करने से पहले मन का भेदन नहीं होता मनन करने से पीछे भी मन का भेदन नहीं होता, किंतु मनन करते समय मन का भेदन होता है।

१७—अहो भगवन् ! मन कितने प्रकार का है ? हे गौतम मन चार प्रकार का है—सत्यमन, असत्यमन, सत्यमृषामन, (मिश्रमन), असत्यामृषामन (व्यवहारमन)।

१७—अहो भगवन् ! क्या काया (शरीर) आत्मा है या अन्य है ? हे गौतम ! काया आत्मा भी है और अन्य (आत्मा से भिन्न) भी है❀।

❀ कोई शंका करता है कि—काया आत्मस्वरूप ही है क्योंकि काया द्वारा किये हुए कर्मों का अनुभव आत्मा को होता है। अथवा काया आत्मा से सर्वथा भिन्न है। क्योंकि काया के एक अंश का छेदन होने पर आत्मा का छेदन नहीं होता।

इसका समाधान यह है—काया कथंचित् आत्मस्वरूप है क्योंकि काया का स्पर्श करने पर आत्मा को भी अनुभव होता है। काया कथंचित् आत्मा से भिन्न है क्योंकि काया का विनाश होने पर आत्मा का विनाश नहीं होता। यदि काया को आत्मा से सर्वथा अभिन्न माना जाय तो काया का विनाश होने पर आत्मा का भी विनाश हो जायेगा परन्तु ऐसा नहीं होता है। इसलिए काया आत्मा से कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न है।

१८—अहो भगवन् ! क्या काया रूपी है या अरूपी है ? हे गौतम ! काया रूपी भी है और अरूपी भी है।

१९—अहो भगवन् ! क्या काया सचित्त है या अचित्त है ? हे गौतम ! काया सचित्त भी है और अचित्त भी है।

२०—अहो भगवन् ! क्या काया जीव है या अजीव है ? हे गौतम ! काया जीव भी है और अजीव भी है।

२१-अहो भगवन् ! क्या काया जीवों के होती है और अजीवों के भी होती है।

२२—अहो भगवन् ! क्या जीवों के साथ सम्बन्ध होने से पहले काया होती है या पुद्गल ग्रहण करते समय काया होती है या पुद्गल ग्रहण करने के पीछे काया होती है ? हे गौतम ! जीवों के साथ संबंध होने से पहले (पुद्गल ग्रहण करने से पहले) भी काया होती है, पुद्गल ग्रहण करते समय भी काया होती है और पुद्गल ग्रहण करने के पीछे भी काया होती है।

२३—अहो भगवन् ! क्या जीव के साथ सम्बन्ध होने से पहले (पुद्गल ग्रहण करने से पहले) काया भिदाती है (काया का भेदन होता है) ? या पुद्गल ग्रहण करते समय काया भिदाती है ? या पुद्गल ग्रहण करने के पीछे काया भिदाती है ? हे गौतम ! जीव के साथ संबंध होने से पहले भी काया भिदाती है, पुद्गल ग्रहण करते

समय भी काया भिदाती है और पुद्गल ग्रहण करने के पीछे भी काया भिदाती है।

२४—अहो भगवन् ! काया (योग) कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! काया सात प्रकार की है—औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, कार्मण।

—※—

१०. पांच मरण का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक तेरहवां उद्देशा सातवां)

श्री भगवती सूत्र के १३ वें शतक के ७ वें उद्देशे में पांच मरण का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं।

१—अहो भगवन् ! मरण कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! मरण पांच प्रकार का है—※ १ आवीचिकामरण २ अवधिमरण, ३ आत्यन्तिकमरण, ४ बालमरण, ५ पण्डितमरण।

२—अहो भगवन् ! आवीचिकमरण के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! आवीचिकमरण के ५ भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव।

अहो भगवन् ! द्रव्य-आवीचिक मरण के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! द्रव्य-आवीचिकमरण के चार भेद हैं—

※ १ आवीचिकमरण—आयुकर्म के भोगे हुए पुद्गल प्रतिसमय क्षय होते हैं, उसको आवीचिकमरण कहते हैं। जिस तरह प्रति समय आयु क्षीण हो रही है, सो यह आवीचिकमरण है।

१–नैरयिक द्रव्य–आवीचिकमरण❀२ तिर्यंचयोनिकद्रव्य आवीचिकमरण, ३ मनुष्यद्रव्य-आवीचिकमरण, देवद्रव्य-

२—अवधिमरण (मर्यादा–सहित मरण–नरकादि भव के हेतु भूत वर्तमान आयुष्य कर्म के पुद्‌गलों को भोग कर जीव मरण को प्राप्त करता है और पुनः उन्हीं आयुष्य कर्म के पुद्‌गलों को आगामी भव में ग्रहण करके मरण प्राप्त करेगा उसे अवधिमरण कहते हैं।

३—आत्यन्तिकमरण–एक बार भोग कर छोड़े हुए आयु कर्म के पुद्‌गलों को यह जीव दुबारा न भोगे तो उन पुद्‌गलों की अपेक्षा जीव का आत्यन्तिकमरण कह–लाता है।

४—बालमरण—व्रतरहित (असंयति) प्राणियों की मृत्यु को बालमरण कहते हैं।

५—पंडितमरण— सर्व विरति साधुओं की मृत्यु को पण्डितमरण कहते हैं।

❀ नारक जीव रूप में रहते हुए नैरयिक ने जिन द्रव्यों को नरकायु रूप में ग्रहण किया है और उदय आने पर जो प्रतिसमय मरते हैं अर्थात् जिन्हें जीव छोड़ देता है वह नैरयिकद्रव्यावीचिकमरण है। इसी प्रकार तिर्यंच आदि द्रव्य-आवीचिकमरण भी समझना। इसी प्रकार नरक क्षेत्र में रहते हुए जीव जो नरकायु के द्रव्यों को निरन्तर प्रतिसमय छोड़ता है, उसे नरकक्षेत्र-आवीचिकमरण कहते हैं। इसी प्रकार काल, भव और भाव भी समझना।

आवीचिकमरण। इसी तरह क्षेत्र, काल, भव और भाव के भी चार-चार भेद कह देना।

अहो भगवन् ! अवधिमरण के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! अवधिमरण के पांच भेद हैं-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव। इन पांचों के चार गति की अपेक्षा से चार-चार भेद कह देना।

४—अहो भगवन् ! आत्यन्तिकमरण के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! आत्यन्तिकमरण के पांच भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव। इन पांचों के चार गति की अपेक्षा से चार-चार भेद कह देना।

अहो भगवन् ! बालमरण के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! बाल मरण के १२ भेद हैं—१ वलन्मरण (वलयमरण) तीव्र भूख प्यास से छटपटाते हुए मरना, अथवा संयम से भ्रष्ट प्राणी का मरण वलन्मरण कहलाता है। २ वसट्टमरण (वशार्त्त मरण)-इन्द्रियों के वशीभूत होकर दुखी प्राणी का मरना वसट्टमरण कहलाता है। ३—अंतोसल्लमरण (अन्तःशल्यमरण) इसके दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। शरीर में बाण आदि घुस जाने से और उसे वापिस न निकालने से जो मरण होता है उसे द्रव्य-अंतोसल्लमरण कहते हैं। अतिचार रूप आंतरिक शल्य की शुद्धि किये बिना जो मरण होता है उसे भाव अंतोसल्ल मरण कहते हैं। ४—तद्भवमरण—मनुष्य और तिर्यंच के शरीर को छोड़कर फिर मनुष्य और तिर्यंच के शरीर

को प्राप्त करना ❀ तद्भवमरण कहलाता है। ५ गिरिपतन मरण—पर्वत पर से गिरकर मरना गिरिपतनमरण कहलाता है। ६ तरुपतनमरण—वृक्ष आदि पर चढ़कर गिर कर मरना तरुपतनमरण कहलाता है। ७ जलप्रवेशमरण—पानी में डूब कर मरना जलप्रवेशमरण कहलाता है। ८ ज्वलनप्रवेशमरण—अग्नि में जलकर मरना ज्वलन (अग्नि) प्रवेशमरण कहलाता है। ९ विषभक्षणमरण (विष जहर) खा कर मरना विषभक्षणमरण कहलाता है। १० सत्थोवाडण (शस्त्रावपाटन) मरण—छुरी, तलवार आदि शस्त्र से मरना सत्थोवाडणमरण कहलाता है। ११ वेहाणस (वैहानस) मरण—गले में फांसी लगाकर वृक्ष आदि की डाली पर लटककर मरना वैहानसमरण कहलाता है। १२ गिद्धपिट्ठमरण (गृध पृष्ठमरण)—हाथी, ऊंट आदि के मृतकलेवर में प्रवेश कर गिद्ध आदि पक्षियों द्वारा खाये जाने से मरण होना, गिद्धपिट्ठमरण कहलाता है।

५—अहो भगवन् ! पण्डितमरण से कितने भेद हैं ? हे गौतम ! पण्डितमरण के दो भेद हैं—पादपोपगमन और भत्तपच्चक्खाण (भक्तप्रत्याख्यान)। पादपोपगमन के दो भेद हैं—निहारिम व अनिहारिम। गांव, नगर आदि बस्ती

❀ तद्भवमरण—मनुष्य और तिर्यंच में ही हो सकता है किन्तु देव और नारकी जीवों में नहीं होता क्योंकि मनुष्य मर कर फिर मनुष्य हो सकता है और तिर्यंच मर कर फिर तिर्यंच हो सकता है किन्तु देव मर कर फिर देव नहीं हो सकता और नैरयिक मर कर फिर नैरयिक नहीं हो सकता।

में जो मरण हो उसको निहारिम कहते हैं। पर्वत की गुफा आदि एकान्त स्थान में जो मरण हो उसको अनिहारिम कहते हैं। पादपोपगमन मरण के ये दोनों भेद अप्रतिक्रम (शरीरसंस्कार से रहित या प्रतिक्रमण से रहित) होते हैं। इनमें दूसरों से सेवा नहीं कराई जाती।

भत्तपच्चक्खाण (भक्तप्रत्याख्यान) मरण के दो भेद हैं—निहारिम और अनिहारिम। ये दोनों भेद सप्रतिक्रम (शरीरसंस्कार सहित या प्रतिक्रमण सहित) होते हैं। इनमें दूसरों से सेवा करवाई जा सकती है।

कुल भेद—आवीचिकमरण मरण के २० भेद, अवधिमरण के २० भेद, आत्यन्तिकमरण के २० भेद, वालमरण के १२ भेद, पण्डितमरण के २ भेद। ये कुल मिलाकर २०+२०+२०+१२+२=७४ भेद हुए।



११. विग्रहगति का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवां उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन्! कोई भावितात्मा अनगार पहले देवलोक की स्थितिबन्ध को उलंघ गये और तीसरे देवलोक की स्थितिबन्धयोग्य अध्यवसायों को प्राप्त नहीं हुए। बीच में ही काल कर गये तो वे कहां उत्पन्न होते हैं? हे गौतम! दूसरे देवलोक में उत्पन्न होते है। यदि वे वहां जाकर पूर्व लेश्या को छोड़ते हैं कर्म तो लेश्या—भाव लेश्या से

गिरते हैं ❀। यदि वे वहां जाकर पूर्वलेश्या को नहीं छोड़ते हैं तो उसी लेश्या से रहते हैं। इसी तरह असुर-कुमारों से लेकर वैमानिक तक कह देना चाहिए।

२—अहो भगवन्! नारकी में नैरयिक कैसी शीघ्र गति से उत्पन्न होता है? जैसे कोई तरुण, बलवान्, शिल्पकला में निपुण पुरुष अपने हाथ को संकोचता और पसारता है, मुठ्ठी को बन्द करता है और खोलता है, आंख को बन्द करता है और खोलता है। क्या इतनी देर लगती है? हे गौतम! णो इणट्ठे समट्ठे, नारकी में जीव+एक

❀ देव और नैरयिक (नारकी जीव) भावलेश्या से गिर जाते हैं अर्थात् उनकी भावलेश्या में पलटा होता है। वे द्रव्यलेश्या से नहीं गिरते, क्योंकि इनमें द्रव्यलेश्या अव-स्थित है। उनमें जीवनपर्यन्त द्रव्यलेश्या एक ही रहती है।

+ यहां एक भव से दूसरे भव में जाने को 'गति' कहा हैं नारकी जीव नरकगति में एक समय, दो समय और तीन समय की गति से उत्पन्न होते हैं। उनमें एक समय की ऋजुगति होती है। दो समय की अथवा तीन समय की गति विग्रहगति होती है। इस गति को यहां शीघ्रगति कहा है। हाथ को फैलाने और संकोचने में असंख्याता समय लगते हैं। इसलिए उसको 'शीघ्रगति' नहीं कहा है।

जब जीव समश्रेणी में रहे हुए उत्पत्तिस्थान में जाकर उत्पन्न होता है तब एक समय की ऋजुगति होती

समय, दो समय, तीन समय की विग्रह गति से उत्पन्न होते हैं। इसी तरह वैमानिक तक कह देना चाहिये किन्तु एकेन्द्रिय में ❀ चार समय तक की विग्रह गति कहनी चाहिए।

है। जब जीव विषमश्रेणी में रहे हुए उत्पत्तिस्थान में जाकर उत्पन्न होता है तब दो समय की अथवा तीन समय की विग्रह गति होती है और एकेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट चार समय की विग्रहगति होती है। जब कोई जीव भरत-क्षेत्र की पूर्व दिशा से नरक में पश्चिमदिशा में उत्पन्न होता है, तब पहले समय में नीचे आता है, दूसरे समय में तिर्च्छी उत्पत्तिस्थान में जाकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार दो समय की विग्रहगति होती है। जब कोई जीव भरतक्षेत्र की पूर्व दिशा से नरक में वायव्यकोण (विदिशा) में उत्पन्न होता है, तब एक समय में समश्रेणी द्वारा नीचे जाता है, दूसरे समय में पश्चिमदिशा में जाता है, तीसरे समय में तिर्च्छी वायव्यकोण में उत्पत्तिस्थान में जाकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार जीवों की शीघ्रगति कही गई है।

❀ एकेन्द्रिय जीवों में चार समय की विग्रह गति इस प्रकार होती है—जीव की गति श्रेणी के अनुसार होती है। इसलिए त्रसनाड़ी (त्रसनाल) से वाहर रहा हुआ (स्थावरनाल के कोण में) एकेन्द्रिय जीव जब दूसरे भव में जाता है, तब पहले समय में त्रसनाड़ी से वाहर अधोलोक की विदिशा से दिशा की तरफ जाता है। दूसरे

३—अहो भगवन् ! क्या नैरयिक अनन्तरोपपन्न (जिनको उत्पन्न हुए अभी प्रथम समय ही हुआ है) हैं या परम्परोपपन्न (जिनको उत्पन्न हुए दो तीन आदि समय हो गये हैं) हैं या अनन्तरपरम्परानुपपन्न (जो नरक में उत्पन्न होने के लिए विग्रहगति में चल रहे हैं) हैं ? हे गौतम ! नैरयिक अनन्तरोपपन्न भी हैं, परम्परोपपन्न भी हैं और अनन्तरपरम्परानुपपन्न भी है। इसी तरह वैमानिक तक कह देना चाहिए ।

४—अहो भगवन् ! ❀ अनन्तरोपपन्न नैरयिक क्या

समय में लोक के मध्य भाग में में प्रवेश करता है। तीसरे समय में ऊंचा (ऊर्ध्वलोक में) जाता है। चौथे समय में त्रसनाड़ी से निकलकर दिशा से व्यस्थित उत्पत्तिस्थान में जाता है। यह बात सामान्यरूप से बहुत एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से कही गई है अन्यथा एकेन्द्रिय जीव की पांच समय की विग्रह गति सम्भव है। वह इस प्रकार सम्भावित होती है—१–पहले समय से त्रसनाड़ी से बाहर अधोलोक की विदिशा से दिशा की तरफ जाता है। २–दूसरे समय में लोक के मध्यभाग में प्रवेश करता है। ३–तीसरे समय में ऊर्ध्वलोक में जाता है। ४–चौथे समय में वहां से विदिशा की तरफ जाता है। ५–पांचवें समय में विदिशा में रहे हुए उत्पत्तिस्थान में जाता है। यह पांच समय की विग्रहगति कही गई है।

❀ अनन्तरोपपन्न (जिनको उत्पन्न हुये अभी प्रथम समय ही हुआ है) और अनन्तर-परम्परानुपपन्न (जो जीव

नारकी का आयुष्य बांधते हैं यावत् वैमानिक का आयुष्य बांधते हैं ? हे गौतम ! आयुष्य नहीं बांधते।

५—अहो भगवन् ! परम्परोपपन्न नैरयिक क्या नारकी का आयुष्य बांधते हैं यावत् वैमानिक का आयुष्य बांधते हैं ? हे गौतम ! नारकी और देवता का आयुष्य नहीं बांधते, मनुष्य या तिर्यंच का आयुष्य बांधते हैं।

६—अहो भगवन् ! ❀ अनन्तर–परम्परानुपपन्न नैरयिक क्या नारकी का आयुष्य वान्धते हैं यावत् वैमानिक का आयुष्य बांधते हैं ? हे गौतम ! आयुष्य नहीं बांधते हैं।

जिस तर नारकी का कहा, उसी तरह वैमानिक तक कह देना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य परम्परोपपन्न और तिर्यंच परम्परोपपन्न चारों ही गति का आयुष्य बांधते हैं।

नरक में उत्पन्न होने के लिए विग्रहगति में चल रहे हैं) नैरयिक चारों प्रकार (नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव) के आयुष्य का वन्ध नहीं करते हैं, क्यों उस अवस्था में उस प्रकार के अध्यवसाय नहीं होते, इसलिए सब जीवों के आयुष्य का वन्ध नहीं होता। सामान्यरूप से अपनी आयुष्य का तृतीयादि भाग वाकी रहने पर आयुष्य का वन्ध होता है। इसलिए परम्परोपपन्नक (जिनको उत्पन्न हुए दो तीन आदि समय हो गये हैं) नैरयिक अपनी आयुष्य छह महीने वाकी रहने पर तिर्यंच अथवा मनुष्य की आयुष्य का वन्ध करते हैं।

जिस तरह उपपन्न (उत्पन्न होने) का कहा उसी तरह निर्गत (निकलने) का कह देना चाहिये। चौबीस ही दंडक में इसी तरह कह देना चाहिये।

ये निर्गत जीव कहीं उत्पन्न होते हैं तो वहां सुख से उत्पन्न होते हैं अथवा दुःख से ? यहां दुःखोत्पन्न की अपेक्षा गौतम स्वामी पूछते हैं—हे भगवन् ! नैरयिक जीव अनन्तरखेदोपपन्न होते हैं या परम्परखेदोपपन्न होते हैं या अनन्तर-परम्परखेदानुपपन्न होते हैं ? हे गौतम ! नैरयिक में तीनों भांगे पाये जाते हैं इसी प्रकार चारों दंडक—खेदोपपन्नदंडक, खेदोपपन्न की अपेक्षा से आयुष्यबंध का दंडक, खेदनिर्गतदंडक और खेदनिर्गत की अपेक्षा से आयुष्य-बंध का दंडक कहना चाहिए। आयुष्य का बंध परम्परोपपन्न में करते हैं। अनन्तरोपपन्न और अनन्तरपरम्परानुपपन्न भांगे में आयुष्य का बन्ध नहीं होता।

---

१२. उन्माद का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवां उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! उन्माद कितने प्रकार है ? हे गौतम ! ❀ उन्माद दो प्रकार का है—यक्षावेश—उन्माद और

❀ उन्माद—जिससे स्पष्ट चेतना विवेक ज्ञान नष्ट हो जाय उसको उन्माद कहते हैं।

यक्षावेश उन्माद—शरीर में यक्ष प्रवेश करने से जो उन्माद होता है उसको यक्षावेश उन्माद कहते हैं।

मोहनीय–उन्माद*जो सुख पूर्वक वेदा जा सकता है और सुख पूर्वक छोड़ा जा सकता है वह यक्षावेश–उन्माद है और मोहनीयकर्म से उदय हुवा उन्माद है वह दुःखपूर्वक वेदा जाता है और दुःखपूर्वक ही छोड़ा जाता है।

२—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिकों में कितने प्रकार का उन्माद पाया जाता है ? हे गौतम ! दोनों प्रकार का उन्माद पाया जाता है। २४ ही दण्डक में दोनों प्रकार का उन्माद पाया जाता है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! देवता नैरयिकों के ऊपर अशुभ पुद्‌गल डालते हैं, जिससे नैरयिकों को यक्षावेश–उन्माद की प्राप्ति होती है। इसी तरह औदारिक के १० दंडक कह देना। १३ दण्डक देवता में महिड्‌ढिया (महाऋद्धि वाले) देव अप्पड्ढिया (अल्पऋद्धि वाले) देवों के

---

* मोहनीय–उन्माद–मोहनीयकर्म के उदय से आत्मा को पारमार्थिक सत्, असत् का विवेक नष्ट हो जाता है, उसको मोहनीय–उन्माद कहते हैं। इसके दो भेद हैं— मिथ्यात्वमोहनीय–उन्माद और चारित्र–मोहनीय उन्माद। मिथ्यात्वमोहनीय–उन्माद से जीव अतत्त्व को तत्त्व मानता है और तत्त्व को अतत्त्व मानता है। चारित्रमोहनीय–उन्माद से जीव विषयादि के स्वरूप को जानता हुआ भी अज्ञानी की तरह उनमें प्रवृत्ति करता है। अथवा वेदमोहनीय के उदय से हिताहित का भान भूलकर उन्मत्त बन जाता है।

ऊपर अशुभ पुद्गल डालते हैं, जिससे अप्पड्ढिया देवों को यक्षावेश–उन्माद की प्राप्ति होती है। मोहनीय–उन्माद की प्राप्ति २४ ही दंडक में मोहनीयकर्म के उदय से होती है।



१३. वर्षा और तमस्काय का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवां उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! वृष्टि (वर्षा) किस तरह से होती है ? हे गौतम ! वर्षाकाल में अथवा तीर्थंकर भगवान् के जन्म महोत्सव आदि में शक्रेन्द्र देवेन्द्र देवराजा जब वर्षा करने की इच्छा करते हैं तब आभ्यन्तरपरिषदा के देवों को बुलाते हैं, आभ्यंतर परिषदा वाले देव मध्यम परिषदा के देवों को बुलाते हैं। मध्यम परिषदा वाले देव बाहर की परिषदा वाले देवों को बुलाते हैं। बाहर की परिषदा वाले देव बाहर-बाहर के देवों को बुलाते हैं। बाहर-बाहर के देव आभियोगिकदेवों को बुलाते हैं। आभियोगिकदेव वृष्टिकायिक (वर्षा करने वाले) देवों को बुलाते हैं। फिर वे वृष्टिकायिक देव वर्षा करते हैं।

२—अहो भगवन् ! क्या असुरकुमार वृष्टि करते हैं ? हां, गौतम ! करते हैं। अहो भगवन् ! असुरकुमार देव किस कारण से वृष्टि करते हैं ? हे गौतम ! तीर्थंकर

भगवान् के जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण के महोत्सव के निमित्त वृष्टि करते हैं। इसी तरह १३ दण्डक देवता के कह देना चाहिए।

३—अहो भगवन् ! तमस्काय कैसे होती है ? हे गौतम ! जिस तरह वर्षा का कहा उसी तरह तमस्काय का भी कह देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि शक्रेन्द्र की जगह ईशानेन्द्र कहना चाहिए और आभियोगिकदेव वृष्टिकायिकदेव के बदले तमस्कायिक (तमस्काय-अंधेरा करने वाले) देवों को बुलाते हैं। वे तमस्कायिक-देव तमस्काय करते हैं।

४—अहो भगवन् ! क्या असुरकुमार देव तमस्काय करते हैं ? हां, गौतम ! करते हैं।

अहो भगवन् ! किस कारण से तमस्काय करते हैं? हे गौतम ! रतिक्रीड़ा करने के लिए, शत्रु को विस्मय (मोह) उत्पन्न करने के लिए, द्रव्य को छिपाने के लिए तथा अपने शरीर को छिपाने के लिए तमस्काय करते हैं। इसी तरह १३ दंडक देवता के कह देने चाहिए।



१४. देवता के शास्त्र का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवां उद्देशा तीसरा)

१—अहो भगवन् ! महाकाय (बड़े परिवार वाला) महाशरीर वाला देवता क्या भावितात्मा अनगार के बीचों-बीच होकर जाता है ? हे गौतम ! कोई जाता है, कोई नहीं जाता—अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! देव दो प्रकार के हैं—मायीमिथ्यादृष्टि, अमायी-समदृष्टि । मायीमिथ्यादृष्टि देव भावितात्मा अनगार को देख कर वन्दना नहीं करता, नमस्कार नहीं करता, सत्कार नहीं करता यावत् पर्युपासना नहीं करता । इस कारण से भावितात्मा अनगार के बीचोंबीच होकर जाता है । अमा-यीसमदृष्टि देव भावितात्मा अनगार को देखकर वन्दना करता है, नमस्कार करता है, सत्कार करता है, सन्मान करता है, यावत् पर्युपासना करता है । इस कारण भावितात्मा अनगार के बीचोंबीच होकर नहीं जाता है । इसी तरह १३ दण्डक❀देवता के कह देना चाहिए ।

❀ बीचोंबीच होकर जाने का कार्य सिर्फ देवों में ही हो सकता है । नरक और पृथ्वीकायिक आदि जीवों में नहीं हो सकता है । इसलिये यहां सिर्फ देवता के दण्डक ही कहे गये हैं ।

२—अहो भगवन् ! क्या नारकी के नैरयिकों में*
१ सत्कार, २ सन्मान, ३ कृतिकर्म, ४ अभ्युत्थान, ५ अंजलिकरण, ६ आसनाभिग्रह, ७ आसनानुप्रदान, ८ सन्मुख जाना, ९ सेवा करना, १० पहुंचाने जाना, यह विनय है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (नैरयिकों में में सत्कारादि विनय नहीं है।) इसी तरह पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रियों में कह देना चाहिए। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में आठ

---

* १—सत्कार—विनय करने योग्य व्यक्ति का विनय करना।

२—सम्मान—यथायोग्य सेवा करना।

३—कृतिकर्म—वन्दना करना।

४—अभ्युत्थान—आदर करने योग्य व्यक्ति को देखकर आसन छोड़कर खड़ा होना।

५—अंजलिकरण—दोनों हाथ जोड़ना।

६—आसनाभिग्रह—बैठने के लिये आसन का आमन्त्रण देना।

७—आसनानुप्रदान—आसन लाकर बिछाना।

८—आदर करने योग्य पुरुष को आते देखकर उनके सामने जाना।

९—बैठे हुये हों तो उनकी सेवा करना।

१०—उठ कर जाते हों तो कुछ दूर तक पहुंचाने के लिये जाना।

प्रकार का विनय (आसनाभिग्रह और आसनानुप्रदान, इन दो को छोड़ कर) होता है। मनुष्य और १३ दण्डक देवता में दस ही प्रकार का विनय होता है।

३—अहो भगवन् ! क्या अल्पऋद्धि वाला देव महाऋद्धि वाले देव के बीचोंबीच होकर जाता है ? हे गौतम! नहीं जाता।

४—अहो भगवन् ! क्या समान ऋद्धि वाला देव समान ऋद्धि वाले देव के बीचोंबीच होकर जाता है ? हे गौतम ! जाने की शक्ति तो नहीं है, परन्तु सामने वाला देव प्रमाद में हो तो चला जाता है।

५—अहो भगवन् ! क्या शस्त्र का प्रहार करके जाता है या प्रहार किये बिना ही जाता है ? हे गौतम ! शस्त्र का प्रहार करके जाता है किन्तु शस्त्र का प्रहार किये बिना नहीं जाता।

६—अहो भगवन् ! क्या पहले शस्त्र का प्रहार करता है, पीछे जाता है या पहले जाता है, पीछे प्रहार करता है ? हे गौतम ! पहले शस्त्र का प्रहार करता है, पीछे जाता है किन्तु पहले जाता है और पीछे प्रहार करता है, यह बात नहीं है।

७—अहो भगवन् ! क्या महाऋद्धि वाला देव अल्पऋद्धि वाले देव के बीचोवीच होकर जाता है ? हां गौतम! जाता है।

८—अहो भगवन् ! क्या शस्त्र का प्रहार करके जाता है या प्रहार किये विना ही जाता है ? हे गौतम ! प्रहार करके भी जा सकता है और प्रहार किये विना भी जा सकता है ।

९—अहो भगवन् ! क्या पहले शस्त्र का प्रहार करता है, पीछे जाता है या पहले जाता है, पीछे प्रहार करता है ? हे गौतम ! महाऋद्धि वाले देवता की इच्छा हो तो पहले प्रहार करता है, पीछे जाता है अथवा पहले जाता है, पीछे प्रहार करता है ।

इसी तरह १३ दंडक देवता के कह देनें चाहिए । समुच्चय देवता और १३ दण्डक देवता, इन १४ में तीन-तीन*आलापक कहने से ४२ आलापक हुए । ये ४२ आलापक देवता का देवता के साथ कहे गये । इसी तरह ४२ आलापक देवता का देवी के साथ, ४२ आलापक देवी का देवता के साथ और ४२ आलापक देवी का देवी के साथ कह देना चाहिए । कुल मिला कर १८२ (१४+४२+४२+४२+ ४२=१८२) आलापक हुए ।

---

*१–अल्पऋद्धिवाला महाऋद्धिवाला देव,

२–समानऋद्धिवाला, समानऋद्धिवाला देव,

३–महाऋद्धि वाला अल्पऋद्धिवाला देव, ये ३ आलापक हुये ।

१०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पुद्गलपरिणाम का अनुभव करते हैं ? हे गौतम ! अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ पुद्गल परिणाम का अनुभव करते हैं । इसी तरह सातवीं नरक तक कह देना चाहिए ।

अहो भगवन् ! नैरयिक कितने प्रकार की वेदना वेदते हैं ? हे गौतम ! ❀दस प्रकार की अशुभ वेदना वेदते हैं । इसका विस्तार श्री जीवाभिगमसूत्र के नरक-उद्देशक में कहा, उस तरह जान लेना चाहिए । यावत्, अहो भगवन् ! सातवीं नरक के नैरयिक किस तरह की परिग्रहसंज्ञा के परिणाम का अनुभव करते हैं ? हे गौतम! अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ परिग्रहसंज्ञा के परिणाम का अनुभव करते हैं ।



❀ नैरयिक जीवों की दस प्रकार की वेदना—(१) शीत—नरक में अत्यन्त शीर (ठण्ड) होती है । (२) उष्ण-गर्मी, (३) क्षुधा—भूख । (४) पिपासा—प्यास । (५) कण्डू—खुजली । (६) परतंत्रता—परवशता । (७) भय—डर । (८) शोक—चिंता अथवा दीनता । (९) जरा—बुढापा । (१०) व्याधि—रोग ।

उपरोक्त दस वेदनाएं नरकों के अन्दर अत्यन्त अर्थात् उत्कृष्ट रूप से होती है ।

१५. शक्रेन्द्र का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सोलहवां, उद्देशा दूसरा)

एक समय शक्र देवेन्द्र देवराजा अपनी ऋद्धि, परिवार सहित श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये। वन्दना–नमस्कार करके शक्रेन्द्रजी ने पूछा—

१—अहो भगवन् ! अवग्रह (स्वामीपना) कितने प्रकार का है ? हे शक्र ! पांच प्रकार का है—१ देवेन्द्र का अवग्रह अर्थात् दक्षिण लोकार्द्ध पर शक्रेन्द्रजी का अवग्रह है और उत्तर लोकार्द्ध पर ईशानेन्द्रजी का अवग्रह है। २ राजा का अवग्रह, जैसे भरतादि के छह खण्डों पर चक्रवर्ती का अवग्रह (स्वामीपना) होता है। ३ गृहपति का अवग्रह, जैसे मांडलिक राजा का अपने आधीन देश पर अवग्रह होता है। ४ सागारिक अवग्रह, जैसे गृहस्थ का अपने घर पर अवग्रह होता है। ५ साधर्मिक अवग्रह। समान धर्म वाले साधु परस्पर साधर्मिक कहलाते हैं, उनका❀ पांच कोस तक क्षेत्र में साधर्मिक अवग्रह होता है।

इसके बाद शक्रेन्द्रजी ने कहा कि हे भगवन् ! जो

❀२॥ कोस दक्षिण की तरफ, २॥ कोस उत्तर की तरफ इस तरह ५ कोस अथवा २॥ कोस पूर्व की तरफ, २॥ कोस पश्चिम की तरफ इस तरह ५ कोस।

श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते हैं, उन्हें मैं आज से अवग्रह की आज्ञा देता हूं।

ऐसा कह कर शक्रेन्द्रजी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके अपने स्थान वापिस चले गये।

इसके बाद गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की वन्दना नमस्कार करके पूछा—अहो भगवन्! शक्रेन्द्रजी ने जो यह कहा कि मैं अवग्रह की आज्ञा देता हूं सो क्या यह सत्य है? हां, गौतम! सत्य है।

२—अहो भगवन्! क्या शक्रेन्द्रजी सत्यवादी हैं या मिथ्यावादी हैं? हे गौतम! शक्रेन्द्रजी सत्यवादी हैं, मिथ्यावादी नहीं हैं।

३—अहो भगवन्! क्या शक्रेन्द्रजी सत्यभाषा बोलते है, असत्यभाषा बोलते हैं, सत्यमृषा (मिश्र) भाषा बोलते है या असत्यामृषाभाषा (व्यवहारभाषा) बोलते हैं? हे गौतम! सत्यभाषा बोलते हैं यावत् असत्यामृषाभाषा बोलते हैं याने चारों ही भाषा बोलते हैं।

४—अहो भगवन्! क्या शक्रेन्द्रजी सावद्य (पाप युक्त) भाषा बोलते हैं या निरवद्य (पापरहित) भाषा बोलते हैं? हे गौतम! शक्रेन्द्रजी सावद्य और निरवद्य दोनों भाषा बोलते हैं। अहो भगवन्! इसका क्या कारण? हे गौतम! जब शक्रेन्द्रजी हाथ वस्त्र आदि से मुख को ढक कर भाषा बोलते हैं तो वह निरवद्य भाषा है क्योंकि

मुख को हाथ आदि से ढककर बोलने से वायुकाय के जीवों की रक्षा होती है। जब शक्रेन्द्रजी खुले मुख (हाथ आदि से मुख को ढके बिना) भाषा बोलते हैं तो वह सावद्य भाषा है, क्योंकि इससे वायुकाय के जीवों की हिंसा होती है।

५ - अहो भगवन् ! क्या शक्रेन्द्रजी भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ? सम्यक्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि हैं ? परित्तसंसारी हैं या अनन्तसंसारी हैं ? सुलभबोधि हैं या दुर्लभबोधि हैं ? आराधक हैं या विराधक हैं ? चरम हैं अचरम हैं ? हे गौतम ! भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नहीं। सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं। परित्तसंसारी हैं, अनन्तसंसारी नहीं। सुलभबोधि हैं, दुर्लभबोधि नहीं। आराधक हैं, विराधक नहीं। चरम हैं, अचरम नहीं। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! शक्रेन्द्रजी बहुत साधु, साध्वी श्रावक, श्राविका के हित, सुख, पथ्य, कल्याण के चाहने वाले हैं। इसलिए शक्रेन्द्रजी भवसिद्धिक हैं यावत् चरम हैं, अचरम नहीं।



१६. स्वप्नों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सोलहवां, उद्देशा छठा)

१—अहो भगवन् ! स्वप्न कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! स्वप्न पांच प्रकार के हैं—१ यथातथ्यस्वप्न—जैसा स्वप्न देखे वैसा ही फल मिले। यह स्वप्न सत्य

और शुभफल का दाता होता है। २ प्रतान (पयाण) स्वप्न–विस्तार वाला स्वप्न। यह यथातथ्य भी होता है और अयथातथ्य (मिथ्या) भी होता है। ३ चिन्तास्वप्न–जागृत अवस्था में जिन पदार्थों का विचार किया है उनको स्वप्न में देखे। ४ तव्विवरीए (तद्विपरीत) स्वप्न-स्वप्न में जिन पदार्थों को देखा है, जागृत–अवस्था में उनसे विपरीत पदार्थों की प्राप्ति होवे। यह स्वप्न विपरीत फल का दाता होता है। ५ अव्यक्तस्वप्न-स्वप्न में अस्पष्ट अर्थ को देखना, आलजंजाल देखना।

२—अहो भगवन्! क्या स्वप्न सोते हुए को आता है, जागते हुए को आता है या सोते-जागते को आता है? हे गौतम! सोते हुए को स्वप्न नहीं आता, जागते हुए को स्वप्न नहीं आता, किंतु सोते-जागते को स्वप्न आता है। स्वप्नावस्था में इन्द्रियां सोई हुई होती हैं और मन जागता रहता है। उस समय नींद गहरी न होने से मन घूमता रहता है।

३—अहो भगवन्! क्या जीव*सोते हैं, जागते हैं

---

*सोना और जागना द्रव्य और भाव की अपेक्षा दो प्रकार का कहा गया है। नींद लेना द्रव्य से सोना है और विरति (त्याग पच्चक्खाण) रहितपना भाव से सोना है। स्वप्न सम्बन्धी प्रश्न द्रव्य निद्रा की अपेक्षा से किया गया है। अब यह प्रश्न विरति की अपेक्षा से है। जो जीव सर्वविरतिपणा से रहित हैं, वे भाव से सोते हुए हैं। जो जीव सर्व विरति वाले हैं वे भाव से जागते हैं और जो जीव देशविरति वाले हैं वे सोते जागते हैं।

या सोते-जागते हैं ? हे गौतम ! जीव सोते भी हैं, जागते भी हैं और सोते जागते भी हैं ।

४—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिक क्या सोते हैं या जागते हैं या सोते-जागते हैं ? हे गौतम ! नारकी के नैरयिक सोते हैं किन्तु जागते नहीं, सोते-जागते नहीं । इसी तरह २१ दण्डक कह देना । तिर्यञ्चपंचेंद्रिय में भांगा होते हैं २, सोते, सोते-जागते । मनुष्य में भांगे होते हैं तीनों ही (सोते, जागते, सोते-जागते) ।

५—अहो भगवन् ! क्या स्वप्न संवुडा (संवृत) को आता है या असंवुडा को आता है या संवुडा–असंवुडा को आता है ? हे गौतम ! स्वप्न संवुडा को भी आता है, असंवुडा को भी आता है और संवुडा-असंवुडा को भी आता है ।

६—अहो भगवन् ! स्वप्न संवुडा को, असंवुडा को और संवुडा-असंवुडा को आता है तो क्या यथातथ्यस्वप्न आता है या अयथातथ्यस्वप्न आता है ? हे गौतम ! संवुडा को स्वप्न आता है तो यथातथ्य आता है और असंवुडा तथा संवुडा-असंवुडा को स्वप्न आता है तो दोनों ही तरह का आता है । यथातथ्य भी आता है और अयथातथ्य भी आता है ।

७—अहो भगवन् ! क्या जीव संवुडा है या असंवुडा है या संवुडा-असंवुडा है ? हे गौतम ! जीव संवुडा भी है, असंवुडा भी है और संवुडा-असंवुडा भी है । मनुष्य में में भांगा मिलते हैं तीनों ही (संवुडा, असंवुडा संवुडा–

असंवुडा) । तिर्यञ्च में पंचेन्द्रिय के भांगा मिलते हैं दो (असंवुडा, संवुडा-असंवुडा) । शेष २२ दण्डक में भांगा मिलता है १ (असंवुडा) ।

८—अहो भगवन् ! स्वप्न कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! स्वप्न ७२ प्रकार के हैं । इनमें ४२ सामान्य स्वप्न हैं, जो सामान्य फल के देने वाले हैं और ३० महास्वप्न हैं, जो महाफल के देने वाले हैं ।

जब तीर्थङ्कर महाराज का जीव गर्भ में आता है तब तीर्थंकर महाराज की माता इन ३० महास्वप्नों में से ये १४ महास्वप्न देख कर जागृत होती है १ गज-हाथी, २-वृषभ-बैल, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी-देवता, ५ फूलों की माला, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ महेन्द्रध्वजा, ९ कुम्भ-कलश, १० पद्म-सरोवर, ११ क्षीर-समुद्र, १२❀ भवन या विमान, १३ रत्न-राशि, १४ अग्निशिखा ।

तीर्थंकर भगवान् की माता इन चौदह स्वप्नों को देखती है । इनका फल यह है—१ पहले स्वप्न में गज़ (हाथी) को अपने मुख में प्रवेश करता हुआ देखती है । इसका फल यह है कि जिस तरह हाथी संग्राम में शत्रुसेना

❀ जब तीर्थंकर महाराज का जीव अथवा चक्रवर्ती का जीव नरक से निकल कर आता है तो उनकी माता 'भवन' देखती है और जब देवलोक से आता है तो विमान देखती है ।

को नष्ट करता है, उसी तरह तीर्थंकर भगवान् कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट करते हैं।

२—दूसरे स्वप्न में वृषभ (बैल) को अपने मुख में प्रवेश करता हुआ देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार बैल भार वहन करता है उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् संयम रूपी भार वहन करते हैं।

३—तीसरे स्वप्न में सिंह को मुख में प्रवेश करता हुआ देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार सिंह से डरकर हाथी आदि प्राणी भाग जाते हैं, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् से पाखण्डी भाग जाते हैं।

४—चौथे स्वप्न से लक्ष्मी को अपने घर गीत गाती हुई देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी सहित होते हैं।

५—पांचवें स्वप्न में फूलों को माला देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार फूलों की माला की सुगन्ध दसों दिशाओं में फैलती है, उसी तरह तीर्थंकर भगवान् का यश दसों दिशाओं में फैलता है।

६—छठे स्वप्न में चन्द्रमा को मुख में प्रवेश करता हुआ देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार चन्द्रमा आंखों को आनन्द उपजाने वाला होता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् भव्य जीवों को आनन्द उपजाने वाले होते हैं।

७—सातवें स्वप्न में सूर्य को मुख में प्रवेश करता

हुआ देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से दीप्तिमान् होता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् अपने तपतेज से दीप्तिमान् होते हैं।

८—आठवें स्वप्न में चिन्ह सहित महेन्द्रध्वजा देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् के ऊपर तीन छत्र होते हैं।

९—नवमें स्वप्न में कुम्भ-कलश पूर्ण भरा हुआ देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् गुणों से परिपूर्ण होते हैं।

१०—दसवें स्वप्न में पद्मसरोवर देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार पद्मसरोवर को पक्षी आदि सेवते हैं, उसी प्रकार देवता आदि तीर्थंकर भगवान् की सेवा करते हैं।

११—ग्यारहवें स्वप्न में क्षीरसमुद्र को देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार समुद्र गम्भीर होता है उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् गम्भीर होते हैं।

१२—बारहवें स्वप्न में भवन या विमान को अपने चारों तरफ प्रदक्षिणा देता हुआ देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् बहुत से देवी-देवताओं के पूजनीय होते हैं।

१३—तेरहवें स्वप्न में रत्नों की राशि देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त होते हैं।

१४—चौदहवें स्वप्न में अग्निशिखा देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार अग्नि तेज सहित होती है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् तप-तेज सहित होते हैं।

जब चक्रवर्ती का जीव गर्भ में आता है, तब चक्रवर्ती की माता भी इन १४ महास्वप्नों को देखती है। किन्तु कुछ अस्पष्ट देखती है।

जब वासुदेव का जीव गर्भ में आता है, तब वासुदेव की माता इन १४ महास्वप्नों में से ७ स्वप्न देखती है। जब बलदेव का जीव गर्भ में आता है तब बलदेव की माता इन १४ महास्वप्नों में से ४ स्वप्न देखती है। जब मांडलिक राजा का जीव गर्भ में आता है तब मांडलिक राजा की माता इन १४ महास्वप्नों में से कोई एक स्वप्न देखती है। इसी तरह भावितात्मा अनगार की माता भी इन १४ महास्वप्नों में से कोई एक स्वप्न देखती है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था की*

---

*श्री भगवतीसूत्र के मूलपाठ में यह शब्द है—'अन्तिम राइयंसि'। इस शब्द का अर्थ किन्हीं प्रतियों में इस प्रकार किया है कि छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रात्रि में ये स्वप्न देखे थे अर्थात् जिस रात्रि में ये स्वप्न देखे थे उसके बाद उसी दिन भगवान् महावीर स्वामी को केवलज्ञान हो गया था। किन्हीं प्रतियों में यह अर्थ किया है कि—'अन्तिम राइयंसि' अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग में यानी

अन्तिम रात्रि के पिछले पहर में ये दस स्वप्न देखकर जागृत हुए—

१—पहले स्वप्न में भगवान् ने देखा कि एक भयङ्कर अति विशाल शरीर वाले और तेजस्वी रूप वाले तथा ताड़ वृक्ष के समान लम्बे पिशाच को पराजित किया। इसका यह फल हुआ कि भगवान् महावीर स्वामी ने मोहनीयकर्म को समूल नष्ट किया।

२—दूसरे स्वप्न में सफेद पंखवाले पुंस्कोकिल (पुरुष जाति के कोयल) को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् महावीर स्वामी ने शीघ्र ही शुक्लध्यान को प्राप्त किया।

३—तीसरे स्वप्न में भगवान् ने विचित्र रंगों के पंख वाली कोयल को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् ने विचित्र (विविध विचार युक्त), स्वसिद्धांत को बतलाने वाली द्वादशांगी वाणी प्ररूपी।

४—चौथे स्वप्न में सर्वरत्नमय+माला युगल (दो

पिछले पहर में। यहां पर किसी रात्रि विशेष का निर्देश नहीं किया गया है। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि स्वप्न देखने के कितने समय वाद भगवान् को केवलज्ञान हुआ था। (तत्त्व केवलीगम्य)

+दोनों मालाएं एक समान यानी छोटी बड़ी नहीं देखने का यह कारण है कि साधु और श्रावक दोनों का सम्यक्त्व रत्न एक माफिक है।

मालाओं) को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् महावीर स्वामी ने केवलज्ञानी होकर आगारधर्म (श्रावक-धर्म) और अनगारधर्म (साधुधर्म), यह दो प्रकार का धर्म फरमाया।

५—पांचवें स्वप्न में भगवान् ने सफेद गायों के एक विशाल झुण्ड को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् ने केवलज्ञानी होकर साधु-साध्वी–श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की।

६—छठे स्वप्न में भगवान् ने चारों तरफ से खिले हुए फूलों वाले एक विशाल पद्मसरोवर को देखा। इसका फल यह हुआ कि भगवान् ने वाणव्यन्तरभ, भवनपति ज्योतिषी, वैमानिक, इन चार प्रकार के देवों को प्रतिबोध दिया।

७—सातवें स्वप्न में भगवान् ने अगाध समुद्र को अपनी भुजाओं से तैर कर पार पहुंचे देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् अनादि–अनन्त संसारसमुद्र को पार कर मोक्ष को प्राप्त हुए।

८—आठवें स्वप्न में अति तेज युक्त सूर्य को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् को अनन्त अनुत्तर (प्रधान) निरावरण (आवरणरहित) समग्र और प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति हुई।

९—नवमें स्वप्न में भगवान् ने मानुषोत्तरपर्वत को नील वैडूर्य्यमणि के समान अपनी आंतों से चारों तरफ से

आवेष्टित-परिवेष्टित (घिरा हुआ) देखा। इसका फल यह हुआ कि तीनों लोकों में भगवान् की यश:कीर्ति हुई।

१०—दसवें स्वप्न में भगवान् ने अपने आपको मेरु-पर्वत की चूलिका पर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् महावीर स्वामी ने केवल-ज्ञानी होकर बारह प्रकार की परिषदा में बैठकर धर्मोदेश फरमाया।



१७. चौदह स्वप्नों का फल

(भगवतीसूत्र, शतक सोलहवां, उद्देशा छठा)

१—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में हाथी, घोड़े यावत् बैल आदि की पंक्ति को देखे, उसके ऊपर चढ़े या अपने आपको उस पर चढ़ा हुआ माने, ऐसा देख-कर तुरन्त जागृत होवे तो ऐसा समझना चाहिए कि वह व्यक्ति उसी भव में मोक्ष जायगा यावत् सर्व दु:खों का अन्त करेगा।

२—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक रस्सी को, जो समुद्र के पूर्व—पश्चिम तक लम्बी हो, अपने हाथों से समेटता हुआ (इकट्ठी करता हुआ) देखे तो समझना चाहिए कि वह व्यक्ति उसी भव में मोक्ष जायगा।

३—किसी स्त्री या पुरुष को ऐसा स्वप्न आवे कि लोकांत तक पूर्व—पश्चिम लम्बी रस्सी को उसने काट

डाला है तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

४—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में ऐसा देखे कि पांच रंगों वाले उलझे हुए सूत को उसने सुलझा दिया है तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जाएगा।

५—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में लोहा, ताम्बा, कथीर और सीसे की राशि (ढेर) को देखे और वह उस ढेर के ऊपर चढ़ जाय तो समझना चाहिए कि वह दूसरे भव में मोक्ष जायगा।

६—कोई स्त्री या पुरुष सोना, चांदी, रत्न और वज्र (हीरों) की राशि को देखे और वह उस ढेर के ऊपर चढ जाय तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

७—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न से वहुत बड़े घास के ढेर को या कचरे के ढेर को विखेर कर फेंक दे, ऐसा देखे तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

८—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में शरस्तम्भ, वीरण-स्तम्भ, वंशीमूलस्तम्भ या वल्लिमूलस्तम्भ को देखे और उनको जड़ से उखाड़ कर फेंक देवे तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

९—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में दूध के घड़े, दही के घड़े, घी के घड़े तथा मधु के घड़े को देखे और उन्हें

उठा ले तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

१०—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में मदिरा के घड़े सौवीर (मदिरा विशेष) के घड़े, तेल के घड़े और वसा (चर्वी) के घड़े देखे और उन्हें फोड़ डाले तो समझना चाहिए कि वह दूसरे भव में मोक्ष जायगा।

११—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में चारों तरफ से फूलों से सुशोभित पद्मसरोवर को देखे और उसमें प्रवेश करे तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

१२—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में अनेक तरंगों से युक्त एक बड़े समुद्र को देखे और उसे तैर कर उसके पार पहुंच जाय तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

१३—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में श्रेष्ठ रत्नों से बने हुए भवन को देखे और उसमें प्रवेश करे तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

१४—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न में श्रेष्ठ रत्नों से बने हुए विमान को देखे और उसके ऊपर चढ़ जाय तो समझना चाहिए कि वह उसी भव में मोक्ष जायगा।

---

१८. छियानवै बोल का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सत्रहवां, उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! क्या संयत, विरत (प्राणातिपात आदि से निवृत्त) और जिसने पापकर्म का पच्चक्खाण कर दिया है, ऐसा जीव धर्म (चारित्रधर्म) में स्थित है और असंयत, अविरत एवं पापकर्म का पच्चक्खाण न करने वाला जीव अधर्म (अविरति) में स्थित है तथा संयतासंयत जीव धर्माधर्म (देशविरति) में स्थित है ? हां गौतम ! संयत, विरत जीव धर्म में, असंयत अविरत जीव अधर्म में और संयतासंयत जीव धर्माधर्म में स्थित है। अहो भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से फरमाते हैं ? हे गौतम ! संयत, विरत और जिसने पाप कर्म का पच्चक्खाण कर दिया है, ऐसा जीव धर्म में स्थित होता है अर्थात् वह धर्म को स्वीकार कर प्रवृत्ति करता है इसलिए वह धर्म में स्थित है। असंयत अविरत और पापकर्म का पच्चक्खाण न करने वाला जीव अधर्म को आश्रय (स्वीकार) कर प्रवृत्ति करता है। इसलिए वह अधर्म में स्थित होता है। संयतासंयत जीव धर्माधर्म (देशविरति) का आश्रय कर प्रवृत्ति करता है, इसलिए वह धर्माधर्म में स्थित होता है।

२—अहो भगवन् ! क्या कोई जीव धर्म में, अधर्म में और धर्माधर्म में बैठ सकता है यावत् सो सकता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे—कोई भी जीव धर्म में, अधर्म में और धर्माधर्म में बैठने यावत् सोने में समर्थ नहीं है।

३—समुच्चय जीव और मनुष्य में भांगा मिलते हैं ३–धर्म, अधर्म और धर्माधर्म। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में भांगा मिलते हैं २–अधर्म और धर्माधर्म। बाकी २२ दण्डक में भांगा मिलता है १–अधर्म।

४—अहो भगवन्! अन्यतीर्थिक इस तरह कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि श्रमण पंडित हैं, श्रमणोपासक बालपंडित हैं और जिस जीव के एक भी जीव के वध को अविरति है वह 'एकान्त बाल' है। अहो भगवन्! क्या अन्यतीर्थियों का यह कहना सत्य है? हे गौतम! अन्यतीर्थियों का यह कहना मिथ्या है। मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि श्रमण 'पण्डित' हैं, श्रमणोपासक 'बालपण्डित' है और जिस जीव ने एक भी जीव के वध की विरति की है, वह 'एकान्तबाल' नहीं किन्तु 'बालपण्डित' है❀।

५—समुच्चय जीव और मनुष्य में भांगा मिलते हैं ३–बाल, पंडित, बालपण्डित। तिर्यंचपंचेन्द्रिय में भांगा मिलते हैं २–बाल, बालपण्डित। बाकी २२ दण्डक में भांगा मिलता है १–बाल।

❀ जिस जीव ने एक जीव के वध का भी त्याग किया हैं वह 'एकान्तबाल' नहीं कहलाता, क्योंकि उसमें 'देशविरति' है। इसलिए वह 'एकान्तबाल' नहीं किन्तु 'बालपण्डित' कहलाता है।

हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि×प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य इन अठारह पापस्थानों में प्रवृत्ति करता हुआ जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। इसी तरह अठारह पाप से निवृत्ति करता हुआ जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। इसी प्रकार❀ ४ बुद्धि, ४ मतिज्ञान के भेद, ५

×'प्राणातिपात आदि में प्रवर्तमान जीव अर्थात् प्रकृति और जीवात्मा (पुरुष) 'ये दोनों परस्पर भिन्न हैं' यह सांख्यदर्शन का मत है। सांख्य प्रकृति को कर्त्ता और पुरुष को अकर्त्ता और भोक्ता मानते हैं।

उपनिषद जीव (अन्तःकरणविशिष्ट चैतन्य) को कर्त्ता और जीवात्मा अर्थात् ब्रह्म को अकर्त्ता मानते हैं। उनके मतानुसार जीव और ब्रह्म का औपधिक भेद है।

यहां पर ये दोनों मत अन्यतीर्थिकरूप से ग्रहण किये गये हैं।

❀ बुद्धि चार—उत्पातिया (औत्पातिकी), विणीया (वैनयिकी), कम्मिया (कार्मिकी), परिणामिया (पारिणामिकी)।

मतिज्ञान के ४ भेद—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा।

उत्थानादि ५—उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकारपराक्रम।

गति ४—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति।

कर्म ८—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय।

उत्थानादि, ४ गति, ८ कर्म, ६ लेश्या, ३ दृष्टि, १२ उपयोग, ४ संज्ञा, ५ शरीर, ३ योग, २ उपयोग, इन ६६ बोल में प्रवृत्ति करता हुआ जीव अन्य है और उसका जीवात्मा अन्य है। अहो भगवन् ! क्या अन्यतीर्थियों का यह कहना सत्य है? हे गौतम ! अन्यतीर्थियों का यह कहना मिथ्या है। मैं इस तरह कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि प्राणातिपातादि अठारह पापों में प्रवृत्ति करता हुआ तथा १८ पापों से निवृत्ति करता हुआ जीव तथा बुद्धि आदि उपर्युक्त ६० बोलों में (१८+१८+६०=९६ बोलों में) प्रवृत्ति करता हुआ जीव भी वही है और जीवात्मा भी वही है।

८—अहो भगवन् ! क्या कोई महा ऋद्धि यावत् महा सुख वाला देव पहले रूपी होकर (मूर्तस्वरूप धारण करके) पीछे अरूपी रूप (अमूर्तरूप) वैक्रिय करने में समर्थ

लेश्या ६—कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल।
दृष्टि ३—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि।
उपयोग १२—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान।
संज्ञा ४—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा।
शरीर ५—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण।
योग ३—मनयोग, वचनयोग, काययोग।
उपयोग २—साकारोपयोग, अनाकारोपयोग।

है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! जो जीव रूप, कर्म, राग, वेद, मोह, लेश्या, शरीरवाला है, वही वर्णादि २० वोल (५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श=२०) धारण करता है ।

९—अहो भगवन् ! क्या वही जीव पहले अरूपी होकर पीछे रूपी आकार वाला वैक्रिय कर सकता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! उस जीव के रूप नहीं है, कर्म नहीं है, राग नहीं है, वेद नहीं है, मोह नहीं है, लेश्या नहीं है, जिसने शरीर छोड़ दिया है उसके वर्णादि २० वोल भी नहीं हैं । वह जीव वैक्रिय नहीं कर सकता है ।

—❀—

१९. अट्ठाईस बोलों की योगों की अल्पा बहुत्व

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवां, उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन् ! संसारी जीव कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! संसारी जीव १४ प्रकार के हैं—१ अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ३ अपर्याप्त वादर एकेन्द्रिय, ४ पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय, ५ अपर्याप्त वेइन्द्रिय, ६ पर्याप्त द्वीन्द्रिय, ७ अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, ८ पर्याप्त त्रीन्द्रिय, ९ अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, १० पर्याप्त चतुरिन्द्रिय ११ अपर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, १२ पर्याप्त असंज्ञी पञ्चे-

न्द्रिय, १३ अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, १४ पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय ।

२—अहो भगवन् ! इन चौदह प्रकार के जीवों में जघन्य उत्कृष्ट योग की अपेक्षा से कौन किससे कम, ज्यादा (अल्पबहुत्व) है ?

१—हे गौतम! ❀सबसे थोड़ा अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग ।

२—उससे अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा ।

❀आत्म प्रदेशों के परिस्पन्दन (कम्पन) को योग कहते हैं । वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम की विचित्रता से योग अनेक प्रकार का होता है । किसी एक जीव में दूसरे जीव की अपेक्षा से अल्प योग होता है, और किसी दूसरे जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट योग होता है । जीव के चौदह भेदों की अपेक्षा से प्रत्येक में जघन्य योग और उत्कृष्ट योग की गिनती करने से योग के २८ भेद होते हैं ।

सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रिय का जघन्य योग सबसे अल्प होता है, क्योंकि उसका शरीर सूक्ष्म होने से और अपर्याप्त होने से अपूर्ण है, इसलिये उसका योग सबसे अल्प है । उसके यह अल्पयोग कार्मणशरीर के द्वारा औदारिक पुद्-गलों के ग्रहण करने के प्रथम समय में होता है । इसके बाद समय-समय उसके योग की वृद्धि होती है, जो कि उत्कृष्ट योग तक बढ़ती जाती है ।

३—उससे अपर्याप्त द्वीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा।

४—उससे अपर्याप्त त्रीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा।

५—उससे अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यात गुणा।

६—उससे अपर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा।

७—उससे अपर्याप्त संज्ञी पञ्चेचेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा।

८—उससे पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातपुणा।

९—उससे पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा।

१०—उससे अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा।

११—उससे अपर्याप्त वादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा।

१२—उससे पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा।

१३—उससे पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा।

१४—उससे पर्याप्त द्वीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा ।

१५—उससे पर्याप्त त्रीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा ।

१६—उससे पर्याप्त चतुरिन्द्रिय का जघन्य योग असं, ख्यातगुणा ।

१७—उससे पर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा ।

१८—उससे पर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा ।

१९—उससे अपर्याप्त द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२० - उससे अपर्याप्त त्रीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२१ - उससे अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२२—उससे अपर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा ।

२३—उससे अपर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२४—उससे पर्याप्त द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२५—उससे पर्याप्त त्रीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२६—उससे पर्याप्त चतुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२७—उससे पर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२८—उससे पर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय का*उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

---

*कम्मपयड़ी (कर्मप्रकृति) में इसके ८ भेद बढ़ा करके अल्पबहुत्व किया है—२९ उससे पर्याप्त अनुत्तर विमान के देवता का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा, ३० उससे पर्याप्त ग्रैवेयक के देवता का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा, ३१ उससे पर्याप्त युगलिया तिर्यंच मनुष्य का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा, ३२ उससे पर्याप्त आहारक शरीर का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा, ३३ उससे पर्याप्त बाकी के देवता का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा, ३४ उससे पर्याप्त नारकी के नैरयिकों का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा, ३५ उससे पर्याप्त तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा, ३६ उससे पर्याप्त मनुष्य का उत्कृष्ट योग असंयात-गुणा ।



२०. समयोगी विषमयोगी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवां, उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन् ! प्रथम समय में उत्पन्न दो नैरयिक क्या समयोगी होते हैं या विषमयोगी होते हैं ? हे गौतम ! वे दोनों सिय (कदाचित्) समयोगी होते हैं और सिय (कदाचित्) विषमयोगी होते हैं । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! ×आहारक नैरयिक की अपेक्षा अनाहारक नैरयिक और अनाहारक नैरयिक की अपेक्षा आहारक नैरयिक सिय हीनयोगी (क्षीणयोगी), सिय तुल्ययोगी, सिय अधिकयोगी होता है अर्थात् आहारक नैरयिक की अपेक्षा अनाहारक नैरयिक हीनयोगी होता है । अनाहारक नैरयिक की अपेक्षा आहारक नैरयिक अधिकयोगी

×आहारक नारक की अपेक्षा अनाहारक नारक हीन योग वाला होता क्योंकि जो नारक ऋजुगति से आकर आहारकपने उत्पन्न होता है वह निरन्तर आहारक होने से पुद्गलों से उपचित (पुष्ट) होता है, इसलिये वह अधिक योग वाला होता है । जो नारक विग्रहगति से अनाहारकपने उत्पन्न होता है, वह अनाहारक होने से पुद्गलों से उपचित नहीं होता है, इसलिये वह हीन योग वाला होता है । जो नारक समान समय की विग्रहगति से अनाहारकपने उत्पन्न होते हैं, अथवा ऋजुगति से आकर आहारकपने उत्पन्न होते हैं, वे दोनों एक दूसरे की अपेक्षा समान योग वाले होते हैं ।

होता है। दो आहारक नैरयिक अथवा दो अनाहारक नैरयिक समयोगी (तुल्ययोग वाले होते हैं।

जो हीनयोगी होते हैं, वे असंख्यातभागहीन या संख्यातभागहीन, या असंख्यातगुणहीन, या संख्यातगुणहीन, इस तरह *चौट्ठाणवड़िया होते हैं। जो अधिकयोगी होते हैं

---

* प्रथम समय के उत्पन्न दो नैरयिक में योगों का तारतम्य चौट्ठाणवडिया इस प्रकार समझना चाहिये—

(१) एक जीव एक समय का आहारक मंडूकगति से आया है और दूसरा जीव एक समय का आहारक इलिकागति से आया है। इन दोनों के योग असंख्यातभाग न्यूनाधिक हैं।

(२) एक जीव एक समय का आहारक मंडूकगति से आया है और दूसरा जीव दो समय का आहारक वक्रगति से आया है। इन दोनों के योग संख्यातभाग न्यूनाधिक हैं।

(३) एक जीव एक समय का आहारक मंडूकगति करके आया है और दूसरा जीव एक समय का अनाहारक एक वक्रगति करके आया है। इन दोनों के योग संख्यातगुण न्यूनाधिक हैं।

(४) एक जीव एक समय का आहारक मंडूकगति से आया है और दूसरा जीव दो समय का अनाहारक दो वक्रगति से आया है। इन दोनों के योग असंख्यातगुण न्यूनाधिक हैं।

वे भी असंख्यातभागअधिक या संख्यातभागअधिक या असंख्यातगुण–अधिक या संख्यातगुण–अधिक, इस तरह चौट्ठाणवड़िया अधिक होते हैं। इस कारण से नैरयिक सिय समयोगी, सिय विषमयोगी होते हैं। इसी तरह २४ ही दण्डक में कह देना चाहिये।



२१. पन्द्रह योगों का अल्पाबहुत्व

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवां, उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन्! योग कितने प्रकार के हैं? हे गौतम! योग १५ प्रकार के हैं—१ सत्यमनयोग, २ असत्यमनयोग, ३ सत्यमृषा (मिश्र) मनयोग, ४ असत्यामृषा (व्यवहार) मनयोग। ५ सत्यवचनयोग, ६ असत्यवचनयोग ७ सत्यमृषा (मिश्र) वचनयोग, ८ असत्यामृषा (व्यवहार) वचनयोग। ९ औदारिककाययोग, १० औदारिकमिश्रकाययोग, ११ वैक्रियकाययोग, १२ वैक्रियमिश्रकाययोग, १३ आहारककाययोग, १४ आहारक-मिश्र काय योग, १५ कार्मण काय योग।

२—अहो भगवन्! इन पन्द्रह योगों में जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा कौन किससे कम, ज्यादा या विशेषाधिक है? हे गौतम!

१–कार्मणशरीर का जघन्य योग सबसे थोड़ा है,

२–उससे औदारिकमिश्र का जघन्य योग असंख्यातगुणा।

३–उससे वैक्रियमिश्र का जघन्ययोग असंख्यातगुणा ।

४–उससे औदारिकशरीर का जघन्य योग असंख्यात-गुणा ।

५–उससे वैक्रियशरीर का जघन्य योग असंख्यात-गुणा ।

६–उससे कार्मणशरीर का उत्कृष्ट योग असंख्यात-गुणा ।

७–उससे आहारकमिश्र का जघन्य योग असंख्यात-गुणा ।

८–उससे आहारक सिद्ध का जघन्य योग असंख्यात-गुणा ।

९–१०–उससे औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र का उत्कृष्ट योग परस्पर तुल्य असंख्यातगुणा ।

११–उससे व्यवहार (असत्यामृषा) मनयोग का जघन्य योग असंख्यातगुणा ।

१२–उससे आहारकशरीर का जघन्य योग असंख्यात-गुणा ।

१३ से १९–उससे तीन प्रकार के मनयोग और चार प्रकार का वचनयोग, इन सात परस्पर तुल्य का जघन्य योग असंख्यातगुणा ।

२०–उससे आहारकशरीर का उत्कृष्ट योग असंख्या-तगुणा ।

२१ से ३०–उससे औदारिकशरीर, वैक्रियशरीर,

चार प्रकार के मनयोग और चार प्रकार के वचन योग दस परस्पर तुल्य का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा ।

२२. जीव द्रव्य अजीव द्रव्य का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक पच्चीसवां, उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! द्रव्य कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! द्रव्य दो प्रकार के हैं—जीवद्रव्य और अजीव-द्रव्य ।

२—अहो भगवन् ! अजीवद्रव्य कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! दो प्रकार के हैं—रूपी अजीवद्रव्य और अरूपी अजीवद्रव्य ।

३—अहो भगवन् ! रूपी अजीवद्रव्य के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! चार भेद हैं—स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु-पुद्गल ।

४—अहो भगवन् ! अरूपी अजीव द्रव्य के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! दस भेद हैं—धर्मास्तिकाय का स्कन्ध, देश और प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का स्कन्ध, देश और प्रदेश आकाशास्तिकाय का स्कन्ध, देश और प्रदेश और दसवां कालद्रव्य ।

५—अहो भगवन् ! क्या रूपी अजीवद्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ? हे गौतम ! संख्यात नहीं,

असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त हैं। अहो भगवन्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! परमाणुपुद्गल अनन्त हैं, दो प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं यावत् दस प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं। संख्यात स्कन्ध अनन्त हैं। असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं, अनन्त प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं। इस कारण से रूपी अजीवद्रव्य अनन्त हैं।

६—अहो भगवन्! क्या जीवद्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं? हे गौतम! जीवद्रव्य संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त हैं। अहो भगवन्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! तेईस दण्डक में जीव असंख्यात हैं और वनस्पतिकाय के जीव तथा सिद्ध भगवान् अनन्त हैं।

७—अहो भगवन्! क्या जीवद्रव्य अजीवद्रव्य के काम में आता है या अजीवद्रव्य जीवद्रव्य के काम में आता है? हे गौतम! अजीवद्रव्य जीवद्रव्य के काम में आता है किंतु जीवद्रव्य अजीवद्रव्य के काम में नहीं आता है*। जीवद्रव्य अजीवद्रव्यों को ग्रहण करके १४ बोलों में परिणमाता है— ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ३ योग, १ श्वासोच्छ्वास। नारकी और देवता ये १४ दण्डक के जीव १२

---

*जीवद्रव्य सचेतन होने से अजीवद्रव्यों को ग्रहण करके शरीरादि रूप से उनका परिभोग करता है। इसलिये जीव भोक्ता है। अजीवद्रव्य अचेतन होने से ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य) है, इसलिये यह जीव का भोग्य है।

बोलों में परिणमाते हैं (औदारिक और आहारक ये दो शरीर इनके नहीं होते हैं)। चार स्थावर के जीव ६ बोलों में परिणमाते हैं (३ शरीर, १ इन्द्रिय, १ योग, १ श्वासोच्छ्वास)। वायुकाय के जीव ७ बोलों में परिणमाते हैं (वैक्रियशरीर बढ़ा)। द्वीन्द्रिय जीव ८ बोलों में परिणमाते हैं (३ शरीर, २ इन्द्रिय, २ योग, १ श्वासोच्छ्वास)। त्रीन्द्रिय जीव ९ बोलों में (एक इन्द्रिय बढ़ी) और चतुरिन्द्रिय जीव १० बोलों में (एक इन्द्रिय बढ़ी) परिणमाते हैं। तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय जीव १३ बोलों में (आहारकशरीर को छोड़कर) परिणमाते हैं। मनुष्य १४ बोलों में परिणमाते हैं।

८—अहो भगवन् ! लोक तो असंख्यात प्रदेशी हैं। उसमें अनन्त जीव और अनन्त अजीव द्रव्य कैसे समाये हुए हैं ? हे गौतम ! कूटागारशाला तथा प्रकाश के दृष्टान्त से समाये हुए हैं।

९—अहो भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश पर कितनी दिशा से आकर पुद्गल इकट्ठे होते हैं ? हे गौतम! निर्व्याघात (प्रतिबन्ध–रुकावट न हो तो) दशा में छहों दिशा के पुद्गल आकर इकट्ठे होते हैं, व्याघात (प्रतिबन्ध-रुकावट) हो तो सिय (कदाचित्) तीन दिशा के, सिय चार दिशा के, सिय पांच दिशा के पुद्गल इकट्ठे होते हैं। इसी तरह उपचय, अपचय तथा छेद (अलग होने) का भी कह देना चाहिए।

पांच स्थावर को छोड़ कर १९ दण्डक के जीव

नियमा छह दिशा के पुद्गल लेते हैं, चय, उपचय, अपचय करते हैं, छेदते हैं। समुच्चय जीव और पांच स्थावर के जीव छह बोल (औदारिक, तैजस, कार्मण ये ३ शरीर, स्पर्श-इन्द्रिय, काययोग, श्वासोच्छ्वास) की अपेक्षा सिय तीन चार पांच छह दिशा के पुद्गल लेते हैं, चय, (इकट्ठा करना) उपचय, (विशेष रूप से इकट्ठा करना) अपचय (घटाना) करते हैं, छेदते हैं।

इस प्रकार एक आकाश प्रदेश पर पुद्गल आते जाते हैं। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों में अनन्त द्रव्य समाये हुए हैं।



२३. स्थित-अस्थित का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवां, उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! जीव औदारिकशरीर पणे पुद्गलों को ग्रहण करता है तो क्या स्थित (ठिया)*पुद्गलों

---

* जितने आकाशप्रदेशों में जीव रहा हुआ है उतने आकाशप्रदेशों में रहे हुए पुद्गलों 'स्थित' कहते हैं और उसके वाहर के क्षेत्र में रहे हुए पुद्गलों को 'अस्थित' कहते हैं। उन पुद्गलों को वहां से खींच कर जीव ग्रहण करता है।

को ग्रहण करता है ? या अस्थित (अठिया) पुद्गलों को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित द्रव्यों को भी ग्रहण करता है और अस्थित द्रव्यों को भी ग्रहण करता है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत्* २८८ बोल निर्व्याघात की अपेक्षा से नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है, व्याघात की अपेक्षा सिय ३ दिशा का सिय ४ दिशा का, सिय ५ दिशा का ग्रहण करता है।

२—अहो भगवन् ! जीव वैक्रियशरीरपणे पुद्गलों को ग्रहण करता है तो क्या स्थित पुद्गलों को ग्रहण करता है या अस्थित पुद्गलों को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित भी ग्रहण करता है और अस्थित भी ग्रहण करता है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत्*२८८ बोल नियमा + ६ दिशा का ग्रहण करता है। जिस तरह वैक्रियशरीर का कहा उसी तरह आहारकशरीर के लिये भी कह देना चाहिये।

दूसरे आचार्य ऐसा कहते हैं कि—जो द्रव्य गति रहित हैं वे स्थित हैं और जो द्रव्य गति सहित हैं वे अस्थित हैं। (टीका में)

*२८८ बोलों का वर्णन पन्नवणासूत्र के थोकड़ों के तीसरे भाग में पृष्ठ ६६–६७ पर दिया हुआ है।

+'वैक्रिय शरीर योग्य द्रव्यों को ६ दिशा से ग्रहण करता है' यह जो कहा गया है, इसका अभिप्राय यह है कि उपयोग पूर्वक वैक्रिय शरीर करने वाले पञ्चेन्द्रिय जीव

३—अहो भगवन् ! जीव तैजसशरीरपणे पुद्गल ग्रहण करता है तो क्या स्थित को ग्रहण करता है या अस्थित को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित को ग्रहण करता है किन्तु अस्थित को ग्रहण नहीं करता है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत् २८८ बोल निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है, व्याघात की अपेक्षा सिय ३ दिशा का, सिय ४ दिशा का, सिय ५ दिशा का ग्रहण करता है।

४—अहो भगवन् ! जीव कार्मणशरीरपणे पुद्गल ग्रहण करता है तो क्या स्थित को ग्रहण करता है या अस्थित को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित को ग्रहण करता है किन्तु अस्थित को ग्रहण नहीं करता है द्रव्य क्षेत्र

ही होते हैं। वे त्रस नाड़ी के मध्यभाग में होते हैं, इसलिये ६ दिशा पुद्गल के ग्रहण करते हैं। यद्यपि वायुकाय के जीवों के वैक्रिय शरीर होने से उनकी अपेक्षा लोकान्त निष्कुट के विषय में ५ दिशा का पुद्गल ग्रहण करते हैं, तथापि वे उपयोग पूर्वक वैक्रिय शरीर नहीं करते हैं तथा उनका वैक्रिय शरीर अतिशय सहित नहीं है। इसलिए उनकी यहां विवक्षा नहीं की गई है। इसलिये ६ दिशा का कहा गया है।

काल भाव यावत् २४० बोल※ निर्व्याघात की अपेक्षा से नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है, व्याघात की अपेक्षा से सिय तीन दिशा का, सिय चार दिशा का, सिय पांच दिशा का ग्रहण करता है ।

५—अहो भगवन् ! जीव श्रोत्रेन्द्रियपणे चक्षुरिन्द्रियपणे घ्राणेन्द्रियपणे रसनेन्द्रियपणे पुद्गल ग्रहण करता है तो क्या स्थित को ग्रहण करता है या अस्थित को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित को भी ग्रहण करता है और अस्थित को भी ग्रहण करता है । द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत् २८८ बोल नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है ।

६—अहो भगवन् ! जीव स्पर्शेन्द्रियपणे, काययोगपणे, श्वासोच्छ्वासपणे पुद्गलों को ग्रहण करता है तो क्या स्थित को ग्रहण करता है या अस्थित को ग्रहण करता है? हे गौतम ! स्थित भी ग्रहण करता है अस्थित भी ग्रहण करता है ? यावत् औदारिकशरीर की तरह कह देना चाहिए ।

७—अहो भगवन् ! जीव मनयोगपणे, वचनयोगपणे पुद्गल ग्रहण करता है तो क्या स्थित ग्रहण करता है या अस्थित ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित को ग्रहण करता है, अस्थित को नहीं । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव यावत् २४० बोल नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है ।

※२४० बोलों का वर्णन पन्नवणासूत्र के थोकड़ों के दूसरे भाग पृष्ठ ३ पर भाषा पद में दिया हुआ है ।

नारकी और देवता के १४ दण्डक में १२ वोल पाये जाते हैं औदारिक व आहारक शरीर नहीं पाये जाते, समुच्चय की तरह छः दिशा का कह देना चाहिए किन्तु व्याघात निर्व्याघात भेद नहीं कहना चाहिए। चार स्थावर में छह वोल पाये जाते हैं। वायुकाय में ७ वोल पाये जाते हैं, समुच्चय की तरह कहना चाहिए। द्वीन्द्रिय में ८, त्रीन्द्रिय में ९, चतुरिन्द्रिय में १०, तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय में १३ और मनुष्य में १४ वोल पाये जाते हैं, समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिए किन्तु नियमा ६ दिशा का कहना चाहिए।



२४. छह संस्थान का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवां, उद्देशा तीसरा)

१–अहो भगवन्! संस्थान (पुद्गलस्कन्ध का आकार) कितने प्रकार का है? हे गौतम! संस्थान छह प्रकार का है—

१–परिमण्डल (गोल–चूड़ी के आकार)।

२–वट्ट–वृत्त (गोल–लड्डू के आकार)।

३–तंस–त्र्यस्र (त्रिकोण–सिंघाड़े के आकार)।

४–चउरंस–चतुरस्र (चतुष्कोण–चौकी के आकार)।

५–आयत (लम्बा–लकड़ी के आकार)।

६–अनित्थंस्थ–(उपरोक्त पांच संस्थानों से भिन्न)।

२–अहो भगवन् ! द्रव्य की अपेक्षा से परिमण्डल-संस्थान क्या संख्यात हैं या असंख्यात हैं या अनन्त हैं ? हे गौतम ! संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं किंतु अनन्त हैं। जिस तरह परिमण्डलसंस्थान का कहा, उसी तरह बाकी पांच संस्थान का कह देना चाहिये । जिस तरह द्रव्य की अपेक्षा से कहा, उसी तरह प्रदेश की अपेक्षा से और द्रव्य-प्रदेश संमिलित की अपेक्षा से कह देना चाहिए ।

द्रव्य की अपेक्षा से इनकी अल्पबहुत्व ।

१*सबसे थोड़ा परिमण्डलसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा।

२–उससे वट्ट (वृत्त) संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा है ।

३–उससे चउरंस (चतुरस्र) संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यात गुणा है ।

---

*यहां संस्थानों की जघन्य अवगाहना का विचार किया गया है । जो संस्थान जिस संस्थान की अपेक्षा बहुप्रदेशावगाही है, वह स्वाभाविक रीति से थोड़ा है । परिमण्डसंस्थान जघन्य से बीस प्रदेशों की अवगाहना वाला होता है । वट्ट (वृत्त) संस्थान जघन्य से पांच प्रदेशावगाही है । चउरंस (चतुरस्र) संस्थान चार प्रदेशावगाही, तंस (त्र्यस्र) संस्थान तीन प्रदेशावगाही और आयतसंस्थान जघन्य से दो प्रदेशावगाही है । इसलिए परिमण्डलसंस्थान बहुप्रदेशावगाही होने से सबसे थोड़ा है । उससे वट्टादि (वृत्त आदि) संस्थान अल्प अल्प प्रदेशावगाही होने से एक दूसरे से संख्यातगुणा अधिक अधिक हैं ।

४–उससे तंस (त्र्यस्र) संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा है ।

५–उससे आयतसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा है ।

६–उससे अनित्थंस्थसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यागुणा है ।

जिस तरह द्रव्य की अपेक्षा से अल्पबहुत्व कही, उसी तरह प्रदेश की अपेक्षा से भी कह देनी चाहिए ।

द्रव्य-प्रदेश दोनों की संमिलित अल्पबहुत्व १—सबसे थोड़ा परिमण्डलसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा । २—उससे वृत्तसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा । ३—उससे चउरंससंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा । ४—उससे त्र्यस्रसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा । ५—उससे आयतसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा । ६—उससे अनित्थंस्थसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा असंक्यातगुणा । ७—उससे परिमण्डलसंस्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा । ८—उससे वृत्तसंस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणा । ९—उससे चउरंससंस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणा । १०—उससे तंस (त्र्यस्र) संस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणा । ११—उससे आयतसंस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणा । १२—उससे अनित्थंस्थसंस्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा है ।

इनके कुल ४२ आलापक (६+६+६+६+६+६+६=४२ हैं ।

---

२५. जीवकम्पमान अकम्पमान का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवां, उद्देशा चौथा)

१—अहो भगवन् ! क्या जीव सकम्प है या निष्कम्प है ? हे गौतम ! जीव सकम्प भी है और निष्कम्प भी है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! जीव के दो भेद हैं—सिद्ध और संसारी। सिद्ध के दो भेद हैं—अनन्तरसिद्ध और परम्परासिद्ध। परम्परासिद्ध तो निष्कम्प हैं। अनन्तर सिद्ध सकम्प ❀ हैं। वे सर्व से (सब अंशों से) कम्पते हैं, देश से (कुछ अंशों से) से नहीं कम्पते हैं।

संसारीजीव के दो भेद हैं—शैलेशीप्रतिपन्न (शैलेशी-अवस्था को प्राप्त हुए, चौदहवें गुणस्थान वाले जीव) और अशैलेशीप्रतिपन्न (पहले गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुणस्थान

❀ सिद्धत्व प्राप्ति के प्रथम समय में अनन्तरसिद्ध कहलाते हैं क्योंकि तब एक समय का भी अन्तर नहीं होता। जो सिद्धत्व के प्रथम समय में वर्तमान सिद्ध जीव हैं, उनमें कम्पन है। क्योंकि सिद्धि गमन समय और सिद्धत्व प्राप्ति का समय एक ही होने से और सिद्धिगमन समय में गमनक्रिया के होने से उस समय वे सकम्प होते हैं। सिद्धत्वप्राप्ति होने के पश्चात् जिन्हें समयादि का अन्तर पड़ जाता है, वे परम्परासिद्ध कहलाते हैं और वे निष्कम्प होते हैं।

तक के जीव)। शैलेशीप्रतिपन्न जीव तो निष्कम्प ❀ होते हैं और अशैलेशीप्रतिपन्न सकम्प होते हैं। वे देश से÷ (कुछ अंशों से) भी कम्पते हैं और सर्व से (सब अंशों से) भी कम्पते हैं। ×विग्रहगति वाले जीव सर्व से कम्पते हैं, अविग्रहगति वाले जीव देश से कम्पते हैं। इस तरह २४ ही दण्डक के जीव देश से भी कम्पते हैं और सर्व से भी कम्पते हैं।

❀ जो मोक्ष जाने के समय पहले शैलेशी को प्राप्त हुए हैं, उनके योग का सर्वथा निरोध होने से वे निष्कम्प हैं।

÷ इलिकागति से उत्पत्तिस्थान को जाते हुए जीव देश से सकम्प हैं, क्योंकि उनका पहले के शरीर में रहा हुआ अंश गतिक्रिया रहित होने से निश्चल है।

×विग्रहगति को प्राप्त यानी जो मरकर विग्रहगति द्वारा उत्पत्तिस्थान को जाते हैं वे गेंद की गति से सर्वात्म रूप से उत्पन्न होते है, इसलिये वे सर्वतः सकम्प हैं। जो जीव विग्रहगति को प्राप्त नहीं हैं, वे ऋजुगतिवाले और अवस्थित ये दो प्रकार के हैं। उनमें से यहां केवल अवस्थित ग्रहण किये गये हैं, ऐसा सम्भव है। वे शरीर में रह कर मरणसमुद्घात, कर ईलिकागति द्वारा उत्पत्तिक्षेत्र का स्पर्श करते हैं, इसलिए वे देश से सकम्प हैं। अथवा स्वक्षेत्र में रहे हुए जीव हस्तपादादि अवयव चलाने से देश से सकम्प हैं।

२६. लघुदंडक का थोकड़ा

चौबीस दंडक के नाम

1 11 61 16

गाथा—नेरइआ असुराई पुढवाई बेइंदियादओ चेव ।

20 21 22 23 24

पंचिंदियतिय नरा, वंतर जोइसिय वेमाणी ॥१॥

अर्थः—नेरइआ–सात नारकी का एक दण्डक । असुराई-असुरकुमारादि दस भवनपति का दस दण्डक । पुढवाई–पृथ्वीकायादि पांच स्थावर का पांच दण्डक । बेइंदियादओ—द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रिय का तीन दण्डक । पंचिंदियतियनरा–पंचेन्द्रिय तिर्यंच का एक दण्डक तथा मनुष्य का एक दण्डक । वंतर-व्यन्तरदेववाण-व्यन्तर देव का एक दण्डक । जोइसिस–पांच ज्योतिषी देवता का एक दण्डक । वेमाणी–वैमानिक देवता का एक दण्डक । ये चौबीस दण्डक हुए ।

*संग्रहणी गाथाएं—

1 2 3 4 5 6

सरीरोगाहणसंघयणसंठाण कसाय तह य हुंति सन्नाओ ।

7 8 9 10 11 12

लेसिंदिय समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ॥१॥

---

* ये दो संग्रहणी गाथाएं जीवाभिगमसूत्र प्रथम प्रतिपत्ति की हैं ।

13 14 15 16 17 18
दिट्ठी दंसण नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे ।
19 20 21 22 23
उववाय ठिई समुग्घाय चवण गइगई चेव ॥२॥
24 25
पाणे जोगे ।

चौवीस दण्डक पर शरीरादि पच्चीस द्वार चलते हैं । उनका स्वरूप कहते हैं—

१ शरीरद्वार

शरीर किसको कहते हैं ? शीर्ण होने वाला अर्थात् विनाश होने वाला है, इसलिए इसको शरीर कहते हैं । इसके पांच भेद हैं—१ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तैजस, ५ कार्मण ।

१ उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलों से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है ।

तीर्थंकर और गणधरों का शरीर प्रधान पुद्गलों से बनता है और सर्वसाधारण का शरीर स्थूल असार पुद्गलों से बनता है, मनुष्य और तिर्यंच को औदारिकशरीर प्राप्त होता है ।

२ जिस शरीर से विविध क्रियाएं होती हैं, उसे वैक्रिय-शरीर कहते हैं ।

विविध क्रियाएं ये हैं—एक स्वरूप धारण करना,

अनेक स्वरूप धारण करना, छोटा शरीर धारण करना, बड़ा शरीर धारण करना, आकाश में चलने योग्य शरीर धारण करना, भूमि पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्यशरीर धारण करना, अदृश्यशरीर धारण करना, इत्यादि अनेक प्रकार की अवस्थाओं को वैक्रियशरीरधारी जीव कर सकता है।

वैक्रियशरीर दो प्रकार का है—(१) औपपातिक और (२) लब्धिप्रत्यय।

देव और नारकों का शरीर औपपातिक कहलाता है अर्थात् उनको जन्म से ही वैक्रियशरीर मिलता है। लब्धि-प्रत्यय शरीर तिर्यंच और मनुष्यों को होता है अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच तप आदि ज्ञ द्वारा प्राप्त किये हुए शक्ति विशेष से वैक्रियशरीर प्राप्त कर लेते हैं।

३ चतुर्दशपूर्वधारी मुनि अन्य (महाविदेह) क्षेत्र में वर्तमान तीर्थंकर से अपना सन्देह निवारण करने के लिए अथवा उनका ऐश्वर्य देखने के लिए जब उक्त क्षेत्र को जाना चाहते हैं तब लब्धिविशेष से एक हाथ प्रमाण अति-विशुद्ध स्फटिक के समान निर्मल जो शरीर निकालते हैं, उस शरीर को आहारकशरीर कहते हैं।

४ तेजस्पुद्गलों से बना हुआ शरीर तैजस् कहलाता है, इस शरीर की उष्णता से खाये हुये अन्न का पाचन होता है और कोई-कोई तपस्वी जो क्रोध से तेजोलेश्या के द्वारा औरों को नुकसान पहुंचाता है तथा प्रसन्न होकर शीतललेश्या के द्वारा फायदा पहुंचाता है सो इसी तेजस्

शरीर के प्रभाव से समझना चाहिए अर्थात् आहार के पाक का हेतु तथा तेजोलेश्या और शीतललेश्या के निगमन का हेतु जो शरीर है, वह तैजस्शरीर कहलाता है।

५ कर्मों का बना हुआ शरीर कार्मणशरीर कहलाता है, अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्मपुद्गलों को कार्मणशरीर कहते हैं। यह कार्मणशरीर सब शरीरों का बीज है, इसी शरीर से जीव अपने मरणदेश को छोड़कर उत्पत्तिस्थान को जाता है।

समस्त संसारी जीवों के तैजस्शरीर और कार्मणशरीर, ये दो शरीर अवश्य होते हैं।

२ अवगाहनाद्वार

अवगाहना किसको कहते हैं? जीव का शरीर जितने आकाशप्रदेशों को अवगाहे (रोके), उसको अवगाहना कहते हैं। वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन झाझेरी (कुछ अधिक), उत्तरवैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी।

(१) औदारिकशरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट एक हजार योजन झाझेरी। कमलडांडी के न्याय से।

(२) वैक्रियशरीर की भवधारणी अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की।

उत्तरवैक्रियशरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग, उत्कृष्ट लाख योजन झाझेरी ।

(३) आहारकशरीर की अवगाहना जघन्य मुण्ड हाथ की, उत्कृष्ट एक हाथ की ।

(४-५) तैजस-कार्मण शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट चौदह रज्जु लोकप्रमाण की । केवल समुद्घात की अपेक्षा से अथवा अपने-अपने शरीर के प्रमाण से जानना ।

३ संघयणद्वार

संघयण (संहनन) किसको कहते हैं । हाडों के बन्धनविशेष को संघयण कहते हैं । उसके छह भेद हैं—

१ वज्रऋषभनाराच—जिस संहनन में वज्र के हाड़, वज्र के वेष्टन और वज्र की कीलियां हों, उसे वज्रऋषभ-नाराच कहते हैं ।

२ ऋषभनाराच—जिस संहनन में वज्र के हाड़ और वज्र की कीली हो, उसे ऋषभनाराच कहते हैं ।

३ नाराच—जिस संहनन में वेष्टन और कीली सहित हाड़ हों, उसे नाराच कहते हैं ।

४ अर्धनाराच—जिस संहनन में हाडों की संधि अर्ध कीलित हो, उसे अर्धनाराच कहते हैं ।

५ कीलक (कीलिका)—जिस संहनन में हाड परस्पर कीलित हों, उसे कीलक कहते हैं ।

६ सेवार्त्तक (छेवट्ट)—जिस संहनन में जुदे २ हाड नसों से बंधे हों—परस्पर कीले हुए न हों, उसे सेवार्त्तक (छेवट्ट) कहते हैं।

४ संठाणद्वार

संठाण (संस्थान) किसको कहते हैं? नामकर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति (शक्ल) को संस्थान कहते हैं। उसके छह भेद हैं—

१ समचतुरस्र (समचौरस) ऊपर नीचे तथा बीच में सम भाग से सुन्दराकार शरीर की शक्ल को समचौरस-संठाण कहते हैं।

२ न्यग्रोधपरिमण्डल—वट (बड़) के वृक्ष के समान शरीर की शक्ल अर्थात् नाभि से ऊपर का भाग त्रिकल-क्षणोपेत पूर्ण प्रमाण हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डलसंठाण कहते हैं।

३ सादि (संठाण)—ऊपर वाले लक्षण से बिलकुल विपरीत हो, जैसे सांप की बांबी, अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे सादिसंठाण कहते हैं।

४ कुब्जक (कुबड़ा)—जिस शरीर के हाथ पांव मुख और ग्रीवादिक उत्तम हों और हृदय, पेठ, पीठ अधम (हीन) हों, उसे कुब्जकसंठाण कहते हैं।

५ वामन—बौना (बावना) शरीर हो अर्थात् जिस

शरीर में हाथ पांव आदि अवयव हीन हों और छाती पेट आदि पूर्ण उत्तम हों, उसे वामनसंठाण कहते हैं।

६—हुण्डक—जिस शरीर में सब अङ्गोपाङ्ग किसी खास शक्ल के न हों (खराब हों), उसे हुण्डकसंठाण कहते हैं।

५ कषायद्वार

कषाय किसको कहते हैं? क्रोधादिरूप आत्मा के विभाव परिणामों को कषाय कहते हैं। इसके चार भेद हैं—१ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ।

६ संज्ञाद्वार

संज्ञा किसको कहते हैं? आहारादि की अभिलाषा करने को संज्ञा कहते हैं, उसके चार भेद हैं—

१ आहारसंज्ञा, २ भयसंज्ञा, ३ मैथुनसंज्ञा, ४ परिग्रह-संज्ञा।

७ लेश्याद्वार

लेश्या किसको कहते हैं? योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाले आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं, उसके छह भेद हैं—१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या ३ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या ६ शुक्ल-लेश्या।

८ इन्द्रियद्वार

इन्द्रिय किसको कहते हैं ? आत्मा के चिह्न को इन्द्रिय कहते हैं, उसके पांच भेद है—

१ श्रोत्र-इन्द्रिय (कान), २ चक्षु—इन्द्रिय (आंख), ३ घ्राण-इन्द्रिय (नाक), ४ रसना-इन्द्रिय (जीभ), ५ स्पर्शन-इन्द्रिय (संपूर्ण शरीरव्यापी त्वचा) ।

९ समुद्घातद्वार

समुद्घात किसको क़हते हैं ? मूल शरीर को विना छोड़े जीव के प्रदेशों के बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं, उसके भेद सात हैं—

१ वेदनीय, २ कषाय, ३ मारणान्तिक, ४ वैक्रिय, ५ तैजस् ६ आहारक, ७ केवली ।

१० सन्नी (संज्ञी) द्वार

संज्ञी किसको कहते हैं ? जिसके मन हो, उसे संज्ञी और जिसके मन न हो, उसे असंज्ञी कहते हैं ।

११ वेद द्वार

वेद किसको कहते हैं— नामकर्म के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष, नपुंसक रूप चिन्ह को द्रव्यवेद कहते हैं और जीव की विषयभोग की अभिलाषा को भाव-वेद कहते हैं । उसके तीन भेद हैं—१ स्त्रीवेद, २ पुरुष-वेद, ३ नपुंसकवेद ।

१२ पज्जत्ति (पर्याप्ति) द्वार

पर्याप्ति किसको कहते हैं ? आहारादि के पुद्गलों को ग्रहण करने तथा उन्हें आहार शरीरादि रूप परिणमाने की आत्मा की शक्तिविशेष को पर्याप्ति कहते हैं । इसके छह भेद हैं १ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रिय-पर्याप्ति, ४ श्वासोछ्वासपर्याप्ति, ५ भाषापर्याप्ति, ६ मनःपर्याप्ति ।

१३ दृष्टिद्वार

दृष्टि किसको कहते हैं ? तत्त्वविचारणा की रुचि को दृष्टि कहते हैं, इसके तीन भेद हैं—

१ सम्यग्दृष्टि—दर्शनमोहनीयकर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने पर जो जीवादि तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं ।

२ मिथ्यादृष्टि—दर्शनमोहनीयकर्म के उदय से जो जीवादि तत्त्वों की विपरीत श्रद्धा होती है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र)—मिश्रमोहनीयकर्म के उदय से जो कुछ सम्यक् और कुछ मिथ्यात्व रूप मिश्रित परिणाम होता है, उसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं । गुड़ मिले हुए दही के खाने से जैसे खटमीठा मिश्ररूप स्वाद आता है, वैसे ही जो सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों से मिला हुआ परिणाम होता है, उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

१४ दर्शनद्वार

दर्शन किसे कहते हैं ? जिसमें महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसको दर्शन कहते हैं। दर्शन के चार भेद हैं—

१ चक्षुदर्शन—नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को चक्षुदर्शन कहते हैं।

२ अचक्षुदर्शन - नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियों और मन सम्बन्धी मतिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को अचक्षुदर्शन कहते हैं।

३ अवधिदर्शन—अवधिज्ञान के पहिले होने वाले सामान्य अवलोकन को अवधिदर्शन कहते हैं।

४ केवलदर्शन—केवलज्ञान के पहले होने वाले सामान्य धर्म के अवलोकन (उपयोग) को केवलदर्शन कहते हैं।

१५ नाण (ज्ञान) द्वार

ज्ञान किसको कहते हैं ? किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाले को ज्ञान कहते हैं। उसके दो भेद हैं:—सम्यग्ज्ञान, मिथ्याज्ञान। सम्यग्ज्ञान के पांच भेद हैं:—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यज्ञान, केवलज्ञान।

१ मतिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो, उसको मतिज्ञान कहते हैं।

२ श्रुतज्ञान—मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ से सम्बन्ध लिये

हुए किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं, जैसे "घट" शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कंबुग्रीवादि रूप घट का ज्ञान ।

३ अवधिज्ञान—द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिये हुए जो रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने ।

४ मनःपर्ययज्ञान—द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा को लिये हुए जो दूसरे के मन में रहे हुए रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने ।

५ केवलज्ञान—जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् स्पष्ट जाने ।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद हैं—१ मतिअज्ञान, २ श्रुतअज्ञान, ३ विभंगज्ञाग । ये तीन अज्ञान हैं ।

१६ योगद्वार

योग किसको कहते हैं ? मन वचन काया की प्रवृत्ति को योग कहते है, इसके पन्द्रह भेद हैं—४ मन के, ४ वचन (भाषा) के, ७ काया के । मन के चार भेद इस प्रकार हैं—१ सत्यमनयोग, २ असत्यमनयोग, ३ मिश्रमनयोग, ४ व्यवहारमनयोग । वचन (भाषा) के चार भेद इस प्रकार हैं—१ सत्यवचनयोग, २ असत्यवचनयोग, ३ मिश्रवचनयोग ४ व्यवहारवचनयोग । काया के सात भेद इस प्रकार हैं—१ औदारिकशरीरकाययोग, २ औदारिकमिश्रशरीरकाययोग, ३ वैक्रियशरीरकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग, ५ आहारकशरीरकाययोग, ६ आहारकमिश्रशरीरकाययोग, ७ कार्मणशरीरकाययोग ।

१७ उपयोगद्वार

उपयोग किसको कहते हैं ? ज्ञान, दर्शन की प्रवृत्ति को उपयोग कहते हैं । उसके बारह भेद हैं–५ ज्ञानोपयोग, ३ अज्ञानोपयोग, ४ दर्शनोपयोग ।

१८ आहारद्वार

जीव किस प्रकार के पुद्‌गलों का आहार करता है? २८८ प्रकार के पुद्‌गलों का आहार करता है ।

जघन्य तीन (ऊंची, नीची, तिरछी) दिशाओं से और उत्कृष्ट छह (ऊंची, नीची, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) दिशाओं से आहार लेता है ।

आहार तीन प्रकार का होता है, १ सचित्त, २ अचित्त और ३ मिश्र ।

प्रकारान्तर से भी तीन प्रकार का आहार होता है—१ ओज, २ रोम, ३ कवल ।

१९ उववाय (उपपात) द्वार

उपपात किसको कहते हैं ? जीव पूर्व भव से आकर उपजे, उसे उपपात कहते हैं । उसका प्रमाण–एक समय में १-२-३ यावत् संख्याता, असंख्याता, अनन्ता ।

२० ठिई (स्थिति) द्वार

ठिई (स्थिति) किसको कहते हैं ? जीव जितने

काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे स्थिति कहते हैं। उसका प्रमाण जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम ।

२१ समोहया-असमोहयाद्वार

समोहया असमोहया मरण किसको कहते हैं ? समोहयामरण–जो ईलिकागति समुद्घात करके मरे, अर्थात् कीड़े की कतार की तरह जीव के प्रदेश अलग-अलग निकलें उसे समोहयामरण कहते हैं। असमोहयामरण–जो गेंद (दड़ी) गति समुद्घात करके मरे अर्थात् बन्दूक की गोली के माफक जीव के प्रदेश एक साथ निकलें उसे असमोहयामरण कहते हैं ।

२२ चवण (च्यवण) द्वार

च्यवन किसको कहते हैं ? जीव वर्त्तमान भव को छोड़ता हैं उसे च्यवन कहते हैं, इसका प्रमाण एक समय में १-२-३ जाव संख्याता, अनन्ता ।

२३ गइआगइ (गति-आगति) द्वार

गति–आगति किसको कहते हैं ? जीव मर कर भवान्तर में जावे, उसे गति कहते हैं, इसके पांच भेद हैं–१ नारकी, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य, ४ देवता, ५ सिद्ध गति। आगति–भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को आगति कहते हैं। उसके चार भेद हैं—१ नारकी, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य,

४ देवता । दंडक की अपेक्षा २४ दंडक का दण्डक में तथा मोक्ष में जावे ।

२४ प्राणद्वार

प्राण किसको कहते हैं ? जीवन के आधारभूत पदार्थों को अर्थात् जिनके सद्भाव से जीव किसी शरीर के साथ बंधा रहे, उन्हें प्राण कहते हैं । इसके दस भेद हैं—१ श्रोत्रेन्द्रिय, २ चक्षुरिन्द्रिय, ३ घ्राणेन्द्रिय, ४ जिह्वेन्द्रिय, ५ स्पर्शनेन्द्रिय, ६ मनोवल, ७ वचनबल, ८ कायवल, ६ श्वासोच्छ्वास, १० आयुष्य ।

२५ योगद्वार

योग किसको कहते हैं ? लक्षण पूर्ववत् । उसके तीन भेद हैं—१ मनयोग, २, वचनयोग, ३ काययोग ।

अव एक दण्डक नारकी का, तेरह दंडक देवता के (भवनपति के १० दण्डक, वाणव्यन्तर का १ दण्डक, ज्योतिषी का १ दंडक, वैमानिक का १ दंडक) इन १४ दंडकों पर २५ द्वार कहते हैं—

१ शरीर—शरीर तीन—वैक्रिय, तैजस्, कार्मण ।

२ अवगाहना—पहली नारकी से सातवीं नारक तक भवधारिणी शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग । उत्कृष्ट पहली नारकी की ७॥ धनुष, ६ अंगुल की होती है ।

दूजी नारकी की १५।। धनुष, १२ अंगुल की,
तीजी ” ३१। ”
चौथी ” ६२।। ”
पांचवीं ” १२५ ”
छट्ठी ” २५० ”
सातवीं ” ५०० ”

उत्तरवैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवे भाग, उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी जैसे सातवीं नारकी की भवधारिणी शरीर की ५०० धनुष की और उत्तरवैक्रिय करे तो १००० धनुष की। भवनपति, वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहिले दूजे देवलोक की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट ७ हाथ की। तीजे देवलोक की सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट अलग-अलग। यथा—

तीजे, चौथे देवलोक की ६ हाथ की
पांचवें, छठे ” ” ५ ”
सातवें, आठवें ” ” ४ ”
नववें से बारहवें ” ” ३ ”
नवग्रैवेयक की ” ” २ ”

पांच अनुत्तर विमान में १ हाथ की

उत्तरवैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक तक लाख योजन की। नवग्रैवेयक के तथा अनुत्तर विमान के देवता विक्रिया नहीं करते।

३ संघयण—संघयण नहीं, नारकी में अशुभ पुद्गल

परिणमे और देवता में शुभ पुद्गल परिणमे ।

४ संठाण—नारकी में संठाण एक हुण्डक, देवता में संठाण एक समचौरस भवधारणीय शरीर की अपेक्षा और उत्तरवैक्रिय शरीर की अपेक्षा संठाण नाना प्रकार का ।

५ कषाय—नारकी देवता के १४ दण्डक में कषाय चारों ही ।

६ संज्ञा—नारकी और देवता के १४ दण्डकों में संज्ञा चारों ही ।

७ लेश्या—पहिली, दूजी नारकी में लेश्या एक कापोत । तीसरी नारकी में लेश्या दो—कापोत और नील । चौथी नारकी में लेश्या एक—नील । पांचवीं नारकी में लेश्या दो—नील और कृष्ण । छठी नारकी में लेश्या एक—कृष्ण । सातवीं नारकी में लेश्या एक—महाकृष्ण । दस भवनपति और वाणव्यन्तर देवता में लेश्या चार पहले की । ज्योतिषी तथा पहिले दूजे देवलोक में लेश्या एक—तेजो । तीजे चौथे पांचवें देवलोक में लेश्या एक—पद्म । छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक लेश्या एक—शुक्ल । पांच अनुत्तर विमान में लेश्या एक-परमशुक्ल ।

८ इन्द्रिय—नारकी और देवता में इन्द्रिय पांच पांच ।

९ समुद्घात—नारकी में समुद्घात चार—वेदनीय, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय । भवनपति से यावत् बारहवें

देवलोक तक समुद्घात पांच अनुक्रम की। नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान में समुद्घात पांच परन्तु समुद्घात करे तीन वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।

१० सन्नी–पहिली नारकी, भवनपति, वाणव्यंतर में सन्नी, असन्नी दोनों उपजें। दूजी नारकी से सातवीं नारकी तक तथा ज्योतिषी से पांच अनुत्तर विमान तक सन्नी उपजे।

११ वेद—नारकी में वेद एक—नपुंसक। भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी पहिले दूजे देवलोक में वेद दो—स्त्रीवेद, पुरुषवेद। तीसरे देवलोक से सवार्थसिद्ध विमान तक वेद पावे एक–पुरुषवेद।

१२ पज्जत्ति—नारकी में पर्याप्ति छह और देवता में पर्याप्ति पांच क्योंकि भाषा और मन दोनों पर्याप्तियां शामिल बंधती है।

१३ दृष्टि—नारकी और भवनपति से बारहवें देवलोक तक दृष्टि तीनों ही। नवग्रैवेयक में दृष्टि दो—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि। पांच अनुत्तर विमान में दृष्टि एक—सम्यग्यदृष्टि।

१४ दर्शन—नारकी और देवता में दर्शन तीन—चक्षु-दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन।

१५ नाण—नारकी और देवता में ज्ञान तीन–मति-ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान।

अन्नाण—नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक अज्ञान तीन—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान। पांच अनुत्तर विमान में अज्ञान नहीं।

१६ योग—नारकी और देवता में योग ग्यारह—४ मन का, ४ वचन का, ३ काया का, (वैक्रियशरीरकाययोग, वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग और कार्मणशरीरकाययोग)।

१७ उपयोग—नारकी और देवता में नवग्रैवेयक तक उपयोग नव—३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन। पांच अनुत्तर विमान में उपयोग छह—तीन ज्ञान और तीन दर्शन।

१८ आहार—नारकी और देवता आहार लेवे २८८ भेद❀ का। जिसमें दिशि आसरी नियमा छह दिशि का

❀ आहार के २८८ भेद ये हैं। (१) पुठिया (२) उघाड़ा (३) अन्तर्उघाड़ा (४) सूक्ष्म (५) बादर (६) ऊंची दिशा का (७) नीची दिशा का (८) तिरछी दिशा का (९) आदि का (१०) मध्य का (११) अन्त का (१२) स्वविषयक (१३) अनुक्रम से (१४) नियमात् छहों दिशा का (१५) द्रव्य का (१६) क्षेत्र का। (१७) से २८ तक) काल के १२ भेद। एक समय में लेवे, दो समय में लेवे, यावत् दस समय में लेवे, संख्यात समय में लेवे, असंख्यात समय में लेवे। (२९ से २८८ तक) भाव के २६० भेद हैं। पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श ये २० भेद। इनके प्रत्येक के १३ भेद हैं। एक गुण

आहार लेवे ।

१६ उववाय—नारकी और भवनपति से लगा कर यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में ज० १-२-३ जाव संख्याता, उ० असंख्याता उपजे । नववें देवलोक से लगा-कर यावत् सर्वार्थसिद्ध तक ज० १-२-३ जाव उ० संख्याता उपजे ।

२० स्थिति—समुच्चय नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की ।

१ पहिली नारकी के नैरयिक का स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उ० १ सागरोपम की ।

२ दूसरी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० एक सागरोपम की, उ० ३ सागरोपम की ।

३ तीसरी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० ३ सागरोपम की, उ० ७ सागरोपम की ।

४ चौथी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० ७ सागरोपम की, उ० १० सागरोपम की ।

काला, दो गुण काला, यावत् दस गुण काला, असंख्यात गुण काला और अनन्त गुण काला । इसी तरह गन्धादि के तेरह भेद करने से २०×१३=२६० हुए, २६०+२८=२८८ ।

५ पांचवी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० १० सागरोपम की, उ० १७ सागरोपम की ।

६ छठ्ठी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० १७ सागरोपम की, उ० २२ सागरोपम की ।

७ सातवीं नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० २२ सागरोपम की, उ० ३३ सागरोपम की ।

भवनपति देवता की असुरकुमार जाति में दो इन्द्र हैं चमरेन्द्र और बलीन्द्र

चयरेन्द्रजी के रहने की चमरचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिणदिशा में अधोलोक में है । वलीन्द्रजी के रहने की वलचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से उत्तरदिशा में अधोलोक में है । चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की और उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ३।। पल्वोपम की । वाकी के नव जाति के दक्षिणदिशा के भवनपति देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट १।। पल्योपम की और उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट।।। पल्योपम की ।

वलीन्द्रजी के भवनवासी देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की है, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी, उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ४।। पल्योपम की । वाकी के नव जाति के उत्तर दिशा

वाले भवनपति देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की, उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की ।

वाणव्यंतरदेवता की स्थिति

वाणव्यन्तर देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट १ पल्योपम की, उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की ।

ज्योतिषीदेवता की स्थिति

इनके पांच भेद है—१ चन्द्रमा, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, ५ तारा । चन्द्रविमानवासी देवता की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० १ पल्योपम और एक लाख वर्ष की, उनकी देवियों की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० आधा पल्योपम और ५० हजार वर्ष की । सूर्य-विमानवासी देवता की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० १ पल्योपम और १ हजार वर्ष की, उनकी देवियों की स्थिति ज० पाव पाल्योपम की, उ० आधा पल्योपम ५०० वर्ष की । ग्रहविमानवासी देवता की स्थिति जघन्य पाव पल्सोपम की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की । उनकी देवियों की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० आधा पल्योपम की । नक्षत्र विमानवासी देवता की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० आधा पल्योपम की, इन की देवियों की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० पाव पल्योपम झाझेरी । ताराविमानवासी देवता की स्थिति ज० पल्योपम के आठवें

भाग की, उ० पाव पल्योपम की, उनकी देवियों की स्थिति ज० पल्योपम के आठवें भाग की, उ० पल्योपम के आठवें भाग झाझेरी।

वैमानिकदेवता की स्थिति

१ पहिले देवलोक के देवता की स्थिति ज० १ पल्योपम की, उ० २ सागरोपम की, उनकी देवियां दो प्रकार की हैं–परिगृहीता और अपरिगृहीता। परिगृहीता देवियों की स्थिति ज० १ पल्योपम की, उ० ७ पल्योपम की। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति ज० १ पल्योपम की उ० ५० पल्योपम की।

२ दूसरे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १ पल्योपम झाझेरी। उ० २ सागरोपम झाझेरी। उनकी देवियां दो प्रकार की हैं—परिगृहीता और अपरिगृहीता। परिगृहीता देवियों की स्थिति ज० १ पल्योपम झाझेरी उ० ९ पल्योपम की। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति ज० पल्योपम झाझेरी, उ० ५५ पल्योपम की।

३ तीसरे देवलोक के देवता की स्थिति ज० २ सागरोपम की, उत्कृष्ट ७ सागरोपम झाझेरी।

४ चौथे देवलोक के देवता की स्थिति ज० २ सागरोपम झाझेरी, उत्कृष्ट ७ सागरोपम की।

५ पांचवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० ७ सागरोपम की, उत्कृष्ट १० सागरोपम की।

६ छठे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १० सागरोपम की, उत्कृष्ट १० सागरोपम की ।

७ सातवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० १४ सागरोपम की, उत्कृष्ट १७ सागरोपम की ।

८ आठवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० १७ सागरोपम की, उत्कृष्ट १८ सागरोपम की ।

९ नववें देवलोक के देवता की स्थिति ज० १८ सागरोपम की, उत्कृष्ट १९ सागरोपम की ।

१० दसवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० १९ सागरोपम की, उत्कृष्ट २० सागरोपम की ।

११ ग्यारहवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० २० सागरोपम की, उत्कृष्ट २१ सागरोपम की ।

१२ बारहवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० २१ सागरोपम की, उत्कृष्ट २२ सागरोपम की ।

१३ पहिले ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २२ सागरोपम की, उत्कृष्ट २३ सागरोपम की ।

१४ दूसरे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २३ सागरोपम की, उत्कृष्ट २४ सागरोपम की ।

१५ तीसरे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २४ सागरोपम की, उत्कृष्ट २५ सागरोपम की ।

१६ चौथे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २५ सागरोपम की, उत्कृष्ट २६ सागरोपम की ।

१७ पांचवें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २६ सागरोपम की, उत्कृष्ट २७ सागरोपम की।

१८ छठे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २७ सागरोपम की, उत्कृष्ट २८ सागरोपम की।

१९ सातवें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २८ सागरोपम की, उत्कृष्ट २९ सागरोपम की।

२० आठवें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २९ सागरोपम की, उत्कृष्ट ३० सागरोपम की।

२१ नववें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० ३० सागरोपम की, उत्कृष्ट ३१ सागरोपम की।

२२ चार अनुत्तर विमान के देवता की स्थिति ज० ३१ सागरोपम की, उ० ३३ सागरोपम की।

२३ सर्वार्थसिद्ध विमान के देवता की स्थिति अजघन्य—अनुत्कृष्ट ३३ सागरोपम की।

२१ समोहया असमोहयामरण

नारकी और देवता दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

२२ चवण—नारकी और भवनपति देवता से लगाकर यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में ज० १-२-३ यावत् संख्याता उ० असंख्याता च्यवे। नववें देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक समय में ज० १–२–३ उत्कृष्ट संख्याता च्यवे।

२३ गइ—पहली नारकी से लगाकार यावत् छठी नारकी तक दो गतियों से आवे और दो गतियों से जावे–तिर्यंचगति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों से आवे और दो दण्डकों में जावे–तिर्यंचपंचेन्द्रिय का २० वां और मनुष्य का २१ वां दण्डक ।

सातवीं नारकी में दो गतियों से आवे, तिर्यंच-गति से, मनुष्यगति से, और एक तिर्यंचगति में जावे । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों का आवे (२०-२१ वां दण्डक), एक तिर्यंचपंचेन्द्रिय (२० वां दण्डक) में जावे । भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और पहिले दूजे देवलोक का देवता दो गतियोंसे आवे और दो गतियोंमें जावे-तिर्यंच गति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दोय दण्डक का आवे, तिर्यंचपंचेन्द्रिय का और मनुष्य का और जावे पांच दण्डक में—पृथ्वीकाय का, अप्पकाय का, वनस्पतिकाय का, तिर्यंच–पंचेन्द्रिय का और मनुष्य का । तीजे देवलोक से लगाकर यावत् आटवें देवलोक तक गत्यागति पहली नरकवत् । नववें देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान के देवता एक गति से आवे और एक गति में जावे–मनुष्य-गति । दण्डक की अपेक्षा एक दण्डक से आवे और एक दण्डक में जावे, मनुष्य का दण्डक ।

२४ प्राण—नारकी और देवता में प्राण दस, दस ।

२५ योग—नारकी और देवता में योग तीनों ही ।

पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य का अधिकार कहते हैं—

१ शरीर—चार स्थावर—१ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेउकाउ, ४ वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य, इन पांचों में शरीर तीन—औदारिक, तैजस् और कार्मण। वायुकाय में शरीर चार—औदारिक, वैक्रिय, तैजस् और कार्मण।

२ अवगाहना—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाउ, वायुकाय और असन्नी मनुष्य इन पांचों की अवगाहना ज० अंगुल के असंख्यतावें भाग, उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग। किन्तु ज० से उत्कृष्ट असंख्यातगुणी। वनस्पति-काय की अवगाहना—ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन भाझेरी, कमलादि की अपेक्षा से।

३ संघयण—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में संघयण एक छेवट्ट।

४ संठाण—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में संठाण एक हुंडक।

५ कषाय—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में कषाय चार चार।

६ संज्ञा—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में संज्ञा चार चार।

७ लेश्या—पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय इन तीनों में लेश्या चार चार कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोतलेश्या और तेजोलेश्या। तेउकाउ, वायुकाय और असन्नी मनुष्य में लेश्या तीन तीन—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या।

८ इन्द्रिय—पांच स्थावर में इन्द्रिय एक—स्पर्शनेन्द्रिय। असन्नी मनुष्य में इन्द्रिय पांचों ही।

९ समुद्घात—चार स्थावर—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य इन पांचों में समुद्घात तीन तीन। वेदनीयसमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात। वायुकाय में समुद्घात चार—वेदनीयसमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और वैक्रियसमुद्घात।

१० सन्नी—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य असन्नी हैं, सन्नी नहीं।

११ वेद—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में वेद एक—नपुंसक।

१२ पज्जत्ति - पांच स्थावर में पर्याप्ति चार चार। आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति। असन्नी मनुष्य में चारों पर्याप्ति का अपर्याप्ता।

१३ दृष्टि—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में दृष्टि एक। मिथ्यादृष्टि।

१४ दर्शन—पांच स्थावर में दर्शन एक—अचक्षुदर्शन। असन्नी मनुष्य में दर्शन दो—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।

१५ नाण—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) नहीं। अन्नाण—पांच स्थावर और असन्नी

मनुष्य में अज्ञान (मिथ्याज्ञान) दो दो—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ।

१६ योग—चार स्थावर—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउ-काय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य इन पांचों में योग तीन तीन । औदारिकशरीरकाययोग, औदारिकमिश्रशरीर-काययोग और कार्मणशरीरकाययोग । वायुकाय में योग पांच । औदारिकशरीरकाययोग, औदारिकमिश्रशरीरकाय-योग, वैक्रियशरीरकाययोग, वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग और कार्मणशरीरकाययोग ।

१७ उपयोग—पांच स्थावरों में उपयोग तीन तीन--मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन । असन्नी मनुष्य में उपयोग चार—मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

१८ आहार—पांच स्थावर आहार २८८ भेदों का लेते हैं, जिसमें व्याघात की अपेक्षा सिय तीन दिशि का, सिय चार दिशि का, सिय पांच दिशि का और निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशि का । असन्नी मनुष्य आहार लेवे २८८ भेद का, जिसमें दिशि की अपेक्षा नियमा छह दिशि का ।

१६ उववाय—चार स्थावर में स्वस्थान की अपेक्षा समय समय असंख्याता उपजे और परस्थान की अपेक्षा समय समय में ज० १-२-३ जाव संख्याता, उत्कृष्ट असं-ख्याता उपजे, वनस्पतिकाय में स्वस्थान की अपेक्षा समय समय अनन्ता उपजे और परस्थान समय समय में जघन्य

१-२-३ जाव संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उपजे । असन्नी मनुष्य में ज० १-२-२ यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता उपजे ।

२० स्थिति—पृथ्वीकाय की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त्त की उ० २२००० वर्ष की,

अप्काय	,,	,,	७००० वर्ष की
तेउकाय	,,	,,	तीन अहोरात्रि की
वायुकाय	,,	,,	३००० वर्ष की
वनस्पतिकाय	,,	,,	१०००० वर्ष की
असन्नी मनुष्य की	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त्त की

२१ समोहया असमोहया मरण—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य दोनों प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ चवण—चार स्थावर में स्वस्थान की अपेक्षा समय समय असंख्याता च्यवे और परस्थान की अपेक्षा ज० १-२-३ यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे, वनस्पतिकाय में स्वस्थान की अपेक्षा समय समय अनंता च्यवे और परस्थान की अपेक्षा ज० १–२–३ यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे । असन्नी मनुष्य में ज० १–२–३ यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे ।

२३ गइआगइ—पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में तो तीन गति का आवे—तिर्यंचगति का, मनुष्यगति का और देवगति का और दो गति में जावे—तिर्यंचगति में और मनुष्यगति में । दण्डक की अपेक्षा २३ दण्डक का आवे—१० भवनपति, ५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १

तिर्यंचपंचेन्द्रिय, १ मनुष्य, १ वाणव्यन्तर, १ ज्योतिषी, १ वैमानिक का, और दस दण्डक में जावे—५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यंचपंचेन्द्रिय और १ मनुष्य में। तेउ-काय, वायुकाय में दो गति का आवे। तिर्यंचगति का और मनुष्यगति का और जावे एक तिर्यंचगति में। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे औदारिक की दस दण्डक उप-रोक्त। जावे नव दण्डक में—५ स्थावर ३ विकलेन्द्रिय और १ तिर्यंचपंचेन्द्रिय में और असन्नी मनुष्यगति में दो गति का आवे। तिर्यंचगति से और मनुष्यगति से और दो गति में जावे—तिर्यंचगति में और मनुष्यगति में और दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक का आवे—१, पृथ्वीकाय, १ अप्काय और १ वनस्पतिकाय, ३ विकलेन्द्रिय, तिर्यंच-पंचेन्द्रिय और मनुष्य का, जावे दस दण्डक में उपरोक्त औदारिक का।

२४ प्राण—पांच स्थावर में प्राण चार—स्पर्शनेन्द्रिय-प्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण और असन्नी मनुष्य में प्राण कुछ ऊणा आठ—पांच इन्द्रिय के, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुष्य-प्राण।

२५ योग—पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में योग एक काय का!

३ तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय का अधिकार कहते हैं—

१ शरीर—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-

पंचेन्द्रिय में शरीर तीन तीन - औदारिक, तैजस और कार्मण ।

२ अवगाहना—द्वीन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट १२ योजन की ।

त्रीन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट ३ गाउ (कोस) की ।

चतुरिन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट ४ गाउ की ।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांच भेद—

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प । जलचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें ाग, उत्कृष्ट १००० योजन की ।

स्थलचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) गाउ की । खेचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) धनुष की । उरपरिसर्प की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) योजन की ।

भुजपरिसर्प की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) धनुष की ।

३ संघयण - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच

पंचेन्द्रिय में संघयण एक छेवट्ट ।

४ संठाण—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संठाण एक हुण्डक ।

५ कषाय—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में कषाय चार चार ।

६ संज्ञा—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय संज्ञा चार चार ।

७ लेश्या—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में लेश्या तीन तीन—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या ।

८ इन्द्रिय—द्वीन्द्रिय में इन्द्रिय दो—रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । त्रीन्द्रिय में इन्द्रिय तीन—घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । चतुरिन्द्रिय में इन्द्रिय चार—चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । असन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में इन्द्रिय पांच-श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय ।

९ समुद्घात—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में समुद्घात तीन तीन—वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक ।

१० सन्नी—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय सन्नी नहीं, असन्नी हैं ।

११—वेद—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में वेद एक—नपुंसक ।

१२ पज्जत्ति—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में पर्याप्ति पांच पांच आहारपर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषा-पर्याप्ति ।

१३ दृष्टि—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में दृष्टि दो दो सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि ।

१४ दर्शन—द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय में दर्शन एक अचक्षु । चतुरिन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय में दर्शन दो दो—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

१५ नाण—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में ज्ञान दो दो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान । अन्नाण—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में अज्ञान दो दो—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान ।

१६ योग—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में योग चार चार—व्यवहारवचनयोग, औदारिक-शरीरकाययोग, औदारिकमिश्रशरीरकाययोग और कार्मण-शरीरकाययोग ।

१७ उपयोग—द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय में उपयोग पांच पांच – दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक अचक्षुदर्शन, चतुरि-न्द्रिय और असन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में उपयोग छह छह—दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ।

१८ आहार—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में आहार २८८ भेद का लेते हैं, जिसमें दिशि की अपेक्षा नियमा छह दिशि का।

१९ उववाय—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में एक समय में जघन्य एक, दो, तीन यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उपजे।

२० स्थिति—द्वीन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट १२ वर्ष की। त्रीन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट ४९ अहोरात्रि की। चतुरिन्द्रिय की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट छह महीना की।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांच भेद—

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। जलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की। स्थलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट ८४ हजार वर्ष की। खेचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट ७२ हजार वर्ष की। उरपरिसर्प की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट ५३ हजार वर्ष की। भुजपरिसर्प की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट ४२ हजार वर्ष की।

२१ समोहया असमोहया मरण—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय दोनों प्रकार के मरण मरते हैं।

२२ चवण—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-

पंचेन्द्रिय में एक समय में जघन्य १–२–३ यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे ।

२३ गइ आगइ—तीन विकलेन्द्रिय में दो गति का आवे और दो गति में जावे। तिर्यंचगति और मनुष्यगति। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक का आवे और दस दण्डक में जावे—दस दण्डक औदारिक का । और असन्नी तिर्यंच में दो गति का आवे। तिर्यंचगति और मनुष्यगनि का और जावे चार गति में—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति में और दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक का आवे—दस दण्डक औदारिक का, और जावे २२ दण्डक में—१ नारकी, १० भवनपति ५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यंचपंचेन्द्रिय, १ मनुष्य और १ वाणव्यन्तर का ।

२४ प्राण—द्वीन्द्रिय में प्राण छह—रसनेन्द्रिय प्राण स्पर्शनेन्द्रिय प्राण, वचनबलप्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण । त्रीन्द्रिय में प्राण सात—घ्राणेन्द्रियप्राण,रसनेन्द्रियप्राण,स्पर्शनेन्द्रियप्राण, वचनबलप्राण, कायबलप्राण, श्वसोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण । चतुरिन्द्रिय में प्राण आठ—चक्षुरिन्द्रियप्राण और सात पूर्वोक्त । असन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में प्राण नव—श्रोत्रेन्द्रियप्राण और आठ पूर्वोक्त ।

२५ योग—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में योग दो–दो—वचन और काया का ।

सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय का अधिकार कहते हैं—

१ शरीर—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में शरीर चार—

औदारिक, वैक्रिय, तैजस् और कार्मण।

२ अवगाहना—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय के पांच भेद—जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। जलचर की अवगाहना ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट १००० योजन की।

स्थलचर की अवगाहना ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट ६ गाउ की।

खेचर की अवगाहना ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष की।

उरपरिसर्प की अवगाहना ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट १००० योजन की।

भुजपरिसर्प की अवगाहना ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक गाउ की।

सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय वैक्रियशरीर करे तो अवगाहना ज० अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (ज० २०० उत्कृष्ट ९००) योजन की।

३ संघयण—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में संघयण छहों ही।

४ संठाण—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में संठाण छहों ही।

४ कषाय—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में कषाय चारों ही।

६ संज्ञा—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में संज्ञा चारों ही।

७ लेश्या—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में लेश्या छहों ही।

८ इन्द्रिय—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में इन्द्रिय पांचों ही।

९ समुद्घात—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में समुद्घात पांच—वेदनीय, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय और तैजस।

१० सन्नी—तिर्यंचपंचेन्द्रिय सन्नी हैं असन्नी नहीं।

११ वेद—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में वेद तीनों ही।

१२ पज्जत्ति—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में पर्याप्ति पावे छहों ही।

१३ दृष्टि—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में दृष्टि पावे तीनों ही।

१४ दर्शन—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में दर्शन पावे तीन-चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन और अवधि दर्शन।

१५ नाण—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में ज्ञान पावे तीन—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधि ज्ञान। अन्नाण- सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में अज्ञान पावे तीनों ही।

१६ जोग—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में योग पावे १३—चार मन का, ४ वचन का और ५ काया का, औदारिक शरीर काययोग, औदारिक मिश्रशरीर काययोग, वैक्रिय शरीर काययोग, वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग और कार्मण शरीर काययोग।

१७ उपयोग—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में उपयोग पावे नव–३ ज्ञान, अज्ञान और ३ दर्शन ।

१८ आहार – सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय आहार २८८ भेद का लेते हैं जिसमें दिशि आसरी नियमा छह दिशि का ।

१९ उववाय—सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एक समय में ज० १–२–३ यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता उपजे ।

२० स्थिति—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय के पांच भेद—जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प भुजपरिसर्प ।

जलचर की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की ।

स्थलचर की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम की ।

खेचर की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की ।

उरपरिसर्प की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की ।

भुजपरिसर्प की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की ।

२१ समोहया असमोहया मरण—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय दोनों प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ चवण—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय एक समय में ज० १–२–३ यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे ।

२३ गइ—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय गति आसरी चारों गति में आवे और चारों गति में जावे और दण्डक आसरी २४ दण्डक का आवे और २४ दण्डक में जावे ।

२४ प्राण—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में योग पावे दसों ही ।

२५ जोग—सन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में योग पावे तीनों ही ।

गर्भज मनुष्य का अधिकार कहते हैं—

१ शरीर—गर्भज मनुष्य में शरीर पावे पांचों ही ।

२ अवगाहना—गर्भज मनुष्य की अवगाहना ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग, उप्कृष्ट तीन गाउ की ।

छह आरो की अपेक्षा से मनुष्यों की अवगाहना को कहते हैं । अवसर्पिणी काल में लगाते पहिले आरे की अवगाहना ज० तीन गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट तीन गाउ पूरी ।

पहिले आरे उतरते ज० दो गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट दो गाउ पूरी ।

दूजे आरे लगते ज० दो गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट दो गाउ पूरी ।

दूजे आरे उतरते ज० एक गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट एक गाउ पूरी ।

तीजे आरे लगाते ज० एक गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट

एक गाउ पूरी ।

तीजे आरे उतरते ज० ५०० धनुष देसऊणी, उत्कृष्ट ५०० धनुष की पूरी ।

चौथे आरे लगाते ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट ५०० धनुष की पूरी ।

चौथे आरे उतरते ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट सात हाथ की ।

पांचवें आरे लगते ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट सात हाथ की ।

पांचवें आरे उतरते ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट एक हाथ की ।

छट्ठे आरे लगते ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट एक हाथ की ।

छट्ठे आरे उतरते ज० अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट एक मुण्ड हाथ की ।

उत्सर्पिणी काल के छहों आरों का अवगाहना इनसे उल्टी यथायोग्य समझ लेनी चाहिये ।

मनुष्य में वैक्रिय शरीर करे तो अवगाहना जघन्य अंगुल के सं० भाग, उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी ।

३ संघयण – गर्भज मनुष्य में संघयण पावे छहों ही ।

४ संठाण—गर्भज मनुष्य में संठाण पावे छहों ही ।

५ कषाय—गर्भज मनुष्य में कषाय पावे चारों ही तथा अकषाई ।

६ संज्ञा—गर्भज मनुष्य में संज्ञा पावे चारों ही तथा नोसन्नोवउत्ता ।

७ लेश्या—गर्भज मनुष्य में लेश्या पावे छहों ही, तथा अलेशी ।

८ इन्द्रिय—गर्भज मनुष्य में इन्द्रिय पावे पांचों ही, तथा अनिन्द्रिय ।

९ समुद्घात—गर्भज मनुष्य में समुद्घात पावे सातों ही ।

१० सन्नी—गर्भज मनुष्य सन्नी हैं, असन्नी नहीं तथा तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान आसरी नोसन्नी नोसन्नी हैं ।

११ वेद—गर्भज मनुष्य में वेद पावे तीनों ही, तथा अवेदी है ।

१२ पज्जति—गर्भज मनुष्य में पर्याप्ति पावे छहों ही ।

१३ दृष्टि—गर्भज मनुष्य में दृष्टि पावे तीनों ही ।

१४ दर्शन—गर्भज मनुष्य में दर्शन पावे चारों ही ।

१५ नाण—गर्भज मनुष्य में ज्ञान पावे पांचों ही ।

अन्नाण—गर्भज मनुष्य में अज्ञान पावे तीनों ही ।

१६ योग—गर्भज मनुष्य में योग पावे पन्द्रह, तथा अयोगी ।

१७ उपयोग–गर्भज मनुष्य में उपयोग पावे बारह ही।

१८ आहार––गर्भज मनुष्य २८८ बोलों का आहार लेते हैं, जिनमें दिशी आसरी नियमा छहुं दिशी का तथा अनाहारिक।

१९ उववाय––गर्भज मनुष्य एक समय में ज० १-२-३ उत्कृष्ट संख्याता उपजे।

२० स्थिति––गर्भज मनुष्य की स्थिति जघन्य अन्तमुहूर्त की उत्कृष्ट ३ पल्योपम की।

छह आरों की अपेक्षा से गर्भज मनुष्यों की स्थिति को कहते हैं––अवसर्पिणी काल के पहिले आरे लागते ज० ३ पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट ६ पल्योपम पूरी।

पहिले आरे उतरते ज० पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट २ पल्योपम पूरी।

दूजे आरे लागते ज० २ पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट २ पल्योपम पूरी।

दूजे आरे उतरते ज० १ पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट १ पल्योपम पूरी।

तीजे आरे लागते ज० १ पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट एक पल्योपम पूरी।

तीजे आरे उतरते ज० क्रोड़पूर्व देसऊणी उत्कृष्ट क्रोड़पूर्व पूरी।

चौथे आरे लागते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक क्रोड़पूर्व पूरी ।

चौथे आरे उतरते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट १०० वर्ष झाझेरी ।

पांचवें आरे लागते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट १०० वर्ष झाझेरी ।

पांचवें आरे उतरते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट २० वर्ष की ।

छठे आरे लागते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट २० वर्ष की ।

छठे आरे उतरते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट १६ वर्ष की ।

उत्सर्पिणी काल के छहों आरों की स्थिति यथायोग्य उलटी समझ लेना ।

२१ समोहया असमोहया मरण—गर्भज मनुष्य दोनों प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ चवण –गर्भज मनुष्य एक समय में ज० १-२-३ उत्कृष्ट संख्याता च्यवे ।

२३ गइ –गर्भज मनुष्य चार गति से आवे—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति और जावे पांच गति में—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति और मोक्ष-गति । दण्डक की अपेक्षा २४ दण्डक से आवे और २४ दण्डक में तथा मोक्ष में जावे ।

२४ प्राण—गर्भज मनुष्य में प्राण दसों ही ।

२५ योग—गर्भज मनुष्य में योग तीन ही तथा अयोगी ।

८६ जुगलिया के अधिकार को कहते हैं:—

जुगलिया के ८६ भेद हैं—

५ हैमवत, ५ हैरण्यवत, ५ हरिवास, ५ रम्यकवास, ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु और ५६ अन्तर्द्वीप ।

१ शरीर—छयासी जुगलियों में शरीर तीन–औदारिक, तैजस् और कार्मण ।

२ अवगाहना—पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत इन दसों क्षेत्रों के मनुष्यों की अवगाहना ज० देसऊणा एक गाउ की उत्कृष्ट एक गाउ पूरी । पांच हरिवास और पांच रम्यकवास इन दसों क्षेत्रों के मनुष्यों की अवगाहना ज० देसऊणा दो गाउ की, उत्कृष्ट दो गाउ पूरी । पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु इन दसों क्षेत्रों के मनुष्यों की अवगाहना ज० देसऊणा तीन गाउ की, उत्कृष्ट तीन गाउ पूरी ।

छप्पन अन्तर्दीपों के मनुष्यों की अवगाहना ज० देसऊणा आठ सौ धनुष की, उत्कृष्ट आठ सौ धनुष की पूरी ।

३ संघयण—छयासी जुगलियों में संघयण एक—वज्रऋषभनाराच ।

४ संठाण—छयासी जुगलियों में संठाण एक—समचतुरंस ।

५ कषाय—छयासी जुगलियों में कषाय चारों ही।

६ संज्ञा—छयासी जुगलियों में संज्ञा चारों ही।

७ लेश्या—छयासी जुगलियों में लेश्या चार—कृष्ण, नील, कापोत और तेजो।

८ इन्द्रिय—छयासी जुगलियों में इन्द्रिय पाँचों ही।

९ समुद्घात—छयासी जुगलियों में समुद्घात तीन—वेदनीय, कषाय और मारणांतिक।

१० सन्नी—छयासी जुगलिया सन्नी हैं, असन्नी नहीं।

११ वेद—छयासी जुगलियों में वेद दो—स्त्रीवेद और पुरुषवेद।

१२ पज्जत्ति—छयासी जुगलियों में पर्याप्ति छहों ही।

१३ दृष्टि—तीस अकर्मभूमि में दृष्टि दो—सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि और छप्पन अन्तर्द्वीपों में दृष्टि एक मिथ्यादृष्टि।

१४ दर्शन—छयासी जुगलियों में दर्शन दो—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।

१५ नाण—तीस अकर्मभूमि में ज्ञान दो—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, और छप्पन अन्तर्दीपों में ज्ञान नहीं।

अन्नाण—छयासी जुगलियों में अज्ञान दो—मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान।

१६ योग—छयासी जुगलियों में योग ग्यारह—४

मन का, ४ वचन का, औदारिकशरीरकाययोग, औदारिक-मिश्रशरीरकाययोग और कार्मणशरीरकाययोग ।

१७ उपयोग—तीस अकर्मभूमि में उपयोग छह—दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन और छप्पन अन्तर्द्वीपों में चार—दो अज्ञान और दो दर्शन ।

१८ आहार—छयासी जुगलियों में २८८ बोल का आहार लेते हैं, जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का ।

१९ उववाय—छयासी जुगलियों में एक समय में ज० १-२-३, उत्कृष्ट संख्याता उपजे ।

२० स्थिति—पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत इन दसों क्षेत्रों के मनुष्यों की स्थिति ज० देसऊणा एक पल्योपम की, उप्कृष्ट एक पल्योपम की । पांच हरिवास और पांच रम्यकवास इन दसों क्षेत्रों के मनुष्यों की स्थिति ज० देसऊणा दो पल्योपम की, उत्कृष्ट दो पल्योपम की । पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु इन दसों क्षेत्रों के मनुष्यों की स्थिति ज० देसऊणा तीन पल्योपम की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की ।

छप्पन अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग जिसमें ज० पल्योपम के असंख्यातवें भाग ऊणी, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग ।

२१ समोहया असमोहया मरण—छयासी जुगलिया दोनों प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ चवण—छयासी जुगलिया एक समय में ज० १-२-३, उत्कृष्ट संख्याता च्यवे ।

२३ गइ - छयासी जुगलिया दो गति से आवे—तिर्यंचगति से और मनुष्यगति से और जावे एक देवगति में । दण्डक की अपेक्षा तीस अकर्मभूमि में दो दण्डक का आवे —तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य का और जावे तेरह दण्डक में—१० भुवनपत्ति, १ वाणव्यन्तर, १ ज्योतिषी और १ वैमानिक । छप्पन अन्तर्द्वीपों में दो दण्डक का आवे —तिर्यंचपंचेन्द्रिय का और मनुष्य का, और जावे ग्यारह दण्डक में —१० भुवनपति और १ वाणव्यन्तर ।

२४ प्राण—छयासी जुगलियों में प्राण दसों ही ।

२५ योग—छयासी जुगलियों में योग तीनों ही ।

सिद्ध भगवान का अधिकार कहते हैं—

१ शरीर—सिद्ध भगवान में शरीर नहीं, अशरीर हैं ।

२ अवगाहना सिद्ध भगवान के आत्मप्रदेशों की अवगाहना ज० एक हाथ और अष्ट अंगुल की, मुख्य चार हाथ और सोलह अंगुल की, उत्कृष्ट ३३३ धनुष और ३२ अंगुल की ।

३ संघयण—सिद्ध भगवान् में कोई संघयण नहीं ।

४ संठाण—सिद्ध भगवान् में कोई संठाण नहीं ।

५ कषाय—सिद्ध भगवान् में कषाय नहीं, अकषायी हैं ।

६ संज्ञा—सिद्ध भगवान् में संज्ञा नहीं, नोसन्नोवउत्ता हैं ।

७ लेश्या—सिद्ध भगवान् में लेश्या नहीं, अलेशी हैं ।

८ इन्द्रिय—सिद्ध भगवान् में इन्द्रिय नहीं, अइन्द्रिय हैं ।

९ समुद्घात—सिद्ध भगवान् में समुद्घात नहीं ।

१० सन्नी—सिद्ध भगवान् सन्नी और असन्नी नहीं, नोसन्नी—नोऽसन्नी हैं ।

११ वेद—सिद्ध भगवान् में वेद नहीं अवेदी हैं ।

१२ पज्जत्ति—सिद्ध भगवान् में पर्याप्त और अपर्याप्त नहीं, नोपर्याप्त नोऽपर्याप्ता हैं ।

१३ दृष्टि—सिद्ध भगवान् में दृष्टि एक—सम्यक्-दृष्टि ।

१४ दर्शन—सिद्ध भगवान् में दर्शन एक—केवल-दर्शन ।

१५ नाण—सिद्ध भगवान् में ज्ञान—एक—केवलज्ञान, अज्ञान नहीं ।

१६ योग—सिद्ध भगवान् में योग नहीं, अयोगी हैं ।

१७ उपयोग—सिद्ध भगवान में उपयोग दो—केवल-ज्ञान और केवलदर्शन ।

१८ आहार—सिद्ध भगवान् आहारक नहीं, अनाहारक हैं ।

१६ उववाय—सिद्ध भगवान् एक समय में ज० १-२-३, उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होवे ।

२० स्थिति—एक सिद्ध भगवान की अपेक्षा आदि अनंत और घणा सिद्ध भगवान् की अपेक्षा अनादि अनंत ।

२० समोहया असमोहया मरण—सिद्ध भगवान् में मरण नहीं ।

२२ चवण—सिद्ध भगवान् में चवण नहीं

२३—गइ—सिद्ध भगवान में आगति एक मनुष्यगति की और गति नहीं । दण्डक की अपेक्षा एक मनुष्य का आवे और गति नहीं ।

२४ प्राण—सिद्ध भगवान् में द्रव्यप्राण नहीं और भावप्राण चार हैं । सुख, सत्ता, चैतन्य और बोध ।

२५ योग—सिद्ध भगवान् में योग नहीं, अयोगी हैं ।

काल का माप

समय किसको कहते हैं ? एक वख्त आंख खोले या टमकारे इसमें असंख्याता समय होते हैं ।

आवलिका किसको कहते हैं ? एक श्वासोश्वास में संख्याता आवलिका होती हैं ।

श्वासोश्वास किसको कहते हैं ? निरोग पुरुष की नाड़ी के एकबार चलने को श्वासोश्वास काल कहते हैं ।

क्रोडाक्रोडी किसको कहते हैं ? एक क्रोड को एक क्रोड से गुणा करने पर जो लब्ध हो, उसको एक क्रोडाक्रोडी कहते हैं।

मुहूर्त्त किसको कहते हैं ? अड़तालीस मिनिट का एक मुहूर्त्त होता है। अन्तर-मुहूर्त्त किसको कहते हैं ? आवलिका से ऊपर और मुहूर्त्त के भीतर के काल को अन्तर मुहूर्त्त कहते हैं। एक मुहूर्त्त में कितनी आवलिका होती है। एक मुहूर्त्त में १६७७७२१६ एक करोड़ सिड़सट लाख सित्योतर हजार दोयसो सोला आवलिका होती है। एक मुहूर्त्त में (४८ मिनिट में) कितने श्वासोश्वास होते है ? तीन हजार सात सो तिहत्तर (३७७३) होते हैं। तीस मुहूर्त्तों का अहोरात्र रूप एक दिन होता है। पंद्रह दिनों का एक पक्ष होता है। दो पक्ष का एक मास होता है, वारह मास का १ वर्ष होता है, असंख्य वर्षों का एक पल्योपम होता है। पल्योपम किसको कहते हैं ? चार कोस को कुवो लम्बो, च्यार कोस को चवड़ो, च्यार कोस को उंडो, तीन गुणी झाझेरी परधि। उस कुवे को देवकुरु-उतरकुरु के जुगलियों का वालाग्र (केश) एक दिन के उगे हुवे जाव सात दिन के उगे हुवे हों, उनका (एक-एक वालाग्र का) असंख्याता २ खण्डवा (टुकड़ा) करे, जो आंख में घाले तो रड़के नहीं (मालूम पड़े नहीं), चक्षु इन्द्री के अवघेणा से अनन्तगुणा छोटा सूक्ष्म पृथ्वीकाय के शरीर से अनन्तगुणा बड़ा, वादर पृथ्वीकाय के शरीर जितना उन वालों से उस कुवे को कांठा तक भरे, पांच ओपमा करके सहित चक्रवर्ती की सेना ऊपर होकर निकल जावे तो भी एक खण्डवा मुचे (डीगे) नहीं, दावानल अग्नि लाग जावे

तो एक खंडवो बले नहीं, पुष्करावत्त मेह वर्षे तो भी एक खण्डवो भिजे नहीं, अनुकूल-प्रतिकूल वायरो वाजे तो भी एक खण्डवो ऊड़े नहीं, गंगा-सिंधु नदी को पाट ऊपर कर वह जावे तो भी एक बाल बेवे नहीं, इस तरह को काठो कुवो भरे, सौ-सौ बरस में एक-एक खण्डवो निकाले, निर्लेपपणे सब कुवो (आंखो कुवो) खाली हो जावे, उसको एक पल्योपम कहिये ।

सागरोपम किसको कहते हैं ? दस क्रोडाक्रोड कुवा खाली हो जावे याने दस क्रोडाक्रोड पल्योपम का एक सागरोपम होता है । दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की एक अवसर्प्पिणी होती है तथा दूसरा दश क्रोडाक्रोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी होती है । अवसर्प्पिणी और उत्सर्प्पिणी मिलकर एक कालचक्र होता है, ऐसे अनन्त कालचक्र बीतने पर एक पुद्गलपरावर्त्तन होता है ।

नोट—"एक भरत ऐरवत के मनुष्य के बालाग्र में देवकुरु–उत्तरकुरु के जुगलियों केस ४०९६ होते हैं ।"



भाग ४

१. आशीविष का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवां, उद्देशा दूसरा)

१. अहो भगवन् ! आशीविष ❀ कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! आशीविष दो प्रकार का है—जाति आशीविष और कर्मआशीविष ।

❀ आशीविष-आशी का अर्थ है—डाढ़ । जिन जीवों के डाढ़ में विष होता है उनको आशीविष कहते हैं । आशीविष प्राणियों के भेद हैं—जाति आशीविष और कर्म आशीविष । सांप विच्छू आदि प्राणी जाति (जन्म) से ही आशीविष वाले होते हैं, इसलिए उन्हें जातिआशीविष कहते हैं ।

जो कर्म द्वारा अर्थात् शॉप (श्राप) आदि द्वारा प्राणियों का नाश करते हैं उनको कर्मआशीविष कहते हैं । पर्याप्त तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य को तपश्चर्या आदि से अथवा और कोई दूसरे कारण से आशीविषलब्धि उत्पन्न हो जाती है । इसलिये वे शाप (श्राप) आदि देकर दूसरे का नाश करने की शक्ति वाले होते हैं । ये जीव आशीविषलब्धि के स्वभाव से आठवें देवलोक से आगे उत्पन्न नहीं हो सकते हैं । वे देव अपर्याप्त अवस्था तक कर्म-आशीविष वाले होते हैं ।

२ अहो भगवन् ! जाति आशीविष कितने प्रकार है ? हे गौतम ! चार प्रकार का है—१ वृश्चिक (बिच्छू) जाति आशीविष, २ मण्डक, (मेंढ़क) जाति आशीविष, ३ उरग (सांप) जाति आशीविष, ४ मनुष्य जाति आशीविष ।

३ जाति आशीविष का कितना विषय है ? हे गौतम ! वृश्चिकजातिआशीविष का विषय* अर्द्धभरत प्रमाण है । मण्डूकजातिआशीविष का विषय भरतक्षेत्र प्रमाण है । उरगजातिआशीविष का विषय जम्बूद्वीप प्रमाण है । मनुष्यजातिआशीविष का विषय समयक्षेत्र (अढ़ाई-द्वीप) प्रमाण है । यह इनका विषय है, किन्तु ऐसा कभी किया नहीं, करते नहीं और करेंगे नहीं ।

४- अहो भगवन् ! कर्मआशीविष कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! तीन प्रकार का है—१ मनुष्य, २ तिर्यंच, ३ देवता । १५ कर्मभूमि के मनुष्य और ५ सन्नी तिर्यंच इन २० बोलों के पर्याप्त को में और भवनपति से लेकर आठवें देवलोक के देवता के अपर्याप्तकों में कर्मआशीविष होता है ।

५—छद्मस्थ (अवधि आदि विशिष्ट ज्ञानरहित) दस

---

*असत्कल्पना से जैसे किसी मनुष्य ने अर्द्ध भरत प्रमाण अपना शरीर बनाया हो उसके पांव बिच्छू डंक दे तो उसके मस्तक तक उसका जहर चढ़ जाता है, इस तरह चारों ही समझ लेना ।

बातों को सर्वभाव से (साक्षात् प्रत्यक्षरूप से) नहीं जानता, नहीं देखता है—१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ अशरीरी जीव (मुक्तजीव), ५ परमाणु-पुद्गल, ६ शब्द, ७ गन्ध, ८ वायु, ९ यह जीव जिन (तीर्थङ्कर) होगा या नहीं, १० यह जीव सिद्ध होगा या नहीं।

केवलज्ञानी भगवान् इन सब को सर्व भाव से (साक्षात् ज्ञान से) जानते-देखते हैं।

---

२. पांच ज्ञान का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक आठवां उद्देशा दूसरा)

१ अहो भगवन् ! ज्ञान के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! ज्ञान के पांच भेद हैं—१ मतिज्ञान (आभिनिबोधिकज्ञान), २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मनःपर्ययज्ञान, ५ केवलज्ञान।

संक्षेप में ज्ञान के दो भेद हैं - प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रप्यक्ष के दो भेद—इन्द्रियप्रत्यक्ष, नोइन्द्रियप्रत्यक्ष। इन्द्रिय-प्रत्यक्ष के ५ भेद—१ स्पर्शनेन्द्रियप्रत्यक्ष, २ रसेन्द्रियप्रत्यक्ष, ३ घ्राणेन्द्रियप्रत्यक्ष, ४ चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्ष, ५ श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्ष। नोइन्द्रियप्रत्यक्ष के तीन भेद—अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान,

केवलज्ञान । अवधिज्ञान के २ भेद❀—पडियाई (प्रतिपाती) अपडिवाई (अप्रतिपाती) ।

मनःपर्ययज्ञान के दो भेद—ऋजुमति, विपुलमति । मनुष्य, गर्भज, कर्मभूमिज, संख्याता वर्ष की आयु वाला, पर्याप्त, समदृष्टि, संयती, अप्रमादी, लब्धिवन्त इन ९ बोल वाले जीव को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है ।

केवलज्ञान के ३ भेद—सयोगी, अयोगी, सिद्ध । सयोगी केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थान वाले जीव को होता है । अयोगी केवलज्ञान चौदहवें गुणस्थान वाले जीव को होता है । सिद्धकेवलज्ञान के २ भेद—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान, परम्परसिद्धकेवलज्ञान । अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान के १५ भेद—१ तीर्थसिद्ध, २ अतीर्थसिद्ध, ३ तीर्थङ्करसिद्ध, ४ अतीर्थकर-सिद्ध, ५ स्वयंबुद्धसिद्ध, ६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध, ७ बुद्धबोधित-सिद्ध, ८ स्त्रीलिङ्गसिद्ध, ९ पुरुषलिंगसिद्ध, १० नपुंसक-लिंगसिद्ध, ११ स्वलिंगसिद्ध, १२ अन्यलिंगसिद्ध, १३ गृहस्थ-लिंगसिद्ध, १४ एकसिद्ध, १५ अनेकसिद्ध ।

परम्परसिद्धकेवलज्ञान के १३ भेद—१ अपढमसमय-सिद्ध, २ द्विसमयसिद्ध, ३ तिसमयसिद्ध, ४ चतुसमयसिद्ध, ५ पंचसमयसिद्ध, ६ षट्समयसिद्ध, ७ सप्तसमयसिद्ध, ८ अष्टसमयसिद्ध, ९ नवसमयसिद्ध, १० दससमयसिद्ध, ११ संख-

---

❀ अवधिज्ञान का विशेष विस्तार श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़ों के तीसरे भाग में दिया गया है ।

यातसमयसिद्ध, १२ असंख्यातसमयसिद्ध, १३ अनन्तसमयसिद्ध ।

परोक्षज्ञान के २ भेद—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान । मतिज्ञान के ३६० भेद—मतिज्ञान के २ भेद—श्रुतनिश्रित, अश्रुतनिश्रित । अश्रुतनिश्रत के ४ भेद÷(चार वुद्धि) १ उप्पत्तिया (औत्पत्तिकी) २ वेणइया (वैनयिकी), ३ कम्मिमया (कर्मजा), ४ परिणामिया (पारिणामिकी) । श्रुतनिश्रित के ४ भेद—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा । अवग्रह

÷१—जो बुद्धि बिना देखे, सुने और बिना सोचे हुए पदार्थों को सहसा ग्रहण करके कार्य को सिद्ध कर देती है उसे उप्पत्तिया (उत्पातिया-औत्पत्तिकी) बुद्धि कहते हैं, जैसे नटपुत्र रोह की बुद्धि थी ।

२—गुरु महाराज की सेवा शुश्रूषा करने से जो वुद्धि प्राप्त होती है उसे वैनयिकी बुद्धि कहते हैं, जैसे—नैमित्तिक सिद्धपुत्र के शिष्यों की थी ।

३—कार्य करते करते जो बुद्धि प्राप्त हो, उसे कम्मिमया (कर्मजा) बुद्धि कहते हैं । जैसे—सुनार, किसान आदि कार्य करते–करते अपने धन्धे में विशेष होशियार हो जाते हैं ।

४—वहुत काल तक संसार के अनुभव से जो वुद्धि प्राप्त होती है उसको परिणामिया (परिणामिकी) वुद्धि कहते हैं ।

के २ भेद—अर्थावग्रह, व्यञ्जनाग्रह । अर्थावग्रह पांच इन्द्रिय और छठे मन से होता है । व्यञ्जनावग्रह चार इन्द्रियों (श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय) से होता है । अर्थावग्रह की तरह ईहा, अवाय, धारणा के ६—६ भेद होते हैं । इस तरह कुल २८ (व्यञ्जनावग्रह के ४, अर्थावग्रह के ६, ईहा के ६, अवाय के ६, धारणा के ६= २८) भेद हुए । इन २८ को+बहु, अबहु (अल्प), बहुविध, अबहुविध (अल्पविध), क्षिप्र, अक्षिप्र, निश्रित, अनिश्रित, संदिग्ध, असंदिग्ध, ध्रुव, अध्रुव, इन १२ से गुणा करने से २८×१२=३३६ भेद होते हैं अश्रुतनिश्रित के ४ भेद मिलाने से ३३६+४=३४० भेद हुए ।

+(१—२) बहुग्राही, अबहुग्राही (अल्पग्राही)—बहु का मतलब अनेक है और अबहु(अल्प)का मतलब एक है । जैसे दो या दो से अधिक पदार्थों को जानने वाले अवग्रह आदि ज्ञान बहुग्रही कहलाते हैं और एक पदार्थ को जानने वाले अवग्रहादि ज्ञान अबहुग्राही (एकग्राही) कहलाते हैं ।

(३—४) बहुविधग्राही, अबहुविधग्राही (अल्पविधग्राही) बहुविध का मतलब अनेक प्रकार से है और अबहुविध (अल्पविध) का मतलब एक प्रकार (तरीका) से है । जैसे—किसी एक पदार्थ को उसके आकार-प्रकार, रूप-रंग लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि विविध प्रकार से जानना बहुविधग्राही कहलाता है और किसी पदार्थ को उसके आकार-प्रकार, रंग आदि में से किसी एक ही तरह (तरीके) से जानना अबहुविधग्राही—अल्पविधग्राही कहलाता है ।

वहु और अवहु का मतलब पदार्थ की संख्या से है। तथा वहुविध और अबहुविध का मतलव प्रकार, किस्म, जाति, तरीके की संख्या से है। यही दोनों का अन्तर है।

(५-६) क्षिप्रग्राही, अशिप्रग्राही—शीघ्र जानने वाले अवग्रह आदि को क्षिप्रग्राही और विलम्ब से जानने वाले को अक्षिप्रग्राही कहते हैं।

(७-८) निश्रितग्राही, अनिश्रितग्राही—किसी भी पदार्थ को अनुमान द्वारा जानना निश्रितग्राही है, जैसे—शीत, कोमल स्पर्श से तथा गन्ध से फूलों का ज्ञान करना। किसी भी पदार्थ को अनुमान के विना ही जान लेना अनिश्रितग्राही अवग्रह आदि है।

(९—१०) संदिग्धग्राही, असंदिग्धग्राही—सन्देहयुक्त ज्ञान को संदिग्धग्राही कहते हैं और निश्चित रूप से जानने वाले ज्ञान को असंदिग्धग्राही कहते हैं।

(११-१२) ध्रुवग्राही, अध्रुवग्राही—ध्रुव का मतलब अवश्यम्भावी और अध्रुव का मतलब कदाचितभावी है। सामग्री होने पर विषय को अवश्य जानने वाले ज्ञान को ध्रुवग्राही कहते हैं और सामग्री होने पर भी क्षयोपशम की मन्दता के कारण विषय को कभी ग्रहण करने वाले और कभी ग्रहण न करने वाले अवग्राहादि ज्ञान को अध्रुवग्राही कहते हैं।

❀एगट्ठिया के २० भेद मिलाने से ३४०+२०= ३६० भेद हुए ।

❀ एगट्ठिया (एकार्थक शब्द) के २० भेद इस प्रकार हैं—अवग्रह के ५ नाम—ओगेण्हणया-(अवग्रहणता)—प्रथम समय में आये हुए शब्दादि पुद्गलों का ग्रहण करना अवग्रहणता कहलाता है । २ उवधारणया (उपधारणता)—व्यञ्जनावग्रह के दूसरे तीसरे आदि समयों में नवीन नवीन शब्द आदि पुद्गलों का प्रतिसमय ग्रहण करना और पहले ग्रहण किये हुए का धारण करना उपधारणता कहलाती है । ३ सवणया (श्रवणता)- एक समय में होने वाला सामान्यरूप से अर्थग्रहणरूप बोध श्रवणता कहलाती है । ४ अवलम्बणया (अवलंबनता)—अर्थ को ग्रहण करना अवलम्बनता कहलाती है । ५ मेहा (मेघा)—बुद्धि को मेघा कहते हैं ।

ईहा के ५ नाम सामान्यरूप से एकार्थक होते हुए भी विशेष में भिन्नार्थक हैं । जैसे १. आभोगणया (आभोगनता)- अर्थावग्रह के बाद ही सद्भूत अर्थविशेष का आलोचन करना आभोगनता है । २. मग्गणया (मार्गणता) अन्वय और व्यतिरेक धर्म का अन्वेषण करना मार्गणता है । ३, गवेसणया (गवेषणता) व्यतिरेक अर्थात् विरुद्ध धर्म के त्यागपूर्वक अन्वयधर्म की आलोचना करना गवेषणता है । ४ चिंता (चिन्ता)—सद्भूत अर्थ का बारम्बार चिन्तन करना चिन्ता है । ५. वीमंसा (विमर्श)—सद्भूत अर्थ का स्पष्ट विचार करना विमर्श है ।

अवाय के ५ नाम—१ आउट्टणया (आवर्तनता)—ईहा से आगे बढ़ कर अवाय के सन्मुख रहने वाला ज्ञान आवर्तनता है। २ पच्चाउट्टाणया (प्रत्यावर्तनता)—आवर्तनता से आगे बढने वाला ज्ञान प्रत्यावर्तनता है। ३ अवाए (अवाय) ईहा से सर्वथा निवृत्त पदार्थ का ज्ञान अवाय है। ४ बुद्धि—निर्णय किये हुए उसी अर्थ को स्थिरता पूर्वक वारम्वार स्पष्ट रूप में जानना बुद्धि है। ५. विण्णाणे (विज्ञान)—उसी अर्थ का विशिष्ट ज्ञान होना विज्ञान है।

धारणा के ५ नाम—१ धरणा—जाने हुए अर्थ को अन्तर्मुहूर्त तक दृढतापूर्वक धारण किये रहना धरणा है। २ धारणा—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल के बाद भी स्मरण रखना धारणा है। ३ ठवणा (स्थापना)—उस अर्थ की हृदय में स्थापना है। ४ पइट्ठा (प्रतिष्ठा)—उस अर्थ को भेद—प्रभेद के साथ हृदय में स्थापना करना प्रतिष्ठा है। ५ कोट्ठे (कोष्ठ)—जिस प्रकार कोठे में रखा हुआ धान सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार उस अर्थ को सदा धारण किये रह कर सुरक्षित रखना कोष्ट-कोठा कहलाता है। ये सब मिलाकर २० भेद हुए।

उग्गहे इक्कसमइए, अन्तोमुहुत्तिया ईहा अन्तोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं॥

भावार्थ अवग्रह से पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है। इसकी स्थिति एक समय की है। ईहा से विशेष ज्ञान

*एगट्ठिया के २० भेद मिलाने से ३४०+२०= ३६० भेद हुए।

---

* एगट्ठिया (एकार्थक शब्द) के २० भेद इस प्रकार हैं—अवग्रह के ५ नाम—ओगेण्हणया-(अवग्रहणता)—प्रथम समय में आये हुए शब्दादि पुद्‌गलों का ग्रहण करना अवग्रहणता कहलाता है। २ उवधारणया (उपधारणता)—व्यञ्जनावग्रह के दूसरे तीसरे आदि समयों में नवीन नवीन शब्द आदि पुद्‌गलों का प्रतिसमय ग्रहण करना और पहले ग्रहण किये हुए का धारण करना उपधारणता कहलाती है। ३ सवणया (श्रवणता)- एक समय में होने वाला सामान्यरूप से अर्थग्रहणरूप बोध श्रवणता कहलाती है। ४ अवलम्बणया (अवलंबनता)—अर्थ को ग्रहण करना अवलम्बनता कहलाती है। ५ मेहा (मेघा)—बुद्धि को मेघा कहते हैं।

ईहा के ५ नाम सामान्यरूप से एकार्थक होते हुए भी विशेष में भिन्नार्थक हैं। जैसे १. आभोगणया (आभोगनता)- अर्थावग्रह के बाद ही सद्‌भूत अर्थविशेष का आलोचन करना आभोगनता है। २. मग्गणया (मार्गणता) अन्वय और व्यतिरेक धर्म का अन्वेषण करना मार्गणता है। ३, गवेसणया (गवेषणता) व्यतिरेक अर्थात् विरुद्ध धर्म के त्यागपूर्वक अन्वयधर्म की आलोचना करना गवेषणता है। ४ चिंता (चिन्ता)—सद्‌भूत अर्थ का बारम्बार चिन्तन करना चिन्ता है। ५. वीमंसा (विमर्श)—सद्‌भूत अर्थ का स्पष्ट विचार करना विमर्श है।

अवाय के ५ नाम—१ आउट्टणया (आवर्तनता)—ईहा से आगे बढ़ कर अवाय के सन्मुख रहने वाला ज्ञान आवर्तनता है । २ पच्चाउट्टाणया (प्रत्यावर्तनता)—आवर्तनता से आगे वढने वाला ज्ञान प्रत्यावर्तनता है । ३ अवाए (अवाय) ईहा से सर्वथा निवृत्त पदार्थ का ज्ञान अवाय है । ४ बुद्धि—निर्णय किये हुए उसी अर्थ को स्थिरता पूर्वक बारम्बार स्पष्ट रूप में जानना बुद्धि है । ५. विण्णाणे (विज्ञान)—उसी अर्थ का विशिष्ट ज्ञान होना विज्ञान है ।

धारणा के ५ नाम—१ धरणा—जाने हुए अर्थ को अन्तर्मुहूर्त तक दृढतापूर्वक धारण किये रहना धरणा है । २ धारणा—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल के बाद भी स्मरण रखना धारणा है । ३ ठवणा (स्थापना)—उस अर्थ की हृदय में स्थापना है । ४ पइट्ठा (प्रतिष्ठा) -उस अर्थ को भेद—प्रभेद के साथ हृदय में स्थापना करना प्रतिष्ठा है । ५ कोट्ठे (कोष्ठ)—जिस प्रकार कोठे में रखा हुआ धान सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार उस अर्थ को सदा धारण किये रह कर सुरक्षित रखना कोष्ट-कोठा कहलाता है । ये सब मिलाकर २० भेद हुए ।

उग्गहे इक्कसमइए, अन्तोमुहुत्तिया ईहा अन्तोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।।

भावार्थ अवग्रह से पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है । इसकी स्थिति एक समय की है । ईहा से विशेष ज्ञान

मतिज्ञान के ९ नाम हैं—

ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।
सण्णा सई मई पण्णा, सव्वं आभिणिबोहियं ।।

अर्थ—१. ईहा—सद्भूत अर्थ की पर्यालोचन को ईहा कहते हैं । २. अपोह—निश्चय करने को अपोह कहते हैं । ३. विमर्श-विचार । ४. मार्गणा—विचारणा । ५. गवेषणा-खोज । ६. संज्ञा—बुद्धि-संकेत । ७. स्मृति—स्मरण । ८. मति—बुद्धि, ९. प्रज्ञा—विशिष्ट बुद्धि ।

निर्मल - सम्यग् मति (बुद्धि) को मतिज्ञान कहते हैं । इससे विपरीत (उलटी) मति बुद्धि को मतिअज्ञान कहते है । एगट्ठिया के २० भेद छोड़ने से मतिअज्ञान के भी ३४० भेद होते हैं ।

सम्यक्प्रकार सुनने को श्रुतज्ञान कहते हैं । मिथ्या-सूत्र मिथ्यात्वी के पास में असम्यग्पणे सुनना श्रुतअज्ञान

होता है, इसकी स्थिति अन्तमुहूर्त की है । अवाय से पदार्थ का निश्चय होता है, इसकी स्थिति अन्तमुहूर्त की है । धारणा से हृदय में दृढ़ निश्चय-पक्की धारणा होती है । इसकी स्थिति संख्याता काल के आयुष्य वालों की अपेक्षा संख्यात काल की और असंख्याता काल के आयुष्य वालों की अपेक्षा असंख्यात काल की ।

है। श्रुतज्ञान के १४ भेद—❀ अक्षरश्रुत, अनक्षरश्रुत, संज्ञीश्रुत, असंज्ञीश्रुत, सम्यक्श्रुत मिथ्याश्रुत, सादिश्रुत, अनादिश्रुत, सपर्यवसितश्रुत अपर्यवसितश्रुत, गमिकश्रुत, अगमिकश्रुत, अंगप्रविष्ट, अनङ्गप्रविष्ट।

अवधिज्ञान से विपरीत होवे उसे विभंगज्ञान कहते हैं। विभंगज्ञान के ७ भेद और अनेक संठाण है।

❀ श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाले शास्त्रों के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। चरण करणानुयोग, धर्मकथानुयोग, द्रव्यानुयोग, और गणितानुयोग की सारी बातें श्रुतज्ञान में आजाती है। इसके १४ भेद हैं—

१. अक्षरश्रुत—जिसका कभी नाश न हो, उसे अक्षर कहते हैं। जीव उपयोग स्वरूप वाला होने से ज्ञान का कभी नाश नहीं होता। इसलिये यहां ज्ञान ही अक्षर है। ज्ञान का कारण होने उपचारमय से अकारादि वर्ण भी अक्षर कहे जाते हैं। अक्षररूप श्रुत को अक्षरश्रुत कहते हैं।

२. अनक्षरश्रुत—अक्षरों के विना ही शरीर की चेष्टा आदि से होने वाले ज्ञान को अनक्षरश्रुत कहते हैं, जैसेः—हंसी, खांसी, छींक, उबासी आदि।

३. संज्ञिश्रुत—संज्ञा अर्थात् सोचने-विचारने की शक्ति जिस जीव में हो उसे संज्ञी (सन्नी) कहते हैं, संज्ञी के लिए बताये गये श्रुत को संज्ञिश्रुत कहते हैं।

४. असंज्ञिश्रुत संज्ञिश्रुत (सन्नीश्रुत) से उल्टा असंज्ञि (असन्नी) श्रुत है।

५. सम्यक्श्रुत—सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् द्वारा प्रणीत आचारांगादि बारह अंग सूत्रों को सम्यक्श्रुत कहते हैं।

६. मिथ्याश्रुत—मिथ्यादृष्टियों के द्वारा अपनी स्वतंत्र बुद्धि से कल्पना किये गये शास्त्रों को मिथ्याश्रुत कहते हैं।

७. ८. ९. १०. 'सादिश्रुत'—अनादिश्रुत, सपर्यवसितश्रुत, अपर्यवसितश्रुत—बारह अंग सूत्र पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा सादि, सपर्यवसित (आदि–अन्त सहित) हैं और द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अनादि, अपर्यवसित (आदि-अन्त-रहित) हैं।

११. गमिकश्रुत—अनेक जगह जिस पाठ का बार-बार उच्चारण किया जाता है, उसे गमिकश्रुत कहते हैं। जैसेः—उत्तराध्ययनसूत्र के दसवें अध्ययन की गाथाओं में "समयं गोयम मा पमायए" का बारबार उच्चारण किया जाता है।

१२. अगमिकश्रुत—गमिक से विपरीत शास्त्र को अगमिकश्रुत कहते हैं। जैसेः—आचारांग आदि।

१३. अंगप्रविष्टश्रुत आचारांग आदि बारह सूत्र (११ अंग १ दृष्टिवाद) अंगप्रविष्टश्रुत कहलाते हैं।

१४. अंगबाह्यश्रुत—बारह अंगसूत्रों के सिवाय जो शास्त्र हैं वे अंगबाह्यश्रुत कहलाते हैं। इनका विशेष विस्तार नन्दीसूत्र में है।

३. कर्मप्रकृति का थोकड़ा

आठ कर्मों के नाम और लक्षण

आठ कर्मों के नामः—(१)ज्ञानावरणीय, (२)दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अन्तराय ।

कर्मोंके लक्षणः—(१) जिसके द्वारा ज्ञान ढांका जाय उसे ज्ञानावरणीयकर्म कहते हैं । जैसे बादलों से सूर्य ढक जाता है । (२) जो वस्तु के सामान्य धर्म को जाने, उसे दर्शन कहते हैं । उस दशन को आच्छादित करने वाले कर्म को दर्शनावरणीय कहते हैं । जैसे द्वारपाल की रुकावट के कारण राजा के दर्शन नहीं हो पाते । (३) जिस कर्म द्वारा साता और असाता का अनुभव हो, उसे वेदनीयकर्म कहते हैं । जैसे शहद लपेटी तलवार के चाटने से सुख और दुःख होता है । (४) जिससे आत्मा मोहित–सत् और असत् के ज्ञान से शून्य हो जाय उसे मोहनीयकर्म कहते हैं । जैसे मदिरा पीने से बेभान हो जाता है । (५) जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों में रुका रहे उसे आयु कर्म कहते हैं । जैसे बेड़ी में जकड़ जाने से जीव रुक जाता है पराधीन हो जाता है । (६) जिस कर्म से आत्मा, गति आदि नाना पर्यायों का अनुभव करे—शरीर आदि बने या जो जीव के अमूर्तत्व गुण को प्रगट नहीं होने दे उसे नामकर्म कहते हैं । जैसे चित्रकार तरह तरह के चित्र बनाता है । (७) जिस कर्म के उदय से जीव उच्च नीच कुलोंमें उत्पन्न होवे उसे गोत्रकर्म कहते हैं । जैसे कुंभार

छोटे बड़े बर्तन बनाता है । (८) जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति) में विघ्न पड़े, उसे अन्तरायकर्म कहते हैं । जैसे राजा की आज्ञा होने पर भी भंडारी दान प्राप्ति में विघ्न डाल देता है ।

कर्मों की प्रकृतियां—

आठ कर्मों की १४८ प्रकृतियां है । वे इस प्रकार— ज्ञानावरणीय की पांच (५), दर्शनावरणीय की नौ (९), वेदनीय की दो (२), मोहनीय की अट्ठाईस(२८,) आयुकर्म की चार (४), नामकर्म की तेरानवे (९३), गोत्रकर्म की दो (२), और अन्तरायकर्म की पांच (५) प्रकृतियां हैं ।

प्रकृतियों[1] के नाम

१ ज्ञानावरण[2] की प्रकृतियां:— (१) मतिज्ञानावरणीय[3] (२) श्रुतज्ञानावरणीय (३) अवधिज्ञानावरणीय (४) मन:पर्यायज्ञानावरणीय (५) केवलज्ञानावरणीय ।

---

१ यहां प्रकृतियों का अर्थ अवान्तर भेद है । यों तो सामान्य रूप से एक प्रकृति है उसके उल्लिखित आठ भेद हैं । आठों के विवक्षाविशेष से १४८ भेद हैं । दूसरी दूसरी विवक्षाओं से कम या अधिक भेद हो सकते हैं । इसीलिए १५८ भेद भी हो जाते हैं ।

२ ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान का सर्वथा अभाव नहीं होता, सिर्फ अव्यक्त होजाता है, जैसे बादलों से सूर्य का अभाव नहीं हो जाता, केवल अप्रगट हो जाता है ।

३ जो मतिज्ञान को ढंके । इसी प्रकार और चारों के लक्षण समझने चाहिए ।

२ दर्शनावरणीय की प्रकृतियां:—(१) निद्रा (२) निद्रानिद्रा (३) प्रचला (४) प्रचलाप्रचला (५) स्त्यानगृद्धि (६) चक्षुदर्शनावरण (७) अचक्षुदर्शनावरण (८) अवधिदर्शनावरण (९) केवलदर्शनावरण।

जिसके उदय से सुख से सोवे और सुख से जागे उसे निद्राप्रकृति कहते हैं। जिसके उदय से ऐसी निद्रा आवे जो आवाज देने से टूटे, उसे निद्रानिद्राप्रकृति कहते हैं। जिसके उदय से बैठे-बैठे नींद आ जावे उसे प्रचला कहते हैं। जिसके उदय से चलते-फिरते नींद आ जावे उसे प्रचला-प्रचला कहते हैं। जिसके उदय से जागृत अवस्था में सोचा हुआ कार्य सुप्त अवस्था में कर डाले उसे स्त्यानगृद्धि[1] प्रकृति कहते हैं।

३ वेदनीयकर्म की प्रकृतियां:—सातावेदनीय २ असा-

---

१ इस निद्रा में वासुदेव का आधा बल आ जाता है। उस समय जीव इसी निद्रा में उठ कर पेटी खोलता है उसमें से गहनों का डब्बा निकाल कर कपड़े में पोटली बांधता है और नदी के किनारे जाकर एक हजार मन की शिला ऊंची उठाकर पोटली को नीचे दबा देता है और नदी में कपड़े धो करके घर चला आता है, लेकिन जागने पर कुछ भी स्मरण नहीं रहता। छह महीने पश्चात् जब दूसरी बार ऐसी निद्रा आ जाती है तब फिर वहां जाकर वही डिब्बा उठा लाता है और आयुकर्म न बंध चुका हो तो नरकगति में जाता है। यह उत्कृष्ट स्त्यानगृद्धि की बात है।

तावेदनीय ।

४ मोहनीयकर्म की प्रकृतियां:–मोहनीयकर्म के मुख्य दो भेद हैं—(१) दर्शनमोहनीय (२) चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) और सम्यक्त्व मोहनीय। चारित्रमोहनीय के भी दो भेद हैं—कषायमोहनीय और नोकषायमोहनीय। कषायमोहनीय के सोलह भेद हैं–अनन्तानुबन्धी का (१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ, अप्रत्याखानावरण का (५) क्रोध (६) मान (७) माया (८) लोभ, प्रत्याख्यानावरण का (९) क्रोध (१०) मान (११) माया (१२) लोभ, संज्वलन का (१३) क्रोध (१४) मान (१५) माया (१६) लोभ। नोकषाय[१] के नौ भेद हैं–१ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक ६ जुगप्सा ७ स्त्रीवेद ८ पुरुषवेद ९ नपुंसकवेद, ये सब मिलाकर अट्ठाईस भेद हैं।

५ आयुकर्म की प्रकृतियां—१ नरकायु २ तिर्यञ्चायु ३ मनुष्यायु ४ देवायु।

६ नामकर्म की प्रकृतियाँ—४ चार गति (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव) ५ जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय) ५ शरीर, (औदारिक, वैक्रिय,

---

१ हास्य आदि कषायों को उत्तेजित करते हैं और उनके सहचारी हैं, इसलिए उन्हें नो (ईषत्) कषाय कहते हैं।

आहारक, तैजस, कार्मण) ३ अंगोपांग (औदारिक, वैक्रिय आहारक) ५ बन्धन (औदारिक वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण) ५ संघात (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण) ६ संस्थान (समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, सादि, कुब्जक, वामन, हुण्डक) ६ संहनन (वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक सेवार्त) ५ वर्ण (कृष्ण, नील, पीत, रक्त, सफेद) २ गन्ध (सुगंध, दुर्गन्ध) ५ रस (खट्टा, मीठा, कडुवा, कसायला, तीखा) ८ स्पर्श (हलका, भारी, ठण्डा, गर्म, रूखा, चिकना, कठोर, कोमल) ४ आनुपूर्वी (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव) १ अगुरुलघु, १ उपघात, १ पराघात, १ आतप, १ उद्योत २ विहायोगति (शुभ-मनोज्ञ, अशुभ—अमनोज्ञ), १ उच्छ्वास, १ त्रस १ स्थावर, १ बादर, १ सूक्ष्म, १ पर्याप्त, १ अपर्याप्त, १ प्रत्येक, १ साधारण, १ स्थिर, १ अस्थिर, १ शुभ, १ अशुभ, १ सुभग, १ दुर्भग, १ सुखर, १ दुःस्वर, १ आदेय, १ अनादेय, १ यशःकीर्ति, १ अयशःकीर्ति, १ तीर्थंकर, १ निर्माण। ये तेरानवे प्रकृतियां नामकर्म की हैं। इनमें निम्न लिखित दस और बढ़ा देने से १०३ हो जाती हैं— १ औदारिकवैक्रियबंधन २ औदारिकआहारकबन्धन ३ औदारिकतैजसबन्धन, ४ औदारिककार्मणबन्धन ५ वैक्रियऔदारिकबन्धन ६ वैक्रियतैजसबन्धन ७ वैक्रियकार्मणबन्धन, ८ आहारकतैजसबन्धन, ९ आहारककार्मणबन्धन, १० तैजसकार्मणबन्धन। ये एक सौ तीन प्रकृतियां हैं।

७ गोत्रकर्म की प्रकृतियां १ उच्चगोत्र, २ नीचगोत्र।

८ अन्तराय की प्रकृतियां—१ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय, ५ वीर्यान्तराय।

कर्मबन्ध के कारण और फल

१ ज्ञानावरणीय कर्म छह प्रकार से बंधता है और दस प्रकार से भोगना पड़ता है १ ज्ञानी का अवर्णवाद करे अवगुण निकाले, २ ज्ञानी की निन्दा करे और उसका उपकार न माने, ३ ज्ञान में अन्तराय डाले, ४ ज्ञान या ज्ञानी की आशातना करे, ५ ज्ञानी से द्वेष करे, ६ ज्ञानी के साथ खोटा विसंवाद करे।

इस कर्म का फल दस प्रकार का है—१ श्रोत्रइन्द्रिय का आवरण, २ श्रुतज्ञान का आवरण, ३ चक्षुरिन्द्रिय का आवरण, ४ चक्षुरिन्द्रिय से होने वाले ज्ञान का आवरण, ५ घ्राणइन्द्रिय का आवरण, ६ घ्राणज्ञान का आवरण, ७ रसनाइन्द्रिय का आवरण, ८ रसनाज्ञान का आवरण, ९ स्पर्शनेन्द्रिय का आवरण, १० स्पर्शज्ञान का आवरण।

२ दर्शनावरणीयकर्म छह प्रकार से बंधता है—१ सुदर्शनी का अवर्णवाद बोले, २ सुदर्शनी की निन्दा करे या उपकार भूले, ३ सम्यक्त्वप्राप्ति में अन्तराय डाले, ४ सुदर्शनी की आशातना करे, ५ सुदर्शनी पर द्वेष करे, ६ सुदर्शनी के साथ विसंवाद करे।

इस कर्म के फल नौ प्रकार के हैं—१ निद्रा, २

निद्रानिद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानगृद्धि, ६ चक्षुदर्शनावरण, ७ अचक्षुदर्शनावरण, ८ अवधिदर्शनावरण, ९ केवलदर्शनावरण ।

(३) (क) सातावेदनीय दस प्रकार से बंधता है—१ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर दया—अनुकम्पा करे, २ वनस्पति पर अनुकम्पा करे, ३ पंचेन्द्रिय पर अनुकम्पा करे, ४ चार स्थावरों पर अनुकम्पा करे, ५ उक्त जीवों को दुःख न देवे, ६ शोक न करावे, ७ झुरावे नहीं, ८ टप टप आंसू न गिरवावे—रुलावे नहीं, ९ मारे नहीं, १० परितापना न उपजावे ।

इस कर्म का फल आठ प्रकार का है—१ मनोज्ञ शब्द, २ मनोज्ञ रूप, ३ मनोज्ञ गंध, ४ मनोज्ञ रस, ५ मनोज्ञ स्पर्श, ६ मनचाहा सुख, ७ अच्छे वचन, ८ शारीरिक सुख ।

(ख) असातावेदनीय बारह प्रकार से बंधता है—

१ प्राण भूत जीव सत्व को दुःख देना, २ शोक कराना, ३ झुराना ४ रुलाना, ५ मारना पीटना, ६ परितापना उत्पन्न करना, ७ बहुत दुःख देना, ८ बहुत शोक कराना, ९ बहुत झुराना, १० बहुत रुलाना, ११ बहुत मार-पीट करना, १२ बहुत परितापना करना ।

इसका फल आठ प्रकार का है—१ अमनोज्ञ शब्द, २ अमनोज्ञ रूप, ३ अमनोज्ञ गंध, ४ अमनोज्ञ रस, ५ अमनोज्ञ स्पर्श, ६ अमनोज्ञ मन, ७ अमनोज्ञ वचन, ८ अमनोज्ञ काया ।

४ मोहनीयकर्म छह प्रकार से बंधता है—१ तीव्र क्रोध करना, २ तीव्र मान करना, ३ तीव्र माया करना, ४ तीव्र लोभ करना, ५ तीव्र दर्शनमोहनीय, ६ तीव्र चारित्र-मोहनीय।

यह कर्म अट्ठाईस प्रकार से भोगा जाता है वे अट्ठाईस प्रकार वही हैं जो प्रकृतियों में गिनाये जा चुके हैं। उनमें से अनुन्तानुवंधीचौकड़ी का लक्षण इस प्रकार है—

१ जैसे पत्थर पर लकीर करने से वह मिट नहीं सकती है अथवा पर्वत के फटने से जो दरार होती है, उसका मिलना जितना कठिन है, उसी प्रकार जो क्रोध शान्त न हो वह अनन्तान्तुबन्धीक्रोध है। जैसे पत्थर का खंभ नहीं नमता, वैसे ही जो मान दूर न हो, उसे अनन्ता-नुबंधीमान कहते हैं। जैसे विलकुल टेढी-मेढी कठिन वांस की जड़ का टेढापन मिट नहीं सकता है, उस प्रकार की जो माया हो, उसे अनन्तानुबंधीमाया कहते हैं। जैसे किरमिची रंग का छूटना दुष्कर है, उसी प्रकार जो लोभ छूट न सके उसे अनन्तानुबधीलोभ कहते हैं।

इस चौकड़ी से नरकगति में जाना पड़ता है। स्थिति यावज्जीवन की है और सम्यक्त्व का घात करती है।

(२) अप्रत्याख्यानावरण चौकड़ी का लक्षण—पानी सूखने से तालाव में जो दरार फट जाती है वह आगामी वर्ष वर्षा होने पर मिटती है, इसी प्रकार जो क्रोध विशेष परिश्रम से शान्त हो, उसे अप्रत्याख्यानावरणक्रोध कहते हैं।

हाथी दांत के खंभे की तरह जो बड़ी मुश्किल से दूर हो वह अप्रत्याख्यानावरणमान है। मेढ़े के सींग की तरह जो कठिनाई से मिटे, उसे अप्रत्याख्यानावरणमाया कहते हैं। जो लोभगाड़ी के ओंगन की तरह अति कष्ट से छूटे, वह अप्रत्याख्यानावरणलोभ है।

इस चौकड़ी से तिर्यञ्चगति होती है। इसकी स्थिति बारह महिने की है। यह एकदेश संयम का घात करती है।

(३) प्रत्याख्यानावरणचौकड़ी का लक्षण—जैसे रेत में खींची हुई लकीर बहुत काल तक नहीं रहती, इसी प्रकार जो क्रोध बहुत काल तक न ठहरे, उसे प्रत्याख्यानावरणक्रोध कहते हैं। बेंत के खम्भे की तरह जिस मान को दूर करने के लिए बहुत अधिक श्रम न करना पड़े, उसे प्रत्याख्यानावरणमान कहते हैं। चलता बैल मूतता है तो टेढ़ी लकीरें हो जाती हैं, उनका मिटना अति कष्ट साध्य नहीं है, उसी प्रकार जिस माया का मिटना ऐसा कठिन न हो उसे प्रत्याख्यानावरणमाया कहते हैं। दीपक के कज्जल की तरह जो लोभ कुछ कठिनाई से छूटे उसे प्रत्याख्यानावरणलोभ कहते हैं। इससे चारों गतियों का बन्ध हो सकता है। स्थिति चार महीने की है। यह सकल संयम का घात करती है।

(४) संज्वलनचौकड़ी का स्वरूप—पानी में खींची हुई लकीर की तरह जो क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाता है, वह संज्वलन क्रोध है। जो मान तिनके की तरह शीघ्र ही नम जाय, उसे संज्वलन मान कहते हैं। बांस का छिलका जैसे

सरलता से सीधा किया जा ससता है, उसी प्रकार जो माया बिना विशेष श्रम के दूर हो जाय उसे संज्वलन माया कहते हैं। हल्दी के रंग की तरह जो सहज ही छूट जाय उसे संज्वलनलोभ कहते हैं।

इस चौकड़ी से देवगति होती है। क्रोध की स्थिति दो महिने की, मान की एक महीने की, माया की पन्द्रह दिन की और लोभ की अन्तमुर्हूर्त की है। यह कषाय यथाख्यातचारित्र का घात करती है।

ये सोलह भेद कषाय के और पूर्वोक्त नव नोकषाय के, इस प्रकार पच्चीस प्रकार से मोहनीय भोगा जाता है।

(५) आयुकर्म सोलह प्रकार से बंधता है और चार प्रकार से भोगा जाता है–(१) महा आरम्भ करने से, (२) महापरिग्रह करने से, (३) पंचेन्द्रिय की घात करने से, (४) मद्य मांस का सेवन करने से नरकायु का, (५) माया करने से, (६) गूढ़ माया करने से, (७) असत्य बोलने से, (८) कमज्यादा नापने–तोलने से तिर्यञ्चायु का, (९) प्रकृति की भद्रता से, (१०) विनीतता से, (११)दयाभाव रखने से, (१२) मदमत्सर आदि से रहित होने से मनुष्यायु का, (१३) सरागसंयम पालने से (१४) देश-संयम पालने से, (१५) बालतपस्या करने से (१६) अकामनिर्जरा करने से देवायु का बंध होता है। चार प्रकार से भोगा जाता है १ नरक–आयु २ तिर्यञ्च–आयु ३ मनुष्य–आयु ४ देव आयु।

(६) नामकर्म आठ प्रकार से बंधता है और अट्ठाईस

प्रकार से भोगा जाता है । नाम कर्म दो प्रकार का है—१ शुभनामकर्म २ अशुभनामकर्म ।

शुभनामकर्म चार प्रकार से बंधता है—१ काय की सरलता, २ वचन की सरलता, ३ मन की सरलता, ४ ४ मद-मत्सर से रहितता । चौदह प्रकार से भोगा जाता है १ इष्ट शब्द, २ इष्ट रूप, ३ इष्ट गंध, ४ इष्ट रस, ५ इष्ट स्पर्श, ६ इष्ट गति, ७ इष्ट स्थिति, ८ इष्ट लावण्य, ९ इष्ट यशःकीर्ति, १० इष्ट उट्ठाण, (उत्थान) बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम, ११ इष्टस्वर, १२ कान्तस्वर, १३ प्रियस्वर १४ मनोज्ञस्वर ।

अशुभनामकर्म चार प्रकार से बंधता है—१ काय की वक्रता (वांकापन), २ वचन की वक्रता, ३ मन की वक्रता, ४ मद-मत्सर भावसे सहितता । चौदह प्रकार से भोगा जाता है—१ अनिष्ट शब्द. २ अनिष्ट रूप, ३ अनिष्ट गंध, ४ अनिष्ट रस, ५ अनिष्ट स्पर्श ६ अनिष्ट गति, ७ अनिष्ट स्थिति, ८ अनिष्ट लावण्य, ९ अनिष्ट यशःकीर्ति १० अनिष्ट उट्ठाण (उत्थान) बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम ११ हीनस्वर, १२ दीनस्वर १३ अप्रियस्वर १४ अमनोज्ञ स्वर ।

(७) गोत्रकर्म सोलह प्रकार से बंधता और सोलह प्रकार से भोगा जाता है । इसके दो भेद हैं—१ उच्चगोत्र २ नीचगोत्र । उच्च गोत्र आठ प्रकार से बंधता है—१

जाति[1] का मद (घमण्ड) न करना, २ कुल[2] का मद न करना, ३ बल का मद न करना, ४ रूप का मद न करना, ५ तपस्या का मद न करना, ६ श्रुत (ज्ञान) का मद न करना, ७ लाभ का मद न करना, ८ ऐश्वर्य का मद न करना। यह उच्च गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है—अर्थात् इन आठ का मद न करे तो उच्चगोत्र पाता है। नीचगोत्र कर्म आठ प्रकार से बंधता और आठ प्रकार से भोगा जाता है—पूर्वोक्त जाति, कुल, बल, रूप, तप श्रुत, लाभ, ऐश्वर्य का घमण्ड करने से बंधता है और इनका घमण्ड करने से नीचगोत्र की प्राप्ति होती है अर्थात् आठ प्रकार से भोगा जाता है।

(८) अन्तरायकर्म पांच प्रकार से बंधता और पांच प्रकार से भोगा जाता है—अर्थात् दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में अन्तराय डालने से बंधता है और इससे पांचों अन्तरायों की प्राप्ति होती है।

कर्मों की स्थिति और आबाधाकाल[3]

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय की ज०

---

१ मातृपक्ष को जाति कहते हैं।

२ पितृपक्ष को कुल कहते हैं।

३ कर्मबन्ध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणा नहीं होती तब तक के काल को आबाधाकाल कहते हैं।

स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उ० तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। आबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। सातावेदनीय की जघन्य स्थिति इरियावहियाक्रिया की अपेक्षा दो समय की और उत्कृष्ट पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। आबाधाकाल डेढ़ हजार वर्ष का है। असातावेदनीय की ज० स्थिति एक सागर के सात भागों में से तीन भाग, और पल्योपम से असंख्यात भाग कम की और उ० तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका आबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। मोहनीय कर्म की ज० स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उ० सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है। आबाधाकाल सात हजार वर्ष का है। नारकी तथा देवों के आयुकर्म की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उ० तेतीस सागरोपम की, मनुष्य और तिर्यञ्च के आयुकर्म की ज० स्थिति अन्तर्मुहूर्त की, उ० करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक तीन पल्योपम की। नामकर्म की ज० स्थिति आठ मुहूर्त की उ० वीस कोडाकोडी सागरोपम की और आबाधाकाल दो हजार वर्ष का है। गोत्रकर्म की ज० स्थिति आठ मुहूर्त की, उ० वीस कोडाकोडी सागरोपम की तथा आबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।



४. दृष्टि का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १९ वां पद)

हे भगवन् ! जीव क्या सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अथवा मिश्रदृष्टि होता है ? हे गौतम ! जीव सम्यग्दृष्टि होता है, मिथ्यादृष्टि होता है और मिश्रदृष्टि भी होता है। सात नारकी के नैरयिक, दस भवनपति, तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक—इन सोलह दंडक में तीनों दृष्टियां पाई जाती हैं। पांच स्थावर मिथ्यादृष्टि होते हैं। तीन विकलेन्द्रिय और नवग्रैवेयक सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि होते हैं। पांच अनुतरविमान और सिद्ध भगवान् सम्यग्दृष्टि होते हैं।



५. अन्तक्रिया का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २० वां पद)

नेरइय अन्तकिरिया, अणंतर एग समय उव्वट्टा।
तित्थगर चक्कि बलदेव, वासुदेव मंडलिय रयणा ॥

इस थोकड़े में नैरयिक आदि चौवीस दंडकों में सामान्य रूप से अन्तक्रिया (मोक्ष) का विचार अनन्तरागत और परम्परागत अन्तक्रिया का वर्णन है। इसके बाद, एक समय में कितने जीव अन्तक्रिया करते हैं, यह बताया गया है। तदनन्तर चौवीस दंडक से निकलकर जीव कहाँ

उत्पन्न होते हैं तथा कहां से निकले हुए जीव तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, मांडलिक राजा तथा चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय रत्न और पंचेन्द्रिय रत्न होते हैं, इसका वर्णन किया गया है।

१ हे भगवन् ! क्या समुच्चय जीव अन्तक्रिया करते हैं ? हे गौतम ! कोई जीव अन्तक्रिया करता है, कोई नहीं करता। इसी तरह चौबीस दंडक के जीवों के लिए कहना कि कोई अन्तक्रिया करता है, कोई नहीं करता।

२ हे भगवन् ! चौबीस दंडक से निकलते हुए जीव क्या मनुष्य के सिवाय तेवीस दंडकों में रह कर अन्तक्रिया करते हैं ? हे गौतम ! नहीं करते। मनुष्य के दंडक में भी कोई अन्तक्रिया करता है, कोई नहीं करता।

३ हे भगवन् ! समुच्चय जीव क्या अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं या परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं ? कोई अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं, कोई परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं। पहली नरक से चौथी नरक के निकले हुए अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत अन्तक्रिया भी करते हैं पांचवीं से सातवीं नरक के निकले हुवे अनन्तरागत अन्तक्रिया नहीं करते। परम्परागत अन्तक्रिया भी कोई करता है, कोई नहीं करता। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव तथा पृथ्वी, पानी, वनस्पति, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और संज्ञी मनुष्य के निकले हुए अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत अन्तक्रिया भी करते हैं। अग्नि, वायु और तीन विकलेन्द्रिय के निकले हुए

जीव अनन्तरागत अन्तक्रिया नहीं करते। परम्परागत अन्तक्रिया भी कोई करता है, कोई नहीं करता।

४ चौबीस दंडक से निकल कर मनुष्य में आकर एक समय में सिद्ध होने वालों की संख्या—नरक से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट दस सिद्ध होते हैं। पहली, दूसरी और तीसरी नरक से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट दस सिद्ध होते हैं। चौथी नरक से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट चार सिद्ध होते हैं। पांचवीं नरक से निकले हुए सिद्ध नहीं होते, मनःपर्यवज्ञानी होते हैं। छठी नरक से निकले हुए सिद्ध नहीं होते, अवधिज्ञानी होते हैं। सातवीं नरक से निकले हुए भी सिद्ध नहीं होते, सम्यग्दृष्टि होते हैं। भवनपति और व्यंतर देवों से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट दस सिद्ध होते हैं और भवनपति तथा व्यंतर की देवियों से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट पांच सिद्ध होते हैं। पृथ्वी, पानी से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट चार सिद्ध होते हैं और वनस्पति से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट छह सिद्ध होते हैं। अग्नि और वायु से निकले हुए सिद्ध नहीं होते, ये मिथ्यादृष्टि होते हैं। तीन विकलेन्द्रिय से निकले हुए सिद्ध नहीं होते, मनःपर्यवज्ञानी हो सकते हैं। तिर्यंचपंचेन्द्रिय और तिर्यंच स्त्री से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट दस सिद्ध होते हैं। मनुष्य से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होते हैं। मनुष्य स्त्री से निकले हुए

एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट बीस सिद्ध होते हैं। ज्योतिषी से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन उत्कृष्ट दस सिद्ध होते हैं और ज्योतिषी देवियों से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट बीस सिद्ध होते हैं। वैमानिक देवों से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होते हैं और वैमानिक देवियों से निकले हुए एक समय में जघन्य एक, दो, तीन उत्कृष्ट बीस सिद्ध होते हैं।

५ नरक से निकले हुए बाईस दंडक में उत्पन्न नहीं होते, दो दंडक—तिर्यचपंचेन्द्रिय और मनुष्य में उत्पन्न होते हैं। नरक से निकल कर तिर्यंचपंचेन्द्रिय में उत्पन्न होने वालों में किन्हीं को केवली प्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, किन्हीं को नहीं मिलता। जिन्हें केवली प्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, उनमें से किन्हीं को बोध होता है, किन्हीं को नहीं होता। जिनको बोध होता है, उनमें से किन्हीं को श्रद्धा, प्रतीति, रुचि उत्पन्न होती है, किन्हीं को उपन्न नहीं होती। जिन्हें श्रद्धा, प्रतीति, रुचि उत्पन्न होती है उन्हें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान उत्पन्न होने पर कई शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण-व्रत, प्रत्याख्यान, पौषध अङ्गीकार करते हैं और कई नहीं करते। जो शीलव्रत यावत् प्रत्याख्णान, पोषध अङ्गीकार करते हैं, उनमें से किन्हीं को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, किन्हीं को नहीं होता। अवधिज्ञान प्राप्त करने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय क्या प्रव्रज्या अङ्गीकार कर साधु बन सकते हैं? नहीं, ये साधु नहीं बन सकते।

नरक से निकल कर मनुष्य में उत्पन्न होने वालों में कई एक तिर्यंचपंचेन्द्रिय की तरह केवली प्ररूपित धर्म को सुनते यावत् अवधिज्ञान प्राप्त करते हैं। अवधिज्ञान प्राप्त करने वालों में कई एक प्रव्रज्या अङ्गीकार कर साधु बनते हैं, और कई एक नहीं बनते। साधु बनने वालों में कई एक मन:पर्यवज्ञान प्राप्त नहीं करते। मन:पर्यवज्ञान प्राप्त करने वालों में किन्हीं को केवलज्ञान होता है, किन्हीं को नहीं होता। जिन्हें केवलज्ञान होता है वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर सभी दुःखों का अंत करते हैं।

भवनपति देवता में से निकल कर पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य– इन पांच दंडक में उत्पन्न होते हैं। पृथ्वो, पानी और वनस्पति में उत्पन्न होने वालों को केवली प्ररूपित धर्म सुनने को नहीं मिलता। जो तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य में उत्पन्न होते हैं, उनके लिए जैसा ऊपर नरक में कहा उस तरह कह देना यावत् सिद्ध, मुक्त होकर सभी दुःखों का अन्त करते हैं।

पृथ्वी, पानी और वनस्पति से निकले हुए जीव पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य— इन दस दंडक में उत्पन्न होते हैं, शेष चौदह दंडक में उत्पन्न नहीं होते। जो पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं, उन्हें केवली प्ररूपित धर्म सुनने को नहीं मिलता। जो तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य में उत्पन्न होते उनका अधिकार जैसा ऊपर नरक में कहा, उस तरह कहना यावत् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होकर सभी दुखों का अन्त करते हैं।

अग्नि और वायु से निकले हुए पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय—इन नौ दंडक में उत्पन्न होते हैं, शेष पंद्रह दंडक में उत्पन्न नहीं होते। जो पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं उन्हें केवलीप्ररूपित धर्म सुनने को नहीं मिलता। जो तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं उनमें से किन्हीं को केवली-प्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, किन्हीं को नहीं मिलता। केवलीप्ररूपित धर्म सुनने का अवसर मिलने पर भी इन्हें बोध नहीं होता, क्योंकि ये मिथ्यादृष्टि होते हैं।

तीन विकलेन्द्रिय में से निकले हुए जीव भी पृथ्वी, पानी, वनस्पति की तरह दस दंडक में उत्पन्न होते हैं, चौदह दंडक में उत्पन्न नहीं होते। इनका अधिकार पृथ्वी, पानी, वनस्पति की तरह कहना, किंतु इतना अंतर है कि साधु बनने पर इन्हें मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है किंतु केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय से निकले हुए जीव चौवीस ही दंडक में उत्पन्न होते हैं। संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में से निकल कर नरक, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक—इन चौदह दंडक में जो उत्पन्न होते हैं, उनमें से किन्हीं को केवलीप्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, किन्हीं को नहीं मिलता। जिन्हें केवलीप्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, उनमें से कई समझते हैं, कई नहीं समझते। जो समझते हैं उनमें से किन्हीं को श्रद्धा प्रतीति रुचि उत्पन्न होती है और मति श्रुत अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है और किन्हीं को श्रद्धा प्रतीति रुचि उत्पन्न नहीं होती तथा

मति श्रुत अवधि ज्ञान की भी प्राप्ति नहीं होती। जिन्हें मति श्रुत अवधि ज्ञान की प्राप्ति होती है वे भी शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण व्रत, प्रत्याख्यान और पौषध अंगीकार नहीं करते। संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रिय से निकल कर जो पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं उन्हें केवली-प्ररूपित धर्म सुनने को नहीं मिलता। जो संज्ञी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय और मनुष्य में उत्पन्न होते हैं, उनका अधिकार नरक की तरह कहना।

मनुष्य से निकले हुए चौबीस ही दंडक में उत्पन्न होते हैं। ऊपर तिर्यंचपंचेन्द्रिय का अधिकार कहा, उसी तरह यहां भी कहना।

व्यन्तर से निकल कर तथा ज्योतिषी और पहले देवलोक से चव कर पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य—इन पांच दंडक में उत्पन्न होते हैं। उन्नीस दंडक में उत्पन्न नहीं होते। इनका अधिकार भवनपति की तरह कहना।

तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक के देवता चवकर तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य में उत्पन्न होते हैं, शेष बाईस दंडक में उत्पन्न नहीं होते। इनका अधिकार नरक की तरह कहना। नवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध के देवता च्यव कर केवल मनुष्य में उत्पन्न होते हैं, तेईस दडक में उत्पन्न नहीं होते। इनका अधिकार भी नरक की तरह कहना।

६ पहली दूसरी तीसरी नरक से निकले हुए क्या तीर्थंकर पदवी प्राप्त करते हैं? कोई तीर्थंकर पदवी पाते

हैं, कोई नहीं पाते । इसी तरह बारह देवलोक, नौ लोकान्तिक, नौ ग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान से च्यवे हुए कोई तीर्थंकर पदवी पाते हैं, कोई नहीं पाते । चौथी नरक से सातवीं नरक तक के निकले हुए तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और दस दंडक औदारिक से निकले हुए तीर्थंकर पदवी नहीं पाते ।

७ पहली नरक से निकले हुए क्या चक्रवर्ती की पदवी पाते हैं ? कोई पाते हैं, कोई नहीं पाते । दूसरी नरक से सातवीं नरक तक के निकले हुए तथा औदारिक के दस दंडक में से निकले हुए चक्रवर्ती की पदवी नहीं पाते । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक से निकले हुए कोई चक्रवर्ती की पदवी पाते हैं, कोई नहीं पाते ।

८ पहली दूसरी नरक से निकले हुए क्या बलदेव की पदवी पाते हैं ? कोई पाते हैं, कोई नहीं पाते । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक से निकले हुए कोई बलदेव की पदवी पाते हैं, कोई नहीं पाते । तीसरी नरक से सातवीं नरक तक के निकले हुए तथा औदारिक के दस दंडक से निकले हुए बलदेव की पदवी नहीं पाते ।

९ पहली दूसरी नरक से निकले हुए क्या वासुदेव की पदवी पाते हैं ? कोई पाते हैं, कोई नहीं पाते । तीसरी नरक से सातवीं नरक तक के निकले हुए, औदारिक के दस दंडक से निकले हुए तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पांच अनुत्तर विमान से निकले हुए वासुदेव की पदवी

नहीं पाते । बारह देवलोक, नौ लोकान्तिक और नौ ग्रैवेयक से च्यवे हुए कोई वासुदेव की पदवी पाते हैं, कोई नहीं पाते ।

१० पहली से छठी नरक तक के निकले हुए, भवनपति, व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक से निकले हुए तथा पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच-पंचेन्द्रिय, एवं मनुष्य से निकले हुए क्या मांडलिकराजा की पदवी पाते हैं ? कोई पाते हैं कोई नहीं पाते । सातवीं नरक और अग्नि तथा वायु से निकले हुए मांडलिकराजा की पदवी नहीं पाते ।

११ चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हैं—सात एकेन्द्रिय रत्न और सात पंचेन्द्रिय रत्न । पंचेन्द्रिय रत्न के नाम—सेनापति, गाथापति, बढ़ई, पुरोहित, अश्व, हस्ती और श्री देवी । एकेन्द्रिय रत्न के नाम —चक्र, छत्र, चर्म, दंड, असि, मणि और काकिणीरत्न ।

पहली नरक से छठी नरक तक के निकले हुए क्या पंचेन्द्रिय रत्न होते हैं ? कोई होते हैं, कोई नहीं होते । जो होते हैं वे सातों पंचेन्द्रिय रत्न हो सकते हैं । सातवीं नरक से निकले हुए कोई पंचेन्द्रियरत्न होते हैं, कोई नहीं होते । जो होते हैं वे अश्वरत्न और हस्तीरत्न होते हैं । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहले से आठवें देवलोक तक के निकले हुए कोई पंचेन्द्रियरत्न होते हैं, कोई नहीं होते । जो होते हैं वे सातों पंचेन्द्रियरत्न हो सकते हैं । नवें देवलोक से नवग्रैवेयक तक के च्यवे हुए कोई पंचेन्द्रिय-

रत्न होते हैं, कोई नहीं होते ! जो होते हैं वे अश्वरत्न और हस्ती रत्न के सिवाय पांच पंचेन्द्रियरत्न हो सकते हैं। पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच-पंचेन्द्रिय और मनुष्य में से निकले हुए कोई पंचेन्द्रियरत्न होते हैं, कोई नहीं होते। जो होते हैं वे सातों पंचेन्द्रिय-रत्न हो सकते हैं। अग्नि और वायु में से निकले हुए कोई पंचेन्द्रिय होते हैं, कोई नहीं होते। जो होते हैं वे अश्वरत्न और हस्तीरत्न होते हैं। पांच अनुत्तर विमान से च्यवे हुए पंचेन्द्रियरत्न नहीं होते।

पहली नरक से सातवीं नरक तक के निकले हुए क्या चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय रत्न होते हैं ? नहीं होते। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक से निकले हुए कोई चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय रत्न होते हैं, कोई नहीं होते। जो होते हैं वे सातों एकेन्द्रिय रत्न हो सकते हैं। तीसरे देवलोक से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक के च्यवे हुए चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय रत्न नहीं होते।

---

६. परमाणु का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक बीसवां, उद्देशा पांचवां)

१—अहो भगवन् ! परमाणु पुद्गल कितने प्रकार

का है ? हे गौतम ! परमाणु पुद्गल ४ प्रकार है—१❀ द्रव्यपरमाणु,+२ क्षेत्रपरमाणु, ३ कालपरमाणु, ४ भावपरमाणु ।

२—अहो भगवन् ! द्रव्यपरमाणु, कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! द्रव्यपरमाणु चार प्रकार है—१ अछेद्य (जिसका छेदन न किया जा सके), २ अभेद्य (जिसका भेदन न किया जा सके), ३ अदाह्य (जो जलाया न जा सके), ४ अग्राह्य (जो पकड़ा न जा सके) ।

३—अहो भगवन् ! क्षेत्रपरमाणु कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! क्षेत्र परमाणु चार प्रकार का है, १—÷

❀ वर्णादि धर्म की विवक्षा रहित एक परमाणु को द्रव्यपरमाणु कहते हैं, क्योंकि यहां पर सिर्फ द्रव्य की ही विवक्षा है ।

+ एक आकाशप्रदेश को क्षेत्रपरमाणु कहते हैं । एक समय को कालपरमाणु कहते हैं । एक गुण काल आदि को भावपरमाणु कहते हैं ।

÷ १ परमाणु में समसंख्या वाले अवयव नहीं हैं । इसलिये अनर्ध (जिसका आधा भाग न हो सके) कहलाता है ।

२ परमाणु में विषमसंख्या वाले अवयव नहीं हैं, इसलिये अमध्य कहलाता है ।

अनर्ध, २ अमध्य, ३ अप्रदेश, ४ अविभाग ।

४—अहो भगवन् ! कालपरमाणु कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! कालपरमाणु चार प्रकार का है—१ अवर्ण, २ अगन्ध, ३ अरस, ४ अस्पर्श ।

५—अहो भगवन् ! भावपरमाणु कितने प्रकार है ? हे गौतम ! भावपरमाणु चार प्रकार का है—(१) वर्ण वाला, (१) गन्धवाला, (३) रसवाला, (४) स्पर्शवाला ।



७. तीन बंध का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बीसवां, उद्देशा सातवां)

१—अहो भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का है ?

---

३ परमाणु में प्रदेश नहीं है, इसलिये अप्रदेश कहलाता है ।

४ परमाणु का विभाग नहीं हो सकता है, इसलिये उसे अविभाग कहते हैं ।

हे गौतम ! बन्ध तीन प्रकार का है—१ ❀जीवप्रयोगबन्ध, २ अनन्तरबन्ध, ३ परम्परबन्ध ।

२—इन तीन प्रकार के बन्ध में पाये जाने वाले ५५ बोल—कर्मबन्ध ८, कर्मउदय ८, वेद ३, दर्शनमोहनीय १, चारित्रमोहनीय १, +शरीर ५, संज्ञा ४, लेश्या ६, दृष्टि ३,

---

❀ १—जीव के प्रयोग से अर्थात मन वचन काया की प्रवृत्ति से आत्मा के साथ कर्मपुद्गलों का जो सम्बन्ध होता है, उसे जीवप्रयोगबन्ध कहते हैं ।

२—कर्मपुद्गलों का बन्ध होने के बाद के (अन्तर-रहित) समय में जो बन्ध होता है उसको अनन्तरबन्ध कहते हैं ।

३—कर्मपुद्गलों का बन्ध होने के बाद द्वितीयादि समय में जो बन्ध होता है, उसको परम्परबन्ध कहते है । अर्थात् बीच में एक या दो समय आदि का अन्तर पड़ के बन्ध होता है, उसको परम्परबन्ध कहते हैं ।

+ कर्म का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना बन्ध है, ऐसा पहले कहा है किन्तु यहां कर्मपुद्गल अथवा अन्य पुद्गलों का आत्मा के साथ जो सम्बन्ध, उसे बन्ध समझना चाहिये तभी औदारिकादि शरीर आहारादि संज्ञा जनक कर्म और कृष्णादि लेश्या का बन्ध होना संभव है ।

फिर भी यह शंका हो सकती है कि दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान और उसके विषय का बन्ध कैसे होता है ? क्योंकि

ज्ञान ५, अज्ञान ३, ज्ञान का विषय ५, अज्ञान का विषय ३, ये कुल मिलाकर ५५ बोल हुए। समुच्चय जीव में ये ५५ ही बोल पाये जाते हैं। नारकी में ४४ बोल पाये जाते हैं (ऊपर कहे हुए ५५ में से २ वेद, २ शरीर, ३ लेश्या, २ ज्ञान, २ ज्ञान के विषय, ये ११ बोल कम हो गये। भवनपति देव और वाणव्यन्तर देवों में ४६ बोल पाये जाते हैं। (ऊपर ४४ कहे गये हैं, उनमें से एक नपुंसक वेद कम हो गया। २ वेद और एक लेश्या, ये ३ बोल बढ़ गये)। ज्योतिषी देवों में ४३ बोल पाये जाते हैं (ऊपर ४६ कहे गये हैं, उनमें से ३ लेश्या कम हो गई) वैमानिक देवों में ४५ बोल पाये जाते हैं (ऊपर ४३ बोल कहे गये हैं, उनमें २ लेश्या बढ़ गई)। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में ३५ बोल पाये जाते हैं (कर्मबन्ध ८, कर्म-उदय ८, वेद १, दर्शनमोहनीय १, चारित्रमोहनीय १, शरीर ३, संज्ञा ४, लेश्या ४, दृष्टि १, अज्ञान २, अज्ञान का विषय २, ये सब ३५ हुए। तेजस्काय में ३४ बोल पाये जाते हैं (ऊपर कहे गये ३५ बोलों में से १ लेश्या कम हो गई)। वायुकाय में ३५ बोल पाये जाते हैं (ऊपर कहे हुए ३४ बोलों में १ शरीर वढ़ा)। तीन विकलेन्द्रिय में ३९ बोल पाये जाते हैं (ऊपर कहे हुए ३४ बोलों में १ दृष्टि, २ ज्ञान, २ ज्ञान के विषय, ये ५ बोल बढ़ गये)।

ये सभी अपौद्‌गलिक हैं। उत्तर इस प्रकार है—यहां बन्ध का अर्थ केवल सम्बन्ध विवक्षित है। इसलिये सम्यग्दृष्टि आदि का जीवप्रयोगादि बन्ध घटित हो जाता है।

तिर्यंचपंचेन्द्रिय में ५० बोल पाये जाते हैं (५५ बोल में से १ शरीर, २ ज्ञान, २ ज्ञान के विषय, ये ५ बोल कम हो गये)। मनुष्य में ५५ बोल पाये जाते हैं।

२४ ही दण्डक में जितने-जितने बोल पाये जाते हैं, उन सब में प्रत्येक में जीवप्रयोगबन्ध, अनन्तरबन्ध और परम्परबन्ध ये तीनों बन्ध पाये जाते हैं।



८. कर्मभूमि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बीसवां, उद्देशा आठवां)

१ अहो भगवन्! कर्मभूमि कितनी है? हे गौतम! १५ कर्मभूमि हैं—५ भरत, ५ एरवत, ५ महाविदेह।

२ अहो भगवन्! अकर्मभूमि कितनी है? हे गौतम! अकर्मभूमि ३० हैं—५ हैमवत (हेमवय), ५ हैरण्यवत (हेरन्नवय), ५ हरिवर्ष (हरिवास), ५ रम्यकवर्ष (रम्मकवास), ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु।

३—अहो भगवन्! क्या तीस अकर्मभूमियों में उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल है? हे गौतम! नहीं हैं।

४ अहो भगवन्! क्या पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्र में उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल है? हां गौतम! है।

५—अहो भगवन् ! क्या पांच महाविदेह क्षेत्र में उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल हे ? हे गौतम ! पांच महाविदेहक्षेत्र में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल नहीं है। वहां अवस्थित काल है।

६—अहो भगवन् ! क्या पांच महाविदेहक्षेत्र में अरिहन्त भगवान्, पांच महाव्रत रूप धर्म और प्रतिक्रमण सहित धर्म का उपदेश देते हैं ? हे गौतम ! ऐसा नहीं है, परन्तु पांच भरत और पांच एरवत क्षेत्रों में पहले और अन्तिम तीर्थंकर पांच महाव्रत रूप धर्म और प्रतिक्रमण सहित धर्म का उपदेश करते हैं, बीच के बाईस तीर्थंकर चार महाव्रत रूप धर्म का उपदेश करते हैं और महाविदेह क्षेत्र में भी तीर्थंकर भगवान् चार महाव्रत रूप धर्म का ही उपदेश करते हैं।

७—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणीकाल में कितने तीर्थंकर हुए हैं ? हे गौतम ! ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान स्वामी तक २४ तीर्थंकर हुए हैं ?

८—अहो भगवन् ! इन चौबीस तीर्थंकरों के बीच के कितने अन्तर (आंतरा) कहे हैं ? हे गौतम ! तेईस अन्तर कहे हैं।

९—अहो भगवन् ! इन तेईस अन्तरों में किन तीर्थं-

कर भगवान् के अन्तर में ❀ कालिकश्रुत (कालिकसूत्र) का विच्छेद कहा है ? हे गौतम ! पहले के आठ और अन्तिम के आठ जिनान्तरों में (तीर्थंकर के बीच के आन्तरों में) कालिकश्रुत का विच्छेद नहीं कहा है, किन्तु बीच के सात आन्तरों में कालिकश्रुत का विच्छेद कहा है। दृष्टिवाद का विच्छेद तो सभी अन्तरों में (तेईस ही अन्तरों में) कहा है।

१०—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणीकाल में आपके पूर्वों का ज्ञान कितने काल तक रहेगा ? गौतम ! एक हजार वर्ष तक रहेगा।

११—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणीकाल में तेईस तीर्थंकरों के पूर्वों का ज्ञान कितने काल तक रहा था ? हे गौतम ! कितने तीर्थंकरों

❀ जिस सूत्र का स्वाध्याय दिन और रात्रि के पहले और अन्तिम पहर में ही किया जा सकता हो, उसे कालिकश्रुत कहा गया है। जैसे आचाराङ्ग आदि २३ सूत्र (११ अङ्गसूत्र, ५ निरयावलिका, ४ छेदसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययन)।

जिस सूत्र का स्वाध्याय सभी समय (अस्वाध्याय के समय को छोड़कर) किया जा सकता हो, उसे उत्कालिकश्रुत कहते हैं। जैसे दशवैकालिक आदि ९ सूत्र (उववाई, रायप्रश्नीय, जीवाभिगम, पन्नवणा, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति, आवश्यकसूत्र)।

के पूर्वों का ज्ञान संख्यात काल तक और कितने तीर्थंकरों के पूर्वों का ज्ञान असंख्यात काल तक रहा था ।

१२—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणीकाल में आपका तीर्थ (शासन) कितने काल तक रहेगा ? हे गौतम ! इक्कीस हजार वर्ष तक रहेगा ।

१३—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में जो आगे तीर्थंकर होंगे, उनमें से अन्तिम तीर्थंकर का तीर्थ कितने काल तक रहेगा ? हे गौतम ! एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष तक रहेगा ।

१४—अहो भगवन् ! तीर्थ को तीर्थ कहते हैं या तीर्थंकर को तीर्थ कहते हैं ! हे गौतम ! अरिहन्त भगवान् तो नियमा-निश्चित रूप से) तीर्थंकर होते हैं, तीर्थ नहीं । साधु, साध्वी, श्रावक. श्राविका, ये चार 'तीर्थ' कहलाते हैं ।

१५—अहो भगवन् ! क्या प्रवचन प्रवचन है अथवा प्रवचनी (प्रवचन का उपदेशक) प्रवचन है ? हे गौतम ! अरिहन्त भगवान् तो नियमा (अवश्य) प्रवचनी हैं और द्वादशांग गणिपिटक (आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक १२ अंग सूत्र) प्रवचन है ।

१६—अहो भगवन् ! उग्रकुल, भोगकुल, राजन्य-कुल, (राज्यकुल) इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल, कौरव्यकुल, आदि कुलों के क्षत्रिय क्या जैनधर्म का पालन करके आठ कर्मों का क्षय करके सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त

करते हैं ? हां, गौतम ! सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं । कितनेक (जिनके कर्म बाकी रह जाते हैं) देवलोकों में उत्पन्न होते हैं ।

१७—अहो भगवन् ! देवलोक कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, ये चार प्रकार के देवलोक हैं ।

—❀—

९. विद्याचारण, जंघाचारण लब्धि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बीसवां, उद्देशा नौवां)

१—अहो भगवन् ❀चारण कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! चारण दो प्रकार के होते हैं—विद्याचारण और जंघाचारण ।

❀लब्धि के द्वारा आकाश में अतिशय गमन करने की शक्तिवाले मुनि को चारण कहते हैं । चारण के दो भेद हैं—विद्याचारण और जंघाचारण । विद्या के द्वारा अर्थात् पूर्वों के ज्ञान द्वारा जिस मुनि को अतिशय गमन करने की लब्धि प्राप्त होती है, उसे विद्याचारण कहते हैं । जिस मुनि को जंघा द्वारा अतिशय गमन करने की लब्धि प्राप्त होती है, उसे जंघाचारण कहते हैं ।

२—अहो भगवन् ! उनको 'विद्याचारण' क्यों कहते हैं ? हे गौतम ! निरन्तर बेले-बेले तपस्या करने से और पूर्वों के ज्ञान द्वारा उत्तरगुणलब्धि (तपोलब्धि) को प्राप्त हुए मुनि को 'विद्याचारण' नामक लब्धि उत्पन्न होती है। इसलिये उनको 'विद्याचारण' कहते हैं।

३- अहो भगवन् ! विद्याचारण की कैसी शीघ्रगति होती है ? उसकी गति का विषय कैसा शीघ्र होता है ? हे गौतम ! इस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन गाऊ (कोस), एक सौ अट्ठाईस धनुष, साढ़ी तेरह अंगुल झाझेरी (कुछ अधिक) है। कोई महर्द्धिक देव तीन चिमटी बजावे उतने में इस जम्बूद्वीप की तीन बार परिक्रमा करके वापिस शीघ्र आवे। इसी तरह की शीघ्रगति विद्याचारण की है। इस प्रकार उसकी गति का विषय शीघ्र है।

४—अहो भगवन् ! विद्याचारण के तिरछा जाने का विषय कितना है ? हे गौतम ! एक उत्पात (उड़ान) में मानुषोत्तरपर्वत पर समवसरण (स्थिति, विश्राम) करते हैं, दूसरे उत्पात में नन्दीश्वरद्वीप में समवसरण करते हैं। वहां से वापिस एक ही उत्पात से यहां आकर समवशरण करते हैं।

५—अहो भगवन् ! विद्याचारण के ऊर्ध्वगमन (ऊंचा जाने) का विषय कितना है ? हे गौतम ! एक उत्पात से नन्दनवन में समवसरण करते हैं, दूसरे उत्पात से पण्डुक-वन में समवसरण करते हैं। वहां से वापिस एक ही उत्पात से यहां आकर समवसरण करते हैं।

६—अहो भगवन् ! जंघाचारणलब्धि कैसे प्राप्त होती है ? हे गौतम ! शास्त्र में कही हुई विधि के अनुसार तेले-तेले पारणा करने से जंघाचारणलब्धि की प्राप्ति होती है ।

७—अहो भगवन् ! जंघाचारण की कैसी शीघ्र गति होती है ? हे गौतम ! कोई महर्द्धिक देव तीन चिमटी बजावे उतने में इस जम्बूद्वीप की २१ बार परिक्रमा करके वापिस शीघ्र लौट आवे इस तरह की शीघ्र गति जंघाचारण की हैं । इस प्रकार उसको गति का विषय शीघ्र है ।

८ अहो भगवन् ! जंघाचारण के तिरछा जाने का विषय कितना है ? हे गौतम ! वे एक उत्पात से रुचकवरद्वीप में जाकर समवसरण करते हैं । वहां से वापिस आते समय एक उत्पात से नन्दीश्वर द्वीप में समवसरण करते हैं और दूसरे उत्पात से वे यहां आकर समवसरण करते हैं ।

९—अहो भगवन् ! जंघाचारण के ❀ उर्ध्वगमन (ऊंचा

❀ विद्याचारण का गमन दो उत्पात से होता है और आगमन एक उत्पात से होता है । जंघाचारण का गमन एक उत्पात से और आगमन दो उत्पात से होता है । इन लब्धियों का ऐसा ही स्वभाव है ।

इस विषय में दूसरे आचार्यों का मत इस प्रकार है—

जाने) का विषय कितना है ? हे गौतम ! वे एक उत्पात द्वारा पण्डुकवन में समवसरण करते हैं। वहां से वापिस आते समय एक उत्पात से नन्दनवन में समवसरण करते हैं। दूसरे उत्पात से स्वस्थान पर आ जाते हैं॥।

दोनों प्रकार की लब्धि वाले मुनि इस विषय की आलोचना, प्रतिक्रमण कर लेवे तो आराधक होते हैं और आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जायें (मृत्यु को प्राप्त हो जांय) तो आराधक नहीं होते हैं।

उपपत्या विद्याचारण की विद्या जाते समय मन्द अभ्यास वाली होती है। इसलिए गमन दो उत्पात द्वारा होता है। उनकी विद्या आते समय तेज अभ्यास वाली होती है इसलिए आगमन एक ही उत्पात द्वारा होता है।

जंघाचारण की लब्धि ज्यों-ज्यों उपयोग में आती है, त्यों-त्यों वह अल्प सामर्थ्य वाली हो जाती है। इसलिए उसका गमन एक उसका गमन एक उत्पात द्वारा होता है और आगमन दो उत्पात द्वारा होता है।

॥विद्याचारण की जंघाचारण लब्धि वाले मुनि नन्दीश्वर द्वीप, रुचकद्वीप, पण्डुकवन में गये हों, ऐसा शास्त्रपाठ में कहीं वर्णन नहीं आता है। यहां पर उनके तिरछा जाने और ऊंचा जाने की शक्ति के प्रश्नोत्तर हैं।



१०. सोपक्रमी निरूपक्रमी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बीसवां, उद्देशा दसवां)

१—अहो भगवन् ! आयुष्य के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! आयुष्य के दो भेद हैं—सोपक्रमी और निरुपक्रमी।

२ अहो भगवन् ! सोपक्रमी और निरुपक्रमी आयुष्य किसे कहते हैं ? हे गौतम ! जो आयुष्य※अध्यवसान, निमित्त आदि सात कारणों से अप्राप्तकाल में (बीच में) ही टूट जाय, क्षय हो जाय, उसको सोपक्रमी कहते हैं।

※ १—अध्यवसान अर्थात् राग, स्नेह या भय रूप प्रबल मानसिक आघात पहुंचाना।

२—निमित्त—शास्त्र, दण्ड आदि का निमित्त मिलना।

३—आहार अधिक आहार करना।

४—वेदना—आंख या शूल आदि की असह्य वेदना होना।

५—पराघात - गड्ढे आदि में गिर पड़ना।

६—स्पर्श - सांप आदि काट ले अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श हो जिसके स्पर्श से शरीर में विष फैल जाय।

७—आणपाण—श्वासोच्छ्वास की गति बंद हो जाय।

आयुष्य टूटने के सात कारणों में से कोई भी कारण (उपक्रम) न लगे, किन्तु मृत्यु आने पर ही मरण हो, उस आयुष्य को निरुपक्रमी आयुष्य कहते हैं ।

३—अहो भगवन् ! किन जीवों में कौनसा आयुष्य पाया जाता है ? हे गौतम! समुच्चय जीव और औदारिक के दस दण्डक में दोनों प्रकार का (सोपक्रमी और निरुपक्रमी) आयुष्य पाया जाता है । नारकी, देवता के १४ दण्डक में एक निरुपक्रमी आयुष्य पाया जाता है ❀।

४—अहो भगवन् ! मरण कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! मरण तीन प्रकार का है—१ आत्मोपक्रम—आत्मघात (अपघात) करके मरना श्रेणिक राजा की तरह । २—परोपक्रम—पर निमित्त से मरना, जैसे—कोणिक राजा । ३ निरुपक्रम—स्वाभाविक रूप से मृत्यु आने पर मरना, जैसे कालशौकरिक कसाई ।

५—अहो भगवन् ! किन जीवों में कौनसा मरण पाया जाता है ? हे गौतम ! नारकी, देवता के १४ दण्डक में एक निरुपक्रममरण पाया जाता है । पृथ्वीकायादि दस औदारिक दण्डक में तीनों ही प्रकार के मरण पाये जाते हैं ।

❀ देव, नारकी, असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यञ्च और मनुष्य, उत्तम पुरुष और चरमशरीरी जीव निरुपक्रमी आयुष्य वाले होते हैं ।

६—अहो भगवन् ! ऋद्धि कितने प्रकार की है। गौतम ! ऋद्धि दो प्रकार की है—आत्मऋद्धि और पर-ऋद्धि। चौबीस ही दण्डक के जीव आत्मऋद्धि का प्रयोग कर मर कर परभव में जाते हैं। कोई भीव परऋद्धि का प्रयोग कर नहीं मरता है।



११. चरम परम का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक उन्नीसवां, उद्देशा पांचवां)

१—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिक क्या चरम (अल्प आयुष्य बाकी रहा हे) हैं या परम (अधिक आयुष्य बाकी है) हैं ? हे गौतम ! नारकी के नैरयिक चरम भी हैं और परम भी हैं।

२—अहो भगवन् ! क्या चरम नैरयिकों की अपेक्षा नैरयिक महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआश्रव वाले, महावेदना वाले होते हैं और क्या परम नैरयिक की अपेक्षा चरम नैरयिक अल्पकर्म वाले अल्पक्रिया वाले अल्प-आश्रव वाले अल्पवेदना वाले होते हैं ? हां, गौतम ! होते हैं। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम!

आयुष्य की स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहा गया है ❀।

जिस तरह नारकी का कहा, उसी तरह पृथ्वीकायादि औदारिक के दस दण्डक का भी कह देना चाहिए ।

३—अहो भगवन् ! क्या असुरकुमार देव चरम (अल्प आयुष्य वाले) और परम (अधिक आयुष्य वाले) होते हैं ? हां गौतम ! चरम और परम दोनों होते हैं ।

४—अहो भगवन् ! क्या चरम असुरकुमार देवों की अपेक्षा परम असुरकुमार देव अल्पकर्म वाले, अल्प क्रिया वाले अल्पआश्रव वाले, अल्पवेदना वाले होते हैं और परम असुरकुमार देवों की अपेक्षा चरम असुरकुमार देव महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआश्रव वाले, महावेदना वाले होते हैं ? हां गौतम ! होते हैं । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! अशुभ कर्म की अपेक्षा से ऐसा कहा गया है ।

जिस प्रकार असुरकुमार देवों का कहा उसी तरह

❀ जिन नैरयिकों की स्थिति दीर्घ (लम्बी आयुष्य) होती है उनके अल्पस्थिति वाले नैरयिकों की अपेक्षा अशुभकर्म ज्यादा होते हैं, इस अपेक्षा से वे महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआश्रव वाले, महावेदना वाले होते हैं । जिन नैरयिकों की स्थिति अल्प होती है वे दीर्घस्थिति वाले नैरयिकों की अपेक्षा अल्पकर्म वाले, अल्पक्रिया वाले, अल्पआश्रव वाले, अल्पवेदना वाले होते हैं ।

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में कह देना चाहिए।



१२. द्वीप समुद्र का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उन्नीसवां, उद्देशा छठा)

१—अहो भगवन् ! द्वीप, समुद्र कितने कहे गये हैं ? हे गौतम ! असंख्यात कहे गये हैं—जैसे कि—जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदधिसमुद्र, पुष्करवरद्वीप, पुष्करवरसमुद्र, वारुणीद्वीप, वारुणीसमुद्र, क्षीरद्वीप, क्षीर-समुद्र, घृतद्वीप, घृतसमुद्र, ईक्षुद्वीप, ईक्षुसमुद्र, नन्दीश्वरद्वीप, नन्दीश्वरसमुद्र, अरुणद्वीप, अरुणसमुद्र, अरुणवरद्वीप, अरुणवर-समुद्र, अरुणवरभासद्वीप,अरुणवरभाससमुद्र, कुंडलद्वीप, कुंडल-समुद्र, कुंडलवरद्वीप, कुंडलवरसमुद्र, कुंडलवरभासद्वीप, कुंडलवरभाससमुद्र, रुचकद्वीप, रुचक समुद्र यावत् स्वयंभूर-मण समुद्र तक असंख्यात द्वीप समुद्र हैं।

२—अहो भगवन् ! इन द्वीप समुद्रों का संस्थान (आकार) कैसा है ? हे गौतम जम्बूद्वीप का संस्थान थाली के आकार है। शेष सब द्वीप, समुद्रों का संस्थान चूड़ी के आकार है।

३—अहो भगवन् ! इन द्वीप, समुद्रों का विष्कम्भ (चौड़ाई) कितना है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप एक लाख योजन का है। लवणसमुद्र दो लाख योजन का है। इस

तरह द्वीप और समुद्र एक एक से दुगने दुगने होते गये हैं।

४—अहो भगवन् ! इन द्वीप, समुद्रों की परिधि कितनी है ? हे गौतम ! जिस द्वीप और समुद्र की पूर्व से पश्चिम तक जितनी चौड़ाई है उससे तिगुणी (तीन गुणी) झाझेरी परिधि कह देनी चाहिए, जैसे की जम्बूद्वीप की परिधि ३ लाख, १६ हजार, २२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष, १३।। अंगुल झाझेरी (कुछ अधिक) है। लवण-समुद्र की परिधि १५ लाख, ८१ हजार, १३९ योजन किंचित ऊणी है। धातकीखण्डद्वीप की परिधि ४१ लाख, १० हजार, ९६१ योजन, किंचित् ऊणी है। कालोदधिसमुद्र की परिधि ९१ लाख, ७० हजार, ६०५ योजन झाझेरी है। अर्द्ध पुष्करवरद्वीप की परिधि १ करोड़, ४२ लाख, ३० हजार, २४९ योजन झाझेरी है। सम्पूर्ण पुष्करवरद्वीप की परिधि १ करोड़, ९२ लाख, ८९ हजार, ८९४ योजन की है। इस तरह सब द्वीप समुद्रों की परिधि जान लेनी चाहिए।

५—अहो भगवन् ! इन द्वीप समुद्रों के कितने-कितने दरवाजे हैं। और उनका परस्पर कितना अन्तर है ? हे गौतम ! प्रत्येक द्वीप समुद्र के चार-चार दरवाजे हैं। जम्बूद्वीप के प्रत्येक दरवाजे का अन्तर ७९ हजार, ५२ योजन झाझेरा है। लवणसमुद्र के प्रत्येक दरवाजे का अन्तर ३ लाख ९५ हजार २८०¼ योजन का है। धातकी-खण्डद्वीप के प्रत्येक दरवाजे का अन्तर १० लाख, २७ हजार, ७३५।।। योजन का है। कालोदधिसमुद्र के प्रत्येक दरवाजे का अन्तर २२ लाख, ९२ हजार ६४६।।। योजन

का है। पुष्करवरद्वीप के प्रत्येक दरवाजे का अन्तर ४८ लाख, २२ हजार, ४६६ योजन का है। इन सब द्वीप समुद्रों के किनारे एक–एक पद्मवरवेदिका है और दो–दो वनखण्ड हैं, एक-एक अन्दर और एक-एक बाहर। जम्बूद्वीप के जागती है, दूसरों के नहीं है।

६—अहो भगवन् ! इन समुद्रों के पानी का स्वाद कैसा है ? हे गौतम ! लवणसमुद्र का पानी खारा है। कालोदधि समुद्र, पुष्करवरसमुद्र और स्वयंभूरमणसमुद्र, इन तीन समुद्रों के पानी का स्वाद पानी जैसा है। वारुणी–समुद्र के पानी का स्वाद मदिरा सरीखा है। क्षीरसमुद्र के पानी का स्वाद खीर (दूध) जैसा है। घृतसमुद्र के पानी का स्वाद घृत (घी) जैसा है। बाकी सब समुद्रों के पानी का स्वाद ईक्षुरस (गन्ने का रस) सरीखा है।

७—अहो भगवन् ! इन द्वीप समुद्रों के कितने देवता मालिक हैं ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र का एक एक देवता मालिक हैं। बाकी सब द्वीप समुद्रों के दो दो देवता मालिक हैं।

८—अहो भगवन् ! इन सब देवों की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! इन सब मालिक देवताओं की स्थिति एक-एक पल्योपम की है।

: ∆ :

१३. देवता की विकुर्वणा आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा पांचवां)

१—अहो भगवन् ! एक असुरकुमारावास में दो असुरकुमार, असुरकुमार देवतापने उत्पन्न हुए। उनमें एक असुरकुमार देव प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर लगता है और दूसरा असुरकुमार देव प्रसन्नता उत्पन्न नहीं करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर नहीं लगता, इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! असुरकुमार देव दो प्रकार के हैं—❀ वैक्रियशरीर वाले (विभूषितशरीर वाले) और अवैक्रिय (अविभूषित) शरीर वाले। जो असुरकुमार देव विभूषित शरीर वाले हैं वे सुन्दर मनोहर लगते हैं और जो विभूषित शरीर वाले नहीं हैं वे सुन्दर मनोहर नहीं लगते। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जैसे इस मनुष्यलोक में भी दो मनुष्यों में एक तो आभूषणों से अलंकृत, विभूषित शरीर वाला हो और दूसरा अलकृत विभूषित शरीर वाला न हो। हे गौतम ! उन दोनों में कौन पुरुष सुन्दर मनोहर लगता है और कौन सुन्दर मनोहर नहीं लगता ? अहो भगवन् ! उन दोनों पुरुषों में जो अलंकृत-विभूषित शरीर वाला है,

---

❀ जब जीव जाकर देवशय्या में उत्पन्न होता है उस समय वह विभूषा—अलंकार रहित उत्पन्न होता है इसके वाद वह अनुक्रम से अलंकार पहनकर विभूषित होता है।

वह सुन्दर मनोहर लगता है और जो अलंकृत-विभूषित शरीर वाला नहीं है, वह सुन्दर मनोहर नहीं लगता। हे गौतम ! इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक देवों में भी जानना चाहिए।

२—अहो भगवन् ! एक नरकावास में दो नैरयिक नैरयिकपने उत्पन्न हुए, उनमें से एक नैरयिक महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और एक नैरयिक अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है। इसका क्या कारण ? हे गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं —मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसमदृष्टि। उनमें मायी-मिथ्यादृष्टि महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और अमायीसमदृष्टि अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है। *एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़कर बाकी १६ दण्डक में इसी प्रकार कह देना चाहिए।

३—अहो भगवन् ! जो नैरयिक नारकी से निकल निकल कर (मरकर) तुरन्त तिर्यंचपंचेन्द्रिय में उत्पन्न होने वाला है वह कौन से आयुष्य को वेदता है (अनुभव करता

---

*एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय मायीमिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अमायीसमदृष्टि नहीं होते। इसलिए उनमें अल्प-कर्म, अल्पवेदना नही होती। महाकर्म, महावेदना ही होती है।

है) ? हे गौतम ! ❀वह नारकी के आयुष्य को वेदता है और तिर्यंचपंचेन्द्रिय के आयुष्य को उदयाभिमुख (सामने) करता है। इसी प्रकार मनुष्य का भी कह देना चाहिए, किन्तु वह मनुष्य के आयुष्य को उदयाभिमुख करता है।

४—अहो भगवन् ! जो असुरकुमार देव असुरकुमारों से मरकर तुरन्त पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने वाला है, वह कौन से आयुष्य को वेदता है ? हे गौतम ! वह असुरकुमार के आयुष्य को वेदता है और पृथ्वीकायिक आयुष्य को उदयाभिमुख करता है। इसी प्रकार जो जीव जहां उत्पन्न होने वाला होता है, वह उसकी आयुष्य को उदयाभिमुख करता है और जिस गति में रहा हुआ है उस गति के आयुष्य को वेदता है। इसी प्रकार वैमानिक तक कह देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि जो पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय में ही उत्पन्न होने वाले हैं वे पृथ्वीकाय के आयुष्य को वेदते हैं और दूसरे पृथ्वीकाय के आयुष्य को ही उदयाभिमुख करते हैं। इस तरह मनुष्यों तक स्वस्थान, परस्थान की अपेक्षा कह देना चाहिए।

५—अहो भगवन् ! एक असुरकुमारावास में दो असुरकुमार देव असुरकुमार देवपने उत्पन्न हुए। उनमें से एक असुरकुमार देव ऋजु (सीधी-सरल) विकुर्वणा करना चाहता है तो ऋजु (सीधी-सरल) विकुर्वणा कर लेता है

❀ जब तक नारकी का शरीर धारण किये हुए है तब तक नारकी का आयुष्य वेदता है और नारकी का शरीर छोड़ देने बाद तिर्यंच के आयुष्य को वेदता है।

और वक्र (टेढ़ी) विकुर्वणा करना चाहता है तो वक्र (टेढ़ी) विकुर्वणा कर लेता है। अर्थात् जिस प्रकार की विकुर्वणा करना चाहता है उसी प्रकार की विकुर्वणा कर लेता है। एक असुरकुमार देव ऋजु विकुर्वणा करना चाहता है किन्तु वक्र (टेढ़ी) विकुर्वणा हो जाती है और वक्र (टेढ़ी) विकुर्वणा करना चाहता है किन्तु ऋजु (सीधी) विकुर्वणा हो जाती है, अर्थात् जिस प्रकार की विकुर्वणा करना चाहता है उस प्रकार की विकुर्वणा नहीं कर सकता है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! असुरकुमार देव दो प्रकार के कहे गये हैं—मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसमदृष्टि। जो❀मायीमिथ्यादृष्टि देव हैं वे ऋजु रूप विकुर्वणा चाहें तो वक्र और वक्ररूप विकुर्वणा चाहें तो ऋजुरूप विकुर्वणा हो जाती है अर्थात् जैसे रूप की विकु-

---

❀ कितनेक देव अपनी इच्छानुसार सीधी या बांकी विकुर्वणा कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने आर्जवता (सरलता) और सम्यग्दर्शन निमित्तक तीव्र रस वाले वैक्रियनामकर्म का बन्ध किया है। कितनेक देव सीधी या टेढ़ी अपनी इच्छानुसार विकुर्वणा नहीं कर सकते हैं, इसका कारण यह है कि उन्होंने माया और मिथ्यादर्शन निमित्तक मन्द रस वाले वैक्रियनामकर्म का बन्ध किया है। इसलिए ऐसा कहा गया है कि अमायीसमदृष्टि देव अपनी इच्छानुसार रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं और मिथ्यादृष्टि देव अपनी इच्छानुसार रूपों की विकुर्वणा नहीं कर सकते हैं।

र्वणा करना चाहते हैं, वैसे रूप की विकुर्वणा नहीं कर सकते हैं। जो अमायी समदृष्टि है वे ऋजुरूप विकुर्वणा चाहें तो ऋजु और वक्ररूप विकुर्वणा चाहे तो वक्ररूप विकुर्वणा कर सकते हैं अर्थात् जैसे रूप की विकुर्वणा करना चाहते हैं वैसे रूप की विकुर्वणा कर सकते हैं।

---

१४. परमाणु आदि का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा छठा)

१—अहो भगवन् ! फाणित (गीला) गुड़ में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं ? हे गौतम ! व्यवहारनय की अपेक्षा मधुररस पाया जाता है और निश्चयनय की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श पाये जाते हैं।

२—अहो भगवन् ! भंवरे (भ्रमर) में कितने वर्णादि पाये जाते हैं ? हे गौतम ! व्यवहारनय की अपेक्षा भंवरे में कालावर्ण है और निश्चयनय की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श होते हैं।

३—अहो भगवन् ! तोते की पांख कितने वर्णादि वाली होती है ? हे गौतम ! व्यवहारनय की अपेक्षा तोते की पांख नीली होती है और निश्चयनय की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श वाली होती है। इसी प्रकार व्यवहारनय की अपेक्षा मजीठ में लाल वर्ण, हल्दी

पीला वर्ण, शंख में सफेद वर्ण, कुट (पटबास -- कपड़े सुगन्ध देने की पत्ती) में सुगन्ध, मुर्दा (मृतक शरीर) दुर्गन्ध, नीम में कड़वारस, सूंठ में कटुकरस, कविठ में कषायलारस, आमली (इमली) में खट्टारस, खांड में धुररस, वज्र में कर्कश (कठोर) स्पर्श, मक्खन में कोमल र्श, पत्थर में भारी (गुरु) स्पर्श, बोरड़ी के पत्ते में ल्का (लघु) स्पर्श, बर्फ में ठण्डास्पर्श, अग्नि में उष्णस्पर्श, ल में चिकना (स्निग्ध) स्पर्श है और निश्चयनय की अपेक्षा इन सब में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श होते हैं।

४—अहो भगवन् ! राख में कितने वर्णादि होते हैं ? हे गौतम ! व्यवहारनय की अपेक्षा एक रूक्ष (लूखा) स्पर्श होता है और निश्चयनय की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गन्ध पांच रस और आठ स्पर्श होते हैं।

५—अहो भगवन् ! एक परमाणुपुद्गल में कितने वर्णादि होते हैं ? हे गौतम ! एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श होते हैं।

६—अहो भगवन् ! द्विप्रदेशी स्कन्ध में कितने वर्णादि होते हैं ? हे गौतम ! सिय (कदाचित्) एक वर्ण, सिय दो वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस, सिय दो रस, सिय दो स्पर्श, सिय तीन स्पर्श, सिय चार स्पर्श होते हैं। इसी प्रकार तीन प्रदेशी स्कन्ध में सिय एक वर्ण, सिय दो वर्ण, सिय तीन वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस, सिय दो रस, सिय

तीन रस, सिय दो स्पर्श, सिय तीन स्पर्श, सिय चार स्पर्श होते हैं। इसी तरह चार प्रदेशी स्कन्ध में सिय एक वर्ण, सिय दो वर्ण सिय तीन वर्ण, सिय चार वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस, सिय दो रस, सिय तीन रस, सिय चार रस, सिय दो स्पर्श, सिय तीन स्पर्श, सिय चार स्पर्श होते हैं। इसी तरह पांच प्रदेशी स्कन्ध में सिय एक वर्ण, सिय दो वर्ण, सिय तीन वर्ण, सिय चार वर्ण, सिय पांच वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस, सिय दो रस, सिय तीन रस, सिय चार रस, सिय पांच रस, सिय दो स्पर्श, सिय तीन स्पर्श, सिय चार स्पर्श होते हैं।

जिस प्रकार पांच प्रदेशी स्कन्ध का कहा, उसी प्रकार छह प्रदेशी स्कन्ध यावत् असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध तक कह देना चाहिए।

७—अहो भगवन्! सूक्ष्म परिणाम वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध में कितने वर्णादि होते हैं? हे गौतम! जिस तरह पांच प्रदेशी स्कन्ध का कहा उसी तरह कह देना चाहिए।

८—अहो भगवन्! बादर (स्थूल) परिणाम वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध में कितने वर्णादि होते हैं? हे गौतम! सिय एक वर्ण यावत् सिय पांच वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस यावत् सिय पांच रस, सिय चार स्पर्श यावत् सिय आठ स्पर्श होते हैं।

१५. यक्षा वेश और उपधि आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा सातवां)

१—अहो भगवन्! अन्यतीर्थी ऐसा कहते हैं कि केवली भगवान् यक्षावेश से आविष्ट होकर मृषा (असत्य) भाषा और मिश्र भाषा बोलते हैं। अहो भगवन्! क्या उनका यह कहना ठीक है? हे गौतम! अन्यतीर्थियों का यह कहना मिथ्या है, क्योंकि केवली भगवान् यक्षावेश से आविष्ट नहीं होते। इसलिये वे मृषाभाषा और मिश्रभाषा नहीं बोलते किन्तु दूसरे जीवों का उपघात न करने वाली निरवद्य (पापरहित) सत्यभाषा और व्यवहारभाषा ये दो भाषाएं बोलते हैं।

२—अहो भगवन्! उपधि कितने प्रकार की है? हे गौतम! ❀उपधि तीन प्रकार की हैं—कर्म-उपधि, शरीर—उपधि बाह्यभंडोपगरण-उपधि।

३—अहो भगवन्! नैरयिकों में कितनी उपधि होती है? हे गौतम! नैरयिकों में दो उपधि होती है-कर्म-उपधि और शरीर-उपधि, इसी तरह पांच स्थावर में भी

❀ जीवननिर्वाह में उपयोगी शरीर वस्त्रादि को उपधि कहते हैं। इसके दो भेद हैं—आभ्यन्तर और बाह्य। कर्म और शरीर आभ्यन्तर उपधि है, वस्त्र पात्र घर आदि बाह्य उपधि है।

ये दो उपधि पाई जाती है । बाकी १८ दण्डक में तीनों उपधि पाई जाती है ।

४—अहो भगवन् ! उपधि कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! उपधि तीन प्रकार की है—सचित्त, अचित्त और मिश्र । ×नारकी से लेकर वैमानिक तक २४ ही दण्डक में तीनों प्रकार की उपधि पाई जाती हैं ।

५—अहो भगवन् ! परिग्रह कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! ÷परिग्रह तीन प्रकार के हैं—कर्म-परिग्रह, शरीर-परिग्रह, वस्त्रपात्रादि रूप बाह्य उपकरण परिग्रह । नारकी और पांच स्थावर में दो परिग्रह होते हैं—कर्म और शरीर । बाकी १८ दण्डक में तीनों परिग्रह होते हैं ।

६—अहो भगवन् ! परिग्रह कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! तीन प्रकार के हैं—सचित्त, अचित्त और मिश्र । २४ ही दण्डक में तीनों प्रकार के परिग्रह पाये जाते हैं ।

×नारकी में सचित्त उपधि शरीर है । अचित्त उपधि उत्पत्तिस्थान है और श्वासोच्छ्वासादि युक्त सचेतनाचेतन रूप मिश्र उपधि है ।

÷जीवननिर्वाह में उपयोगी कर्म, शरीर और वस्त्रादि उपधि कहलाते हैं । इन्हीं को ममत्वबुद्धि से ग्रहण किया जाय तो परिग्रह कहलाता है । यही उपधि और परिग्रह में भेद हैं ।

७—अहो भगवन् ! ❀प्रणिधान कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! तीन प्रकार हैं—मनप्रणिघान, वचनप्रणिधान, कायप्रणिधान । पांच स्थावर में एक कायप्रणिधान, तीन विकलेन्द्रियों में दो प्रणिघान—कायप्रणिधान, वचनप्रणिधान, बाकी १६ दण्डक में तीनों प्रणिघान पाये जाते हैं ।

८—अहो भगवन् ! दुष्प्रणिधान कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! दुष्प्रणिधान तीन प्रकार के हैं—मनदुष्प्रणिधान, वचन दुष्प्रणिधान, कायदुष्प्रणिधान । पांच स्थावरों में एक कायदुष्प्रणिधान, तीन विकलेन्द्रियों में कायदुष्प्रणिधान और वचनदुष्प्रणिधान, बाकी १६ दण्डक में तीनों ही दुष्प्रणिधान पाये जाते हैं ।

९—अहो भगवन् ! =सुप्रणिधान कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! सुप्रणिधान तीन प्रकार के हैं-मनसुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान, कायसुप्रणिधान ।

अहो भगवन् ! मनुष्यों में कितने प्रकार के सुप्रणिधान

❀ मन, वचन और काय योग को किसी एक पदार्थ में स्थिर करना प्राणिधान कहलाता है । मन, वचन, काया की सुप्रवृत्ति को सुप्रणिधान और दुष्टवृत्ति को दुष्प्रणिधान कहते हैं ।

=जिन के चारित्र होता है, उन्हीं में सुप्रणिधान पाया जाता है ।

होते हैं ? अहो गौतम ! तीनों प्रकार के सुप्रणिधान होते हैं । बाकी २३ दण्डक में सुप्रणिधान नहीं होते हैं ।

ΔΔ

१६. मंडुकश्रावक का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा सातवां)

१—राजगृह नगर में जीवाजीवादि तत्त्व का जानकार मंडुक नाम का श्रमणोपासक (श्रावक) रहता था। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रमण भगवन् महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशिल उद्यान में पधारे । भगवान् के पधारने की खबर सुनकर मंडुक श्रावक बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ । वह भगवान् को वन्दना नमस्कार करने के लिये घर से निकला । उस गुणशिल उद्यान के आसपास कालोदायी, सेलोदायी आदि बहुत से अन्यतीर्थी रहते थे । उन्होंने मंडुक श्रावक से प्रश्न पूछे—हे मंडुक ! तुम्हारे धर्मोपदेशक धर्माचार्य ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी धर्मास्तिकाय आदि पांच अस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं । वे कैसे मानी जा सकती है ? क्या तुम धर्मास्तिकायादि को जानते देखते हो ? मंडुक श्रावक ने उत्तर दिया कि जो पदार्थ कुछ भी कार्य (क्रिया) करता है वह उस कार्य द्वारा जाना जा सकता है । परन्तु जो पदार्थ कुछ भी कार्य नहीं करता, निष्क्रिय (क्रियारहित) होता है, उसको कोई जान भी नहीं

सकता है और देख भी नहीं सकता है ❀। इस बात को सुनकर अन्यतीर्थियों ने उपालम्भ पूर्वक कहा कि तुम श्रमणोपासक हुए हो। तुम्हें धर्मास्तिकायादि का भी ज्ञान नहीं है। तब मंडुक श्रावक ने अन्यतीर्थियों को इस प्रकार उत्तर दिया—वायु बहती (चलती) है। क्या तुम उसके रूप को देखते हो ? अन्यतीर्थियों ने कहा कि हम वायु के रूप को नहीं देखते हैं' फिर मंडुक श्रावक ने उनसे पूछा कि क्या गन्ध वाले पुद्गल हैं ? उन्होंने कहा—हां, हैं। क्या तुम उन्हें देखते हो ? अरणी काष्ठ में अग्नि है, समुद्र के उस पार अनेक पदार्थ हैं, देवलोक में अनेक रूप हैं, उन सब को क्या तुम देखते हो ? अन्यतीर्थियों ने कहा कि हे मंडुक ! हम इन सब पदार्थों को नहीं देखते हैं। तब मंडुक श्रावक बोला कि तुम इन्हें नहीं देखते हो तो भी मानते हो या नहीं ? तब अन्यतीर्थियों ने कहा कि हां, हम इन्हें मानते हैं। तब मंडुक श्रावक ने कहा कि हे आयुष्मंतो ! हम या तुम अथवा अन्य कोई छद्मस्थ मनुष्य जिन पदार्थों को नहीं जानते या नहीं देखते, यदि वे सब पदार्थ न होवें तो तुम्हारी मान्यतानुसार संसार में

❀धर्मास्तिकायादि पांच अस्तिकाय निश्चयनय से सक्रिय होने से मैं जानता हूं, देखता नहीं। व्यवहारनय से जीव और पुद्गल सक्रिय हैं इसलिए मैं जानता हूं और देखता हूं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय अक्रिय हैं, इसलिए इनको मैं जानता नहीं और देखता नहीं।

बहुत से पदार्थों का अभाव हो जाय । ऐसा कहकर मंडुक श्रावक ने अन्यतीर्थियों को निरुत्तर कर दिया । इसके बाद मंडुक श्रावक श्रमण भगवान् महावीर के पास गया । भगवान् को वन्दना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा । तब भगवान् ने मंडुक श्रावक को सम्बोधित करके फरमाया कि हे मंडुक ! तुमने अन्यतीर्थियों को ठीक उत्तर दिया, बराबर उत्तर दिया । जो कोई जाने बिना, देखे बिना या सुने बिना अदृष्ट, अश्रुत, असम्मत या अविज्ञान अर्थ को, हेतु को, प्रश्न के उत्तर को कहता है, जतलाता है यावत् दर्शाता है वह अरिहंतों की, अरिहन्तप्ररूपित धर्म-की, केवली की, केवली प्ररूपित धर्म की आशातना करता है । इसलिए हे मंडुक ! तुमने अन्यतीर्थियों को ठीक उत्तर दिया । भगवान् के कथन को सुनकर मंडुक श्रावक प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ । भगवान् ने धर्मकथा फरमाई । धर्म-कथा सुनकर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके वापिस अपने घर गया ।

गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके पूछा कि अहो भगवन् ! क्या मंडुक श्रावक आपके पास दीक्षा लेने में समर्थ है ? हे गौतम ! मंडुक श्रमणोपासक दीक्षा लेने में समर्थ नहीं है वह बहुत वर्षों तक श्रावकपना पालन कर पहले देवलोक के अरुणाभ विमान में देव होगा । वहां से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा ।

—ॐ—

१७. पुण्य खपाने का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा सातवां)

१—अहो भगवन् ! क्या महाऋद्धिवाला यावत् महा सुख वाला देव लवणसमुद्र के चारों तरफ फिर कर शीघ्र आने में समर्थ है। हां, गौतम ! समर्थ है। इस तरह धातकीखंड द्वीप यावत् रुचकवरद्वीप तक चारों तरफ फिरकर शीघ्र आने में समर्थ हैं। इसके आगे द्वीप समुद्रों तक जाने में समर्थ हैं किन्तु उसके चारों तरफ फिरते हैं❀।

२—अहो भगवन् ! क्या ऐसे देव हैं जो अनन्त शुभ प्रकृति रूप कर्मों को जघन्य एकसौ वर्षों में, दोसौ वर्षों में, तीनसौ वर्षों में यावत् उत्कृष्ट ५ लाख वर्षों में खपाते हैं ? हां गौतम ! ऐसे देव हैं। अहो भगवन् ! ऐसे कौन से देव हैं ? हे गौतम ! वाणव्यन्तर देव हंसी कुतूहल करके अनन्त शुभप्रकृति रूप कर्मों को एक सौ वर्षों में खपाते हैं, उतने कर्मों को असुरेन्द्र के सिवाय भवनपति देव दो सौ वर्षों में खपाते हैं, असुरकुमार तीन सौ वर्षों में खपाते हैं, ग्रह, नक्षत्र, तारा चार सौ वर्षों में खपाते हैं, चन्द्र, सूर्य पांच सौ वर्षों में खपाते हैं, पहले दूसरे देवलोक

❀ प्रयोजन नहीं होने से चारों तरफ नहीं फिरते हैं, ऐसा सम्भव है। (टीका)।

के देव एक हजार वर्ष में खपाते हैं, तीसरे चौथे देवलोक के देव दो हजार वर्षों में खपाते हैं, पांचवें छठे देवलोक के देव तीन हजार वर्षों में खपाते हैं, सातवें देवलोक के देव चार हजार वर्षों में खपाते हैं, नवमें दसवें ग्यारहवें और बारहवें देवलोक के देव पांच हजार वर्षों में खपाते हैं, नवग्रैवेयक की पहली त्रिक देव एक लाख वर्षों में खपाते हैं, नवग्रैवेयक की दूसरी त्रिक के देव दो लाख वर्षों में खपाते हैं, नवग्रैवेयक की तीसरी त्रिक के देव तीन लाख वर्षों में खपाते हैं, चार अनुत्तर विमानों के देव चार लाख वर्षों में खपाते हैं, सर्वार्थसिद्ध के देव पांच लाख वर्षों में खपाते हैं ।



१८. परमाणु का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा आठवां)

१—अहो भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य परमाणु-पुद्गल को जानता और देखता है अथवा नहीं जानता, नहीं देखता है ? हे गौतम ! कोई जानता है, परन्तु देखता नहीं । कोई जानता भी नहीं और देखता भी नहीं । इसी तरह दोप्रदेशी स्कन्ध यावत् असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक कह देना चाहिए ।

२—अहो भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध को जानता देखता है अथवा नहीं जानता,

नहीं देखता है ? हे गौतम ! कोई जानता है, देखता है। कोई जानता है परन्तु देखता नहीं। कोई जानता नहीं, परन्तु देखता है। कोई जानता भी नहीं, देखता भी नहीं।

जिस तरह छद्मस्थ का कहा उसी तरह आधोअवधिक (अवधिज्ञानी) का भी कह देना चाहिए।

३—अहो भगवन् ! क्या परमावधिज्ञानी मनुष्य परमाणु पुद्‌गल को यावत् अनन्त प्रदेशीस्कन्ध को जिस समय जानता है, उसी समय देखता है और जिस समय देखता है, उसी समय जानता है। हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नहीं है)। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण हे ? हे गौतम ! परमावधिज्ञानी का ज्ञान साकार (विशेषग्राहक) होता है और दर्शन अनाकार (सामान्यग्राहक) होता है। इसलिए ऐसा कहा है कि परमावधिज्ञानी जिस समय जानता है, उस समय देखता नहीं और जिस समय देखता है, उस समय जानता नहीं।

जिस तरह परमावधिज्ञानी का कहा उसी तरह केवलज्ञानी का भी कह देना चाहिए।



१६. आराधना पद का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक आठवां, उद्देशा दसवां)

१ - अहो भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! आराधना तीन प्रकार की है—❀१ ज्ञान-आराधना, २ दर्शन- आराधना, ३ चारित्र—आराधना ।

❀ १ योग्य काल में पढ़ना, विनय बहुमान आदि आठ प्रकार के ज्ञानाचार का निरतिचार पालन करना, ज्ञान—आराधना है ।

(विस्तृत विवेचन देखिये—श्री जैन सिद्धान्त बोलसंग्रह भाग तीसरा पृष्ठ ५ से ६ तक) ।

२—निस्संक्रिय निकंखिय आदि आठ प्रकार के दर्शनाचार का निरतिचार पालन करना, दर्शन—आराधना है ।

(विस्तृत विवेचन देखिये— श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़ों का पहला भाग, पृष्ठ ४ से ५ तक) द्वितीयावृत्ति पृ० ५

३—पांच समिति, तीन गुप्ति रूप आठ प्रकार के चारित्राचार का निरतिचार (अतिचार रहित) पालन करना, चारित्र—आराधना है ।

(इसका विस्तृत विवेचन—श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २४ वें अध्ययन में है) ।

ज्ञान–आराधना के तीन भेद—१ उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना, २ मध्यम ज्ञान–आराधना, ३ जघन्य ज्ञान–आराधना। इसी तरह दर्शन–आराधना के और चारित्र–आराधना के भी उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य ये तीन–तीन भेद कह देना।

उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना में १४ पूर्व का ज्ञान, मध्यम ज्ञान–आराधना में ११ अंग का ज्ञान, जघन्य ज्ञान–आराधना में ८ प्रवचन माता का ज्ञान है। उत्कृष्ट दर्शन–आराधना में क्षायिक समकित, मध्यम दर्शन–आराधना में उत्कृष्ट क्षायोपशपिक समकित, जघन्य दर्शन–आराधना में जघन्य क्षायोपशमिक समकित पाई जाती है। उत्कृष्ट चारित्र आराधना में यथाख्यात–(चारित्र, मध्यम चारित्र) आराधना में सूक्ष्म सम्परायचारित्र और परिहार विशुद्धि-चारित्र, जघन्य चारित्र–आराधना में छेदोपस्थापनीयचारित्र और सामायिकचारित्र पाया जाता है।

उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना में दर्शन–आराधना पायी जाती २ (उत्कृष्ट दर्शन–आराधना और मध्यम दर्शन–आराधना)। उत्कृष्ट दर्शन–आराधना में ज्ञान–आराधना पायी जाती ३। उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना में चारित्र–आराधना पायी जाती २ (उत्कृष्ट, मध्यम)। उत्कृष्ट चारित्र–आराधना में ज्ञान–आराधना पायी जाती ३। उत्कृष्ट दर्शन–आराधना में चारित्र–आराधना पायी जाती ३। उत्कृष्ट चारित्र–आराधना में १ उत्कृष्ट दर्शन–आराधना की नियमा। आंक ३३३, ३३२, ३२२, २३३, २३२, २३१, २२२, २२१, २१२, २११, १३३, १३२, १३१,

१२२, १२१, ११२, १११ ❀ ।

उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना, उत्कृष्ट–दर्शन–आराधना, उत्कृष्ट चारित्र–आराधना वाला जीव जघन्य उसी भव में मोक्ष जाता है, उत्कृष्ट दो भव में मोक्ष जाता है । मध्यम ज्ञान–आराधना, मध्यम–दर्शन–आराधना, मध्यम चारित्र–आराधना वाला जीव जघन्य दो भव से मोक्ष जाता है, उत्कृष्ट ३ भव से मोक्ष जाता है । जघन्य ज्ञान–आराधना, जघन्य–दर्शन–आराधना जघन्य चारित्र–आराधना वाला जीव जघन्य ३ भव से मोक्ष जाता है, उत्कृष्ट ७–८ भव से मोक्ष जाता है ।



२०. प्रत्यनीक का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक आठवां, उद्देशा आठवां)

१– अहो भगवन् ! गुरु संबंधी कितने प्रत्यनीक

❀ जहां ३ है वहां 'उत्कृष्ट' कहना । जहां २ है वहां 'मध्यम' कहना । जहां १ है वहां 'जघन्य' कहना । जैसे ३३३ के आंक में उत्कृष्ट ज्ञान आराधना, उत्कृष्ट दर्शन आराधना, उत्कृष्ट चारित्र आराधना कहना । २३१ के आंक में मध्यम ज्ञान आराधना, उत्कृष्ट दर्शन आराधना जघन्य चारित्र आराधना कहना । इसी तरह दूसरे आंकों के लिए भी कह देना चाहिये ।

(द्वेषी-विरोधी-निन्दा करने वाले) कहे गये हैं ? हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—

१—आचार्य का प्रत्यनीक, २ उपाध्याय का प्रत्यनीक, ३ स्थविर का प्रत्यनीक ।

२—अहो भगवन् ! गति की अपेक्षा से कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—१ इहलोक–प्रत्यनीक (इन्द्रियादि से प्रतिकूल अज्ञान के नष्ट करने वाला), २ परलोक–प्रत्यनीक (इन्द्रियों के विषयभोगों में तल्लीन रहने वाला), ३ उभयलोक–प्रत्यनीक (चोरी आदि द्वारा इन्द्रियों के विषयभोगों में तल्लीन रहने वाला) ।

३—अहो भगवन् ! समूह की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? हे गौतम ! समूह की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं- १ कुल (एक गुरु के शिष्य) का प्रत्यनीक, २ गण (बहुत गुरुओं के शिष्य) का प्रत्यनीक, ३ संघ (साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका) का प्रत्यनीक ।

४—अहो भगवन् ! अनुकम्पा से संबंधित कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? हे गौतम ! अनुकम्पा से संबंधित तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—१ तपस्वी का प्रत्यनीक, २ ग्लान(बीमार साधु)का प्रत्यनीक, ३ शैक्ष(नवदीक्षित साधु) का प्रत्यनीक ।

५—अहो भगवन् ! श्रुत संबंधी कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? हे गौतम ! श्रुत संबंधी से तीन प्रत्यनीक

कहे गये हैं—१ सूत्र का प्रत्यनीक, २ अर्थ का प्रत्यनीक, ३ तदुभय (सूत्र, अर्थ दोनों) का प्रत्यनीक ।

६—अहो भगवन् ! भाव से संबंधित कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? हे गौतम ! भाव से संबंधित तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—१ ज्ञान-प्रत्यनीक, २ दर्शन-प्रत्यनीक, ३ चारित्र-प्रत्यनीक ।



२१. व्यवहार का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवां, उद्देशा आठवां)

१—अहो भगवन् ! व्यवहार कितने प्रकार के कहे गये हैं ? हे गौतम ! ❀ व्यवहार पांच प्रकार के कहे गये

❀ मोक्षाभिलाषी जीवों की प्रवृत्ति और निवृत्ति को तथा प्रवृत्ति-निवृत्ति के ज्ञान को व्यवहार कहते हैं ।

१—आगमव्यवहार—केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, चोदह पूर्व और दस पूर्व का ज्ञान आगम कहलाता है । आगमज्ञान से चलाई हुई प्रवृत्ति, निवृत्ति को आगमव्यवहार कहते हैं ।

२—श्रुतव्यवहार—(सूत्रव्यवहार) [illegible]
श्रुतज्ञान कहलाता है । श्रुतज्ञान से [illegible]
निवृत्ति को श्रुतव्यवहार कहते हैं ।

हैं—१ आगमव्यवहार, २ श्रुतव्यवहार (सूत्रव्यवहार), ३ आज्ञाव्यवहार, ४ धारणाव्यवहार, ५ जीतव्यवहार।

इन पांच व्यवहारों में से जिसके पास आगमज्ञान हो उसको आगमज्ञान से व्यवहार चलाना चाहिये, वहां शेष ४ व्यवहारों की जरूरत नहीं। जिसके पास आगम-ज्ञान न हो तो उसे श्रुत (सूत्र) से व्यवहार चलाना चाहिये, वहां शेष तीन व्यवहारों की जरूरत नहीं। श्रुत (सूत्र) न हो तो आज्ञा से व्यवहार चलाना चाहिए, वहां शेष दो की जरूरत नहीं। आज्ञाव्यवहार न हो तो धारणा से व्यवहार चलाना चाहिए। धारणाव्यवहार न हो तो जीतव्यवहार से व्यवहार चलाना चाहिए।

३—आज्ञाव्यवहार–अतिचारों की आलोचना करने के लिये किसी गीतार्थ साधु ने अपने अगीतार्थ शिष्य के साथ दूसरे देश में रहे हुए गीतार्थ साधु के पास गूढ अर्थ वाले पद भेजे। उन गूढ अर्थ वाले पदों को समझकर उस गीतार्थ साधु ने वापिस गूढ अर्थ वाले पदों में अतिचारों की शुद्धि के लिए प्रायश्चित भेजा। इसको आज्ञाव्यवहार कहते हैं।

४—धारणाव्यवहार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करके गीतार्थ साधु ने जिस अपराध में जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसकी धारणा से वैसे ही अपराध में उसी प्रकार का प्रायश्चित्त देना धारणाव्यवहार कहलाता हैं। अथवा कोई साधु सब छेदसूत्र नहीं सीखता हो, उसे गुरु

इन पांच व्यवहारों से उचित प्रवृत्ति और पाप से निवृत्ति करता है और कराता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है ।

: △ :

२२. जीवधड़ा

जीव के ५६३ भेद हैं । यथा—

नारकी के १४ भेद—सात नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

तिर्यंच के ४८ भेद—

२२, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय, इन चार प्रकार के स्थावर जीवों के प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर तथा पर्याप्त और अपर्याप्त—ऐसे चार भेदों से कुल

महाराज जो प्रायश्चित पद सिखावें, उनकी धारणा करना धारणाव्यवहार कहलाता है ।

१६ भेद हुए। वनस्पतिकाय के सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक, इन तीन के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये ६ भेद हुए। इस प्रकार पांच स्थावर के कुल २२ भेद हुए।

६ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय। इन तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे ६ भेद हुए।

२०, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पांच प्रकार के १ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उरपरिसर्प और ५ भुजपरिसर्प। ये पांचों ही असंज्ञी और पांचों ही संज्ञी। ये १० भेद हुए और इनके पर्याप्त, और अपर्याप्त, ऐसे २० भेद हुए।

इस प्रकार तिर्यंच जीवों के कुल ४८ भेद हुए।

मनुष्य के ३०३ भेद—

कर्मभूमिज मनुष्य के १५ भेद हैं। यथा—५ भरत× ५ ऐरावत और ५ महाविदेह में उत्पन्न मनुष्यों के १५ भेद। अकर्मभूमिज (भोगभूमिज) मनुष्य के ३० भेद हैं। यथा—५ देवकुरु ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवास, ५ रम्यक्वास, ५ हेमवत और ५ ऐरण्यवत क्षेत्रों में उत्पन्न मनुष्यों के ३० भेद। ५६ अन्तरद्वीपों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के

× पांच भरत इस प्रकार हैं—जम्बूद्वीप में १ भरत, धातकीखण्ड में २ और पुष्करार्द्ध में २ ये ५ हुए। इसी प्रकार ऐरावत और महाविदेह भी हैं और अकर्मभूमिज भी।

५६ भेद । ये सभी मिलाकर गर्भज मनुष्य के १०१ भेद होते हैं । इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से २०२ भेद होते हैं । और इन १०१ की अशुचि में उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य के १०१ भेद । कुल मिलाकर मनुष्य के ३०३ भेद होते हैं ।

देव के १९८ भेद—

१० भवनपति के १० भेद—१ असुरकुमार २ नागकुमार ३ सुवर्णकुमार ४ विद्युतकुमार ५ अग्निकुमार ६ उदधिकुमार ७ द्वीपकुमार ८ दिशाकुमार ९ पवनकुमार १० स्तनितकुमार ।

१५ परमाधार्मिक देवों के १५ भेद हैं । यथा १ अम्ब २ अम्बरीष ३ श्याम ४ शवल ५ रौद्र ६ महारौद्र ७ काल ८ महाकाल ९ असिपत्र १० धनुष ११ कुम्भ १२ बालुका १३ वैतरणी १४ खरस्वर और १५ महाघोष ।

२६ वाणव्यन्तर के २६ भेद हैं । जैसे—पिशाचादि ८ (१ पिशाच २ भूत ३ यक्ष ४ राक्षस ५ किन्नर ६ किम्पुरुष ९ महोरग और ८ गन्धर्व) आणपण्णे आदि ८ (१ आणपन्न २ पाणपण्ण ३ इसिवाई ४ भूयवाई ५ कन्दे ६ महाकन्दे ७ कूह्मण्डे ८ पयगदेवे) । जृम्भक १० (१ अन्न जृम्भक २ पान जृम्भक ३ लयन जृम्भक ४ शयन जृम्भक ५ वस्त्र जृम्भक ६ फल जृम्भक ७ पुष्प जृम्भक ८ फलपुष्प जृम्भक ९ विद्या जृम्भक और १० अग्नि जृम्भक) ।

१०, ज्योतिषी देवों के ५ भेद—१ चन्द्र २ सूर्य ३ ग्रह ४ नक्षत्र और ५ तारा। इनके चर (भ्रमणशील) और अचर (स्थिर) के भेद से दस भेद हो जाते हैं।

१२, वैमानिक देवों कल्पोपपन्न और कल्पातीत दो भेद हैं। इनमें कल्पोपपन्न के १२ भेद हैं। जैसे—१ सौधर्म २ ईशान ३ सनत्कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्म ६ लांतक ७ महाशुक्र ८ सहस्रार ९ अणात १० प्राणत ११ आरण और १२ अच्युत।

९, कल्पातीत के दो भेद—ग्रैवेयक और अनुत्तर वैमानिक। ग्रैवेयक के ९ भेद—१ भद्र २ सुभद्र ३ सुजात ४ सुमनस ५ सुदर्शन ६ प्रियदर्शन ७ अमोह ८ सुप्रतिबद्ध और ९ यथोधर।

५, अनुत्तर वैमानिक के पांच भेद हैं। जैसे—१ विजय २ वैजयन्त ३ जयन्त ४ अपराजित और ५ सवार्थ-सिद्ध।

३ किल्विषिक देव १ त्रैपल्योपमिक २ त्रैसागरिक और ३ त्रयोदशसागरिक+।

९ लोकान्तिक देवों के नौ भेद—१ सारस्वत २

+ समानाकार में स्थित प्रथम और दूसरे देवलोक के नीचे त्रैपल्योपमिक, तीसरे और चौथे देवलोक के नीचे त्रैसागरिक और छठे देवलोक के नीचे त्रयोदस-सागरिक किल्विषिक देव रहते हैं।

आदित्य ३ वन्हि ४ वरुण ५ गर्दतोयक ६ तुषित ७ अव्याबाध ८ आग्नेय और ९ अरिष्ट ।

इस प्रकार १० भवनपति, १५ परमाधार्मिक, १६ वाणव्यन्तर, १० जृम्भक, १० ज्योतिषी, १२ वैमानिक, ३ किल्विषिक, ९ लौकान्तिक, ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर वैमानिक । कुल मिला कर ९९ भेद हुए । इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से देव के १९८ भेद होते हैं ।

उपरोक्त ५६३ भेदों का सत्ताईस द्वारों से निरूपण किया जाता है—

द्वार—

१ जीव २ गति ३ इंद्रिय ४ काय ५ योग ६ वेद ७ कषाय ८ लेश्या ९ सम्यक्त्व १० ज्ञान ११ दर्शन १२ संयम १३ उपयोग १४ आहारक १५ भाषक १६ परित्त १७ पर्याप्त १८ सूक्ष्म १९ सन्नी २० भव्य २१ चरम २२ संहनन २३ संठाण २४ क्षेत्र २५ शाश्वत २६ अमर और २७ गर्भज ।

१ जीवद्वार

समुच्चय जीव के भेद ५६३—नारकी के १४, तिर्यंच के ४८, मनुष्य के ३०३ और देव के १९८ ।

२ गतिद्वार

१ नरकगति में १४ । तिर्यंच में ४८ । तिर्यंचिनी में

१० (पांच सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त व अपर्याप्त) मनुष्यगति में ३०३ मनुष्यिनी में २०२ (१०१ सन्नी मनुष्य के पर्याप्त व अपर्याप्त २०२) । देव में १९८ । देवी में १२८ (१० भवनपति, १५ परमाधामी, १६ वाणव्यन्तर, १० जृम्भक, १० ज्योतिषी १ पहला १ दूसरा देवलोक के और १ पहले किल्विषी-कुल ६४ के पर्याप्त और अपर्याप्त) सिद्ध भगवान् में गति नहीं ।

३ इन्द्रियद्वार

सइन्द्रिय में ५६३—सभी भेद । एकेन्द्रिय में २२, बेइन्द्रिय में २, तेइन्द्रिय में २, चौरिन्द्रिय में २ और पंचेन्द्रिय में ५३५ (५६३ में से एकेन्द्रिय के २२ और विकलेन्द्रिय के ६ छोड़कर) अनिन्द्रिय में १५ (१५ कर्म-भूमि के पर्याप्त—१३, १४ गुणस्थान वाले । श्रोत्रेन्द्रिय में ५३५ (पंचेन्द्रिय) चक्षुरिन्द्रिय में ५३७ (चौरिन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढ़े) घ्राणेन्द्रिय में ५३९ (२ तेइन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढ़े)। रसनेन्द्रिय के ५४१ (बेइन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढ़े) । स्पर्शनेन्द्रिय के ५६३ ।

इन्द्रिय अलद्धिया में (अलद्धिया—अनुपलब्ध जो नहीं है) ।

श्रोत्रेन्द्रिय के अलद्धिये में ४३—एकेन्द्रिय के २२ बेइन्द्रिय के २ तेइन्द्रिय के २ चौरिन्द्रिय के २ और १५ कर्मभूमि के पर्याप्त मनुष्य (१३, १४ गुणस्थानी ।)

चक्षुरिन्द्रिय के अलद्धिये में ४१ (४३ में से चौरि-न्द्रिय के २ कम) ।

घ्राणेन्द्रिय के अलद्धिये में ३९ (४१ में से तेइन्द्रिय के २ कम)।

रसनेन्द्रिय के अलद्धिये में ३७ (३९ में से बेइन्द्रिय के २ कम)।

स्पर्शनेन्द्रिय के अलद्धिये में १५ (पन्द्रह कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त। १३ वें १४ वें गुणस्थानी)।

४. कायद्वार

सकाया में ५६३ सभी। पृथ्वीकाय में ४, अप्काय में ४, तेऊकाय में ४, वायुकाय में ४, वनस्पतिकाय में ६ और त्रसकाय में ५४१ (एकेन्द्रिय के २२ कम)। अकाया (सिद्ध) में कोई भेद नहीं।

५. योगद्वार

सहयोगी में ५६३–सभी।

मनयोगी में २१२–नारकी के ७, तिर्यंच के ५, सन्नी मनुष्य के १०१ और देव के ९९। ये सभी पर्याप्त।

वचनयोगी में २२०–मनयोगी के २१२ के सिवाय ५ असन्नी तिर्यंच और तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त।

कामयोगी में ५६३–सभी।

मन, वचन और काय योग में २१२–मनयोगी के समान।

व्यवहारभाषा में २२०—वचनयोगी के अनुसार।

औदारिकयोग में ३५१—तिर्यंच के ४८ और मनुष्य के ३०३।

औदारिकमिश्रयोग में २४७—तिर्यंच के ३०-२४ अपर्याप्त, और ५ पर्याप्त सन्नी तिर्यंच तथा एक वायुकाय। मनुष्य में २१७—असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१, सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१ और कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त १५।

वैक्रिययोग में २३३—१४ नारकी के सभी ५ सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त, १ वायुकाय के पर्याप्त, १५ कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त और १९८ देव के सभी।

वैक्रियमिश्रयोग में २१९—वैक्रिय योग के २३३ में से ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर विमान के पर्याप्त के १४ भेद कम।

आहारक और आहारकमिश्र में १५—कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त (कोई विशिष्ट संयमी संत)।

कार्मणाकाययोग में ३४७—नारकी के ७ तिर्यंच के २४, देव के ९९, असन्नी मनुष्य के १०१ अपर्याप्त, सन्नी मनुष्य के १०१ अपर्याप्त और १५ कर्मभूमिज के पर्याप्त (गु. १३ के)।

अयोगी में १५—कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त १४ वें गुणस्थानी।

६. वेदद्वार

सवेदी में ५६३–सभी ।

पुरुष वेद में ४१०–पांच सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त और अपर्याप्त १०, सन्नी मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त २०२ और देव के १९८ ।

स्त्रीवेद में ३४०–तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक तक १०, दूसरे १ व तीसरे १ किल्विषी, नव लोकांतिक ९, नव ग्रैवेयक ९ और पांच अणुत्तर विमान के ५। इन ३५ के पर्याप्त और अपर्याप्त ये ७० पुरुषवेदी के छोड़ कर शेष ।

नपुंसकवेद में १९३–नारकी १४ तिर्यंच ४८ असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१, कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त ३० ।

एकवेद में २३३ नारकी १४, तिर्यंच ३८ (४८ में से पांच असन्नी तिर्यंच के पर्याप्त व अपर्याप्त १० छोड़कर) १०१ असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त, ये सब नपुंसकवेदी हैं। देव के ७० (तीसरे देवलोक से लगाकर। ये सब पुरुष-वेदी हैं) ।

दो वेद ३००–मनुष्य अकर्मभूमि के ३०, अन्तरद्वीप के ५३ पर्याप्त व अपर्याप्त १७२ और देवलोक के १२८। (१९८ में से पुरुष वेद के ७० कम) ।

तीनवेद में ४०–१० तिर्यंच-पांच

पर्याप्त और अपर्याप्त । कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

अवेदी में १५ कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त १५ ।

एकांत पुरुषवेद में ७० तीसरे देवलोक से आगे के देव ।

एकांत नपुंसकवेद में १५३ नारकी के १४, तिर्यंच के ४८, (४८ में से पांच सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त व अपर्याप्त १० कम) असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१ ।

७. कषायद्वार

सकषायी में ५६३ भेद–सभी ।

अकषायी में-१५ कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त । गुण-स्थान ११ से १४ तक ।

८. लेश्याद्वार

सलेशी में–५६३ ।

कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन लेश्या में, प्रत्येक में ४५९ ।

नारक में ६ पहली दूसरी और तीसरी में कापोत-लेश्या पर्याप्त अपर्याप्त ६ । तीसरी चौथी और पांचवीं में नीललेश्या ६ । पांचवीं छठी और सातवीं कृष्णलेश्या ६ ।

४८ तिर्यंच में ।

३०३ मनुष्य के ।

१०२ देव के—भवनपति के १०, परमाधामी के १५, व्यंतर के १६, जृम्भक के १०। इन ५१ के पर्याप्त अपर्याप्त।

तेजोलेश्या में—३४३—

१३ तिर्यंच में—बादर—पृथ्वीकाय अप्काय और वनस्पतिकाय के अपर्याप्त में। सन्नी-तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त के १०।

२०२ मनुष्य-सन्नी के पर्याप्त और अपर्याप्त के।

१२८ देव के—भवनपति के १०, परमाधामी के १५, व्यन्तर के १६, जृम्भक के १०, ज्योतिषी के १०, वैमानिक के पहले के १, दूसरे के १ और प्रथम किल्विषी के १। इन ६४ के पर्याप्त अप.।

पद्मलेश्या में—६६।

१० तिर्यंच के—सन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त।

३० मनुष्य के—कर्मभूमि १५ पर्याप्त अपर्याप्त।

२६ देव के—तीसरे १ चौथे १ और पांचवें १ देवलोक दूसरे किल्विषी १ और लोकान्तिक देव, ९ के पर्याप्त अपर्याप्त।

शुक्ललेश्या में—८४।

१० तिर्यंच सन्नी के पर्याप्त अपर्याप्त।

३० कर्मभूमिज मनुष्य के।

४४ देव के—वैमानिक के छठे से १२ वें तक देव-

लोक ७, तीसरे किल्विषी १, ग्रैवेयक ६ और अनुत्तर ५। इन २२ के पर्याप्त अपर्याप्त।

एकान्त कृष्णलेश्या में ४–छठी और सातवीं नरक के पर्याप्त अपर्याप्त।

एकान्त नीललेश्या में २–चौथी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त।

एकान्त कापोतलेश्या में ४–पहली और दूसरी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त।

एकान्त तेजोलेश्या में २६–ज्योतिषी देव के १०, वैमानिक के पहले १ दूसरे १ और प्रथम किल्विषी १। इन १३ के पर्याप्त अपर्याप्त।

एकान्त पद्मलेश्या में– २६। वैमानिक के ३, ४, ५ देवलोक, दूसरे किल्विषी और लोकान्तिक ६। इन १३ के पर्याप्त अपर्याप्त।

एकान्त शुक्ललेश्या में–४४। छठे देवलोक से १२ वें तक ७, तीसरे किल्विषी १ ग्रैवेयक ६ और अनुत्तर ५।

इन २२ के पर्याप्त अपर्याप्त। एक लेश्या में १०६।

१० नारक के तीसरी और पांचवीं नारकी छोड़कर शेष ५ के। ६६ देव के ज्योतिषी के १० वैमानिक के ३८।

इनके पर्याप्त, अपर्याप्त।

दो लेश्या में–४। तीसरी और पांचवीं नरक के पर्याप्त अपर्याप्त।

तीन लेश्या में–१३६ ।

३५ तिर्यंच के एकेन्द्रिय के १९ (पृथ्वी अप. और वनस्पति के अपर्याप्त छोड़कर) विकलेन्द्रिय के ६ और असन्नी पंचेन्द्रिय के १० ।

१०१ समूर्च्छिम मनुष्य के ।

चारलेश्या में–२७७ ।

३ तिर्यंच के–पृथ्वी, अप. और वनस्पतिकाय के अपर्याप्त के ।

१७२ मनुष्य के–अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीपज के ८६ के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

१०२ देवों के–भवनपति, परमाधामी, व्यन्तर और जृम्भक के ।

५१ के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

५ लेश्या में–० शून्य कोई नहीं ।

छह लेश्या में ४०–सन्नी तिर्यंच के १० और कर्मभूमि के मनुष्यों के ३० ।

अलेशी में–१५ कर्मभूमि के मनुष्य पर्याप्त के (१४ वें गु.) ।

९. सम्यक्त्वद्वार

सम्यग्दृष्टि में २८३

१३ नारकी के (सातवीं का अपर्याप्त छोड़कर)

१८ तिर्यंच के–१० सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त अपर्याप्त। ५ असन्नी तिर्यंच और ३ विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त।

९० मनुष्य के–१५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि, इन ४५ के पर्याप्त और अपर्याप्त।

१६२ देव के–(१५ परमाधामी और ३ किल्विषी के पर्याप्त और अपर्याप्त।

मिथ्यादृष्टि में ५५३। ५६३ में से पांच अनुत्तर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त ये १० छोड़कर।

मिश्रदृष्टि में १०३–नारकी के ७, तिर्यंच के ५, कर्मभूमि मनुष्य के १५, देव के ७६), परमाधामी के १५ किल्विषी के ३ और अनुत्तर के ५ ये २३ पर्याप्त कम करके)। सभी पर्याप्त ही हैं।

एकान्त सम्यग्दृष्टि में १०—पांच अनुत्तर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त।

एकान्त मिथ्यादृष्टि में २८०–सातवीं नारकी के अपर्याप्त। तिर्यंच के ३० (एकेन्द्रिय के २२; विकलेन्द्रिय के ३ और असन्नी पंचेन्द्रिय के ५। इसके पर्याप्त) मनुष्य के २१३ (असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१, अंतरद्वीप पर्याप्त और अपर्याप्त ११२) देव के ३६–परमाधामी १५ और किल्विषी ३ के पर्याप्त और अपर्याप्त।

एक दृष्टि में २९०–एकान्त सम्यग्दृष्टि के १० और एकान्त मिथ्यादृष्टि के २८०। कुल २९०।

दो दृष्टि में १७०–नारकी के ६ पहली से छठी तक

के अपर्याप्त । तिर्यंच के १३–पांच सन्नी तिर्यंच, पांच असन्नी तिर्यंच और तीन विकलेन्द्रिय, इनके अपर्याप्त । मनुष्य के ७५ । कर्मभूमि के अपर्याप्त १५ और अकर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त ६० । देव के ७६–६६ में से १५ परमाधामी ३ किल्विषी तथा अणुत्तर विमान । ये २३ कम करके शेष सभी के अपर्याप्त ।

तीन दृष्टि में १०३–नारकी के ७, सन्नी तिर्यंच के ५, मनुष्य कर्मभूमिज के १५ और देव के ७६ । इन सभी के पर्याप्त (मिश्रदृष्टि के समान) ।

सास्वादन समकित में २१३–नारकी के १३ (सातवीं नारकी का अपर्याप्त छोड़कर) तिर्यंच में १८ (५ असन्नी तिर्यंच और ३ विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त और सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त अपर्याप्त १०) । मनुष्य में–पन्द्रह कर्मभूमि के पर्याप्त अपर्याप्त ३० । देव में १५२–भवनपति १०, वाणव्यंतर १६, जृम्भक १०, ज्योतिषी १०, वैमानिक १२, १२, लोकांतिक ६ और ग्रैवेयक ६ के पर्याप्त अपर्याप्त (परमाधामी किल्विषी और अनुत्तर छोड़कर) ।

वेदक समकित में १०३–मिश्रदृष्टि के समान ।

उपशम समकित में २०५—

१३ नारक के—सातवीं के अपर्याप्त को छोड़कर ।

१० तिर्यंच के—सन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त ।

३० मनुष्य के—कर्मभूमि १५ के पर्याप्त अपर्याप्त ।

१५२ देव के—१५ परमाधामी ३ किल्विषी और ५ अनुत्तर के पर्याप्त अपर्याप्त छोड़कर ।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में—२७५। उपशम के २०५ में ३० अकर्मभूमि के मनुष्यों के ६० और ५ अनुत्तर के १०, ये ७० और मिलाने से २७५।

क्षायिक सम्यक्त्व में २६२।

८ नारक के—प्रथम के चार नारक के पर्याप्त अपर्याप्त।

२ तिर्यंच के—सन्नी थलचर युगल के पर्याप्त अपर्याप्त।

९० मनुष्य के—१५ कर्मभूमिज और ३० अकर्मभूमिज के पर्याप्त अपर्याप्त।

१६२ देव के—१५ परमाधामी और ३ किल्विषी के पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे ३६ छोड़कर।

१०. ज्ञानद्वार

समुच्चय ज्ञानी और मति–श्रुत ज्ञानी में २८३। सम्यक्त्व के समान।

अवधिज्ञानी में २१०—

१३ नारक में—सातवीं के अपर्याप्त छोड़कर।

५ तिर्यञ्च में—संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त।

३० मनुष्य में—१५ कर्मभूमिज के पर्याप्त अपर्याप्त।

१६२ देव में—१५ परमाधामी और ३ किल्विषी के ३६ छोड़कर।

मनःपर्यय और केवलज्ञानी में १५ कर्मभूमिज मनुष्यों के पर्याप्त । मतिश्रुत अज्ञान और समुच्चय अज्ञान में—५५३ (पांच अनुत्तर विमानवासी देवों के १० भेद छोड़कर) ।

१४ नारक के पर्याप्त अपर्याप्त सभी ।

५ तिर्यंच में—संज्ञी पचेन्द्रिय के पर्याप्त ।

१५ मनुष्य में—१५ कर्मभूमिज के पर्याप्त ।

१८८ देव में—५ अनुत्तर देवों के पर्याप्त अपर्याप्त छोड़कर ।

११. दर्शनद्वार

चक्षुदर्शन में ५३७ – नारकी के १४, तिर्यंच के २२—

(चौरिन्द्रिय, असन्नी और सन्नी पंचेन्द्रिय, इन ११ के पर्याप्त अपर्याप्त)। मनुष्य के ३०३ और देव के १९८ ।

अचक्षुदर्शन में ५६३ सभी ।

अवधिदर्शन में २४७– नारकी के १४, सन्नी तिर्यंच पर्याप्त के ५, कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त ३० और देव के १९८ ।

केवलदर्शन में १५—कर्मभूमि के मनुष्यों के पर्याप्त ।

१२. संयमद्वार

समुच्चय संयत और सामायिक, सूक्ष्म-संपराय और यथाख्यात चारित्र में १५ । पन्द्रह कर्मभूमि के **मनुष्य** के पर्याप्त ।

छेदोपस्थानीय और परिहार-विशुद्धिचारित्र में १०-भरत और ५ एरवत के मनुष्य के पर्याप्त।

संयतासंयत में २०। सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त ५ और कर्मभूमि के मनुष्य के पर्याप्त १५।

असंयत में ५६३—सभी।

नो संयत नो असंयत नो संयतासंयत (सिद्ध) में नहीं।

१३. उपयोगद्वार

साकार और अनाकार उपयोग में ५६३—सभी।

१४. आहारकद्वार

आहारक में ५६३—सभी।

अनाहारक में ३४७—७ नारक, २४ तिर्यंच, २०२ मनुष्य और ९९ देव—ये सब पर्याप्त, तथा कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त १५ (१३ वें १४ वें गुणस्थानी)।

१५. भाषकद्वार

भाषक के २२० भेद—

७ नारक के पर्याप्त।

१३ तिर्यंच के ३ विकलेन्द्रिय, ५ असन्नी और ५ सन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त।

१०१ मनुष्य के—सन्नी मनुष्य के पर्याप्त।

९९ देव के—सभी पर्याप्त देव।

अभाषक में ३५८—

७ नारक के अपर्याप्त ।

३५ तिर्यंच के—एकेन्द्रिय के २२ पर्याप्त अपर्याप्त । विकलेन्द्रिय ३ अपर्याप्त और सन्नी–असन्नी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त १० ।

२१७ मनुष्य के—१०१ सन्नी और १०१ असन्नी के अपर्याप्त तथा १५ कर्मभूमि के पर्याप्त (अयोगी) ।

९९ देव के—सभी अपर्याप्त ।

१६. परित्त २० भव्य और २१ चरम द्वार

परित्त भव्य, चरम और प्रत्येक में ५६३ ।

अपरित्त अभव्य और अचरम में प्रत्येक में ५५३ (पांच अनुत्तर विमान के पर्याप्त अपर्याप्त छोड़कर) ।

१७. पर्याप्तद्वार

पर्याप्त में २३१—नारकी ७, तिर्यंच २४, मनुष्य १०१ और देव ९९ ।

अपर्याप्त में ३३२—नारकी ७, तिर्यंच २४, सन्नी मनुष्य १०१ असन्नी मनुष्य १०१ और देव के ९९ ।

१८. सूक्ष्मद्वार

सूक्ष्म में १०-पांच सूक्ष्म स्थाव [illegible] र्याप्त अपर्याप्त ।

बादर में ५५३—सूक्ष्म के १० कम करके।

१६. सन्नीद्वार

सन्नी में ४२४– नारक के १४, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के १०, मनुष्य के २०२ (समूच्छिम छोड़कर) और देव के १६८।

असन्नी में १६१

१ नरक में–पहली का अपर्याप्त।

३८ तिर्यंच के—सन्नी के १० छोड़कर।

१०१ मनुष्य के—असन्नी।

५१ देव के १० भवनपति के, १५ परमाधामी के, १६ वाणव्यन्तर के, १० जृम्भक के।

ये सब अपर्याप्त है।

२२. संहननद्वार

वज्रऋषभनाराचसंहनन में २१२—सन्नी तिर्यंच के १० और मनुष्य के २०२ (सन्नी तिर्यंच और मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त)।

मध्य के चार संहनन में ४०—सन्नी तिर्यंच के १०, मनुष्य के ३० कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त, अपर्याप्त में।

सेवार्त संहनन में १७६—

४८ तिर्यंच के।

१३१ असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१ और कर्म-भूमिज मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त ३० ।

२३. संस्थानद्वार

समचतुरस्रसंस्थान में ४१०—

१० सन्नी तिर्यंच के ।

२०२ सन्नी मनुष्य के ।

१९८ देव के—सभी ।

मध्य के चार संस्थान में ४० । संहनन के समान ।

हुंडकसंस्थान में १९३ । १४ नारक के, ४८ तिर्यंच के, १३१ मनुष्य के (असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१ और कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त ३०) ।

२४. क्षेत्रद्वार

एक भरत और ऐरावत क्षेत्र में—५१ । पांचों में ६३ ।

४८ तिर्यंच के और ३ मनुष्य के । सन्नी मनुष्य का अपर्याप्त और पर्याप्त और असन्नी मनुष्य का अपर्याप्त ।

महाविदेह क्षेत्र में ९३ । ४८ तिर्यंच के । ४५ मनुष्य के—सन्नी मनुष्य का अपर्याप्त १, और पर्याप्त १, असन्नी मनुष्य अपर्याप्त १ हेमवय १, हैरण्यवय १, हरिवास १, रम्यक्वास १, देवकुरु १, और उत्तरकुरु १ । इन छः के पर्याप्त अपर्याप्त समूर्च्छिम १८ ।

जम्बूद्वीप में ७५ । ४८ तिर्यंच के सभी ।

२७ मनुष्य के—१ भरत, १ ऐरावत, १ महाविदेह, १ हेमवय, १ हैरण्यवय, १ हरिवास, १ रम्यक्वास १ देव-कुरु, ये ९ पर्याप्त ९ अपर्याप्त और इनके ९ असन्नी के अपर्याप्त ।

लवणसमुद्र में २१६। ४८ तिर्यंच के, १६८ मनुष्य के—छप्पन अंतरद्वीप के पर्याप्त अपर्याप्त १०२ और इनके असन्नी के अपर्याप्त ।

धातकी खण्ड में १०२ । ४८ तिर्यंच के । ५४ मनुष्य के—२ भरत, २ ऐरावत, २ महाविदेह, २ हेमवय, २ हैरण्यवय, २ हरिवास २ रम्यक्वास, २ देवकुरु, २ उत्तर-कुरु । इन १८ के पर्याप्त अपर्याप्त और इसके असन्नी के अपर्याप्त ।

कालोदधि समुद्र में ४८ । ४६ तिर्यंच के(४८ में से तेउकाय के पर्याप्त और अपर्याप्त २ कम) ।

अर्धपुष्करवाद्वीप में १०२ । धातकीखंड के समान ।

अढ़ाई द्वीप में ३५१—

४८ तिर्यंच के ।

३०३ मनुष्य के ।

अढ़ाई द्वीप के बाहर ११८–१०९—

४६ तिर्यंच के (४८ में से बादर तेउकाय के पर्याप्त अपर्याप्त कम) ६२ देव के—१० वाणव्यंतर के, १६ जृम्भक के, ५ ज्योतिषी अचर । इन ३१ के पर्याप्त अपर्याप्त ।

नीचे लोक में ११५—

१४ नारक के—

४८ तिर्यच के—

३ मनुष्य के–महाविदेहक्षेत्र की सलिलावतीविजय के पर्याप्त अपर्याप्त और असन्नी के अपर्याप्त ।

५० देव के–१० भवनपति और १५ परमाधामी के पर्याप्त अपर्याप्त ।

ऊंचे लोक में १२२—

४६ तिर्यच के (४८ में से बादर तेउकाय के पर्याप्त अपर्याप्त कम ।

७६ देव के–१२ वैमानिक, ३ किल्विषी, ९ लोकांतिक, ९ ग्रैवेयक और ५ अणुत्तर विमान, इनके पर्याप्त अपर्याप्त ।

तिर्च्छे लोक में ४२३—

४८ तिर्यच के ।

३०३ मनुष्य के ।

७२ देव के–१६ वाणव्यन्तर, १० जृम्भक और १० ज्योतिषी के पर्याप्त अपर्याप्त ।

सिद्धशिला में १२–सूक्ष्म पांच स्थावर और बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त अपर्याप्त ।

सिद्धशिला के ऊपर तथा सातवीं नरक के नीचे, लोक के चरमान्त में १२–सूक्ष्म पांच स्थावर और बादर वायुकाय के पर्याप्त अपर्याप्त ।

२५. शाश्वतद्वार

शाश्वत में २५०—

७ नारक के।

१०१ मनुष्य सन्नी के पर्याप्त।

९९ देव–सभी के पर्याप्त।

४३ तिर्यंच के–(पांच सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त कम)।

अशाश्वत में ३१३—

७ नारक के।

२०२ मनुष्य के–सन्नी मनुष्य के १०१ और असन्नी मनुष्य के १०१ ९९ देव के।

५ तिर्यंच के—सन्नी तिर्यंच के।

ये सभी अपर्याप्त हैं।

२६. अमरद्वार

अमर में १९२।

७ नारक के।

८६ मनुष्य के—३० अकर्मभूमि और ५६ अन्तर्द्वीप के। ९९ देव के।

ये सभी अपर्याप्त अवस्था में अमर होते हैं।

ये सभी अपर्याप्त अवस्था में अमर होते हैं।

मरने वाले ३७१—

७ नारक के।

४८ तिर्यंच के।

२१७ मनुष्य के—१०१ असन्नी के अपर्याप्त, १०१ सन्नी के पर्याप्त और १५ अकर्मभूमि के अपर्याप्त।

९९ देव के पर्याप्त।

२७. गर्भजद्वार

गर्भज में २१२—

१० तिर्यंच के सन्नी पंचेन्द्रिय।

२०२ मनुष्य के—सन्नी मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त।

नो गर्भज में ३५१—

१४ नारक के।

३८ तिर्यंच के—सन्नी छोड़कर।

१०१ मनुष्य—असन्नी मनुष्य के पर्याप्त।

१९८ देव-सभी।



२२. गति आगति

जीवों की आगति और गति का वर्णन है।

आगति—जीव जिस गति से आकर उत्पन्न होता है।

गति - मरने के बाद जिस गति में जाकर उत्पन्न होता है।

अपेक्षा भेद से जीव के एक, दो, तीन, चार आदि अनेक भेद होते हैं। किसी अपेक्षा से ५६३ भेद भी हैं। वे इस प्रकार है—नारकियों के १४, तिर्यंच के ४८, मनुष्यों के ३०३ और देवों के १९८।

नारकियों के १४ भेद

१ घम्मा २ वंशा ३ सीला ४ अंजना ५ रिष्टा ६ मघा ७ माघवई। इन सात नारकों के नारकी पर्याप्त भी होते हैं ओर अपर्याप्त भी। अत: ७ पर्याप्त और ७ अपर्याप्त के चौदह भेद हैं।

तिर्यंचों के ४८ भेद

१ पृथ्वीकाय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त।

२ अप्काय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त।

३ तेउकाय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त।

४ वायुकाय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त।

५ वनस्पतिकाय के छह भेद—सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त। यों एकेन्द्रियों के २२ भेद हुए।

तीन विकलेन्द्रिय के छह भेद–१ द्वीन्द्रिय २ त्रीन्द्रिय ४ चतुरिन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त।

पंचेन्द्रिय के पाँच भेद हैं–१ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उरपरिसर्प और ५ भुजपरिसर्प। इनके संज्ञी असंज्ञी के भेद से दस भेद हैं और पर्याप्त तथा अपर्याप्त के भेद से बीस भेद होते हैं। इस प्रकार सब मिलकर तिर्यंचों के ४८ भेद हैं।

मनुष्यों के ३०३ भेद

जहां असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प-कला की प्रवृत्ति होती है, उसे 'कर्मभूमि' कहते हैं और जहां असि मसि आदि की प्रवृत्ति नहीं होती और कल्पवृक्षों से ही निर्वाह हो जाता है, उसे अकर्मभूमि कहते हैं। कर्मभूमि के १५ भेद❀ हैं और भोग भूमि के ३० भेद× है। दोनों

❀ कर्मभूमि १५ इस प्रकार की है–५ भरत, ५ ऐरावत, ५ महाविदेह। एक भरत जम्बूद्वीप का, दो धातकीखण्ड के और दो पुष्करार्ध के, ये ५ भरतक्षेत्र हैं। इसी प्रकार ऐरावत और महाविदेह भी समझने चाहिए।

× भोगभूमि ३० पूर्वोक्त प्रकार से ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवास, ५ रम्यक्वास, ५ हेरण्यवत। इस प्रकार ३० अकर्मभूमि है।

को मिलाकर उनमें रहने वाले मनुष्य के ४५ भेद हैं। ५६ अन्तरद्वीपों+में रहने वाले अकर्मभूमिज मनुष्यों के ५६ भेद भी उनमें जोड़ने से १०१ भेद होते हैं। पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से इनके २०२ भेद हो जाते हैं। इन १०१ क्षेत्रों में चौदह अशुचिस्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम असंज्ञी अपर्याप्त मनुष्यों के १०१ भेद जोड़ने से ३०३ भेद होते हैं।

१४ देवों के १९८ भेद

१० भवनपति, १५ परमाधार्मिक, १६ व्यन्तर, १०

+ जम्बूद्वीप से दक्षिण की ओर चूलहेम पर्वत और उत्तर की ओर शिखरी पर्वत की चार-चार दाढ़ाएं हैं और प्रत्येक दाढ़ा पर सात-सात क्षेत्र है। यही ८×७=५६ अन्तरद्वीप कहलाते हैं। अन्तरद्वीपों के जैसे नाम हैं वैसे ही वहां के मनुष्य होते हैं। नाम ये हैं—१ एकोरुक २ अभाषिक ३ वैषाणिक ४ नांगोलिक ५ हयकर्ण ६ गयकर्ण ७ शष्कुलिकर्ण ८ गोकर्ण ९ आदर्शमुख १० मेण्ढ़मुख ११ अयोमुख १२ गोमुख १३ अश्वमुख १४ हस्तिमुख १५ सिंहमुख १६ व्याघ्रमुख १७ अश्वकर्ण १८ सिंहकर्ण १९ अकर्ण २० कर्मप्रावरण २१ उल्कामुख २२ मेघमुख २३ विद्युद्दन्त २४ विद्युन्मुख २५ घनदन्त २६ लष्टदन्त २७ गूढ़दन्त २८ शुद्धदन्त। इनका विस्तृत वर्णन जीवाभिगम प्र. ३ उ. १ में है। दूसरी ओर के भी ये ही नाम है।

जृम्भक,÷ १० ज्योतिषी +१२ वैमानिक, ३ किल्विषी ६ नवग्रैवेयक के देव, ५ अनुत्तर विमान के देव, ६ लौकान्तिक। ये ६६ प्रकार के देव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से १६८ प्रकार के होते हैं।

जीव के ये सभी भेद मिलाकर ५६३ होते हैं। इन ५६५ भेदों की गति–आगति का यहां वर्णन किया जाता है।

१. पहली नारकी में आगति २५ की है। यथा— १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच और ५ असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त। इन २५ स्थानों से आकर जीव, पहली नरक में उत्पन्न होते हैं। गति ४० की १५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच। इन २० के पर्याप्त और २० अपर्याप्त।

२. दूसरी नारकी में आगति २० की। १५ कर्म-भूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच। गति ४० की पहली नारकी के समान।

÷ १ अन्नजृम्भक २ पानजृम्भक ३ लयणजृम्भक ४ शयनजृम्भक ५ वस्त्रजृम्भक ६ पुष्पजृम्भक ७ फलजृम्भक ८ पुष्पफलजृम्भक ९ बीजजृम्भक और १० आवतिजृम्भक। ये दस जृम्भक हैं।

+ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा, ये पांच ज्योतिषी अढ़ाईद्वीप में चर हैं और उनके बाहर स्थिर है। अतः चर—स्थिर के भेद से इनके दस भेद होते हैं।

३. तीसरी नारकी में आगति १९ की। दूसरी नारकी के २० भेदों में से भूजपरिसर्प को छोड़कर। गति ४० की पहली नारकी के समान।

४. चौथी नारकी में आगति १८ की। तीसरी नारकी के १९ भेदों में से 'खेचर' को छोड़कर। गति ४० की। पहली नारकी के समान।

५. पांचवीं नारकी में आगति १७ भेद से, चौथी नारकी के १८ भेदों में से स्थलचर को छोड़कर। गति ४० की।

६. छठी नारकी में आगति १६ भेद से, पांचवीं नारकी के १७ भेदों में से उरपरिसर्प को छोड़कर। गति ४० की।

७. सातवीं नारकी में आगति १६ भेद से, १५ कर्मभूमिज मनुष्य × और १ मत्स्य जलचर के पर्याप्त। गति १० भेद में ५ संज्ञी तिर्यंच पर्याप्त और ५ अपर्याप्त।

८. भवनपति वाणव्यन्तर देव में आगति १११ भेद से १०१ संज्ञी मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच और ५ असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त। गति ४६ भेद में १५ कर्मभूमिज, ५ संज्ञीतिर्यंच, १ बादर पृथ्वीकाय, १ बादर अप्काय और

× यहां सामान्य रूप से कर्मभूमिज मनुष्य मिलाये हैं, परन्तु स्त्री सातवें नरक में नहीं जा सकती।

१ बादर वनस्पतिकाय । इन २३ के पर्याप्त और अपर्याप्त कुल ४६ ।

९. ज्योतिषी और पहले देवलोक में आगति ५० भेद से १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज और ५ संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त गति ४६ भेद में–भवनपति के समान ।

१०. दूसरे देवलोक में आगति ४० भेद से, ३० अकर्मभूमिज में से ५ हैमवत और ५ हैरण्यवत के १० भेद छोड़कर २०, तथा १५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच । गति ४६ भेद में भवनपति के समान ।

११. पहले किल्विषी में आगति ३० से, १५ कर्म-भूमिज-मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच, ५ देवकुरु और ५ उत्तर-कुरु । गति ४६ में भवनपति के समान ।

१२. तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक के छः लोकांतिक और दूसरे व तीसरे किल्विषी, इन सत्तरह प्रकार के देवों में २० भेद से आगति—१५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त । गति ४० भेद में १५ कर्मभूमि के मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

१३. नौवे से बारहवें देवलोक, नौग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान, इन अठारह जाति के देवों में आगति १५ भेद से—१५ कर्मभूमि के पर्याप्त मनुष्य की । ग
में–१५ कर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त म

१४. पृथ्वी जल और वनस्पति में अ

से–१०१ सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त मनुष्य, ३० पन्द्रह कर्मभूमि के पर्याप्त अपर्याप्त मनुष्य, ४८ तिर्यंच,+६४ देव (२५ भवनपति, २६ वाणव्यन्तर, १० ज्योतिषी, पहला व दूसरा देवलोक के और पहला किल्विषी के पर्याप्त) एवं २४३। गति १७९ भेदों में–१०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य के अपर्याप्त, १५ कर्मभूमि के पर्याप्त और १५ अपर्याप्त तथा ४८ तिर्यंच।

१५. तेजस्काय और वायुकाय में आगति–१७९ भेद से, ऊपर लिखे अनुसार। गति ४८ भेद के तिर्यंचों में।

१६. तीन विकलेन्द्रिय में आगति–१६९ भेद से और गति १७९ भेद में–पूर्ववत्।

१७. असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में आगति १७९ भेदों से पूर्ववत्। गति ३९५ भेदों में–५६ अन्तरद्वीप के पर्याप्त मनुष्य, २५ भवनपति के और २६ व्यन्तर के–(यो कुल ५१ जाति के देव)और पहली नारकी, इन १०८ के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से २१६ और १७९ पूर्व कहे हुए। इस प्रकार ३९५।

१८. पांच संज्ञी तिर्यंच में आगति २६७ भेदों से—८१ प्रकार के देव (ऊपर के चार देवलोक, नौग्रैवेयक, पांच अनुत्तर, इन १८ को छोड़कर) ७ नारकी के पर्याप्त और पहले कहे हुए १७९ भेद, ये सब मिलाकर २६७ भेद हुए। इन पांचों की गति भिन्न-भिन्न इस प्रकार है।

जलचर की गति-५२७ भेदों में। ५६३ भेदों में से

नौवें देवलोक से सवार्थसिद्ध तक के १८ जाति के देव के पर्याप्त और अपर्याप्त ये ३६ कम करने से शेष बचे हुए ५२७।

उरपरिसर्प की गति–५२३ भेदों में। ५२७ भेदों में से छठी और सातवीं नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त, ये ४ कम करने से शेष रहे हुए ५२३ भेद।

स्थलचर की गति–५२१ भेद की। ५१३ में से पांचवीं नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त ये २ छोड़कर।

खेचर की गति–५१९ भेद की। ५२१ में से चौथी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त ये २ छोड़कर।

भुजपरिसर्प की गति–५१७ भेद की। ५१९ में से तीसरी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त ये २ छोड़कर।

१९. असंज्ञी मनुष्य में आगति–१७१ भेद की। पहले कहे हुए १७९ भेदों में से तेउकाय और वायुकाय के ८ भेद कम करके शेष बचे हुए। गति १७९ भेद की–पूर्ववत्।

२०. पन्द्रह कर्मभूमि के संज्ञी मनुष्य में आगति २७६ भेद की। १७१ पूर्ववत् (असंज्ञी मनुष्य की आगति के समान) ९९ जाति के देव और पहली से ६ नारकी के पर्याप्त। गति ५६३ की।

२१. तीस अकर्मभूमि के संज्ञी सनुष्य की आगति–२० की। १५ कर्मभूमि और ५ संज्ञी तिर्यंच, इन २ के पर्याप्त के उनकी गति भिन्न-भिन्न है।

पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु, इन दस क्षेत्रों के मनुष्यों की गति–१२८ की । ६४ प्रकार के देव पर्याप्त और ६४ अपर्याप्त ।

पांच हरिवास और पांच रम्यक्‌वास, इन दस क्षेत्रों के मनुष्यों की गति–१२६ की । १२८ में से पहले किल्विषी के पर्याप्त और अपर्याप्त छोड़कर ।

पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत, इन दस क्षेत्रों के मनुष्यों की गति १२४ की । १२६ में से दूसरे देवलोक के पर्याप्त और अपर्याप्त छोड़कर ।

२२. छप्पन अन्तरद्वीपों में आगति २५ की । १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यंच और ५ असंज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त गति १०२ की–२५ भवनपति और २६ वाणव्यन्तर इन ५१ के पर्याप्त और ५१ अपर्याप्त ।

२३. तीर्थंकर की आगति ३८ की—३५ वैमानिकों के (किल्विषी छोड़कर) और प्रथम ३ नारकी के पर्याप्त । गति—मोक्ष की ।

२४. चक्रवर्ती की आगति ८२ भेद से—९९ जाति के देवों में से १५ परमाधामी और ३ किल्विषी, इन १८ को छोड़कर शेष बचे हुए ८१ देव और पहली नारकी के पर्याप्त । गति १४ की ७ नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त । (यदि दीक्षा लेवें तो देवलोक या मोक्ष की) ।

२५. वासुदेव की आगति ३२ की–१२ देवलोक, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रैवेयक और पहली व दूसरी नारकी के

पर्याप्त, इस प्रकार ३२ गति १४ की सात नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

२६. बलदेव की आगति ८३ की—चक्रवर्ती के ८२ और दूसरी नारकी से‌❀ ।

२७. केवली की आगति १०८ की–९९ जाति के देव में से १५ परमाधर्मी और ३ किल्विषी निकाल कर, शेष ८१, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच, १ पृथ्वी, १ पानी, १ वनस्पति और पहले की चार नरक । इस प्रकार १०८ पर्याप्त गति मोक्ष की ।

२८. साधु की आगति २७५ की-१७१ पूर्वोक्त (असंज्ञी मनुष्य की आगति नं. १९ वत्) ९९ प्रकार के देव और प्रथम से ५ तक के नारक पर्याप्त, इस प्रकार २७५ । गति ७० भेद की–१२ देवलोक, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर विमान के देव । इन ३५ के पर्याप्त और अपर्याप्त ७० ।

२९. श्रावक की आगति २७६ की–पूर्वोक्त २७५ और छठी नरक । गति ४२ की–१२ देवलोक, ९ लोकान्तिक, इन २१ जाति के देवों के पर्याप्त और अपर्याप्त–४२ ।

३०. सम्यग्दृष्टि की आगति ३६३ की ९९ प्रकार

❀ बलदेव की पदवी अमर है, यदि दीक्षा लेवे तो गति ७० भेद—साधु के समान या मोक्ष ।

के देव, १०१ संज्ञी मनुष्य के पर्याप्त, १०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य १५ कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त, ७ नारकी के पर्याप्त और तेजस्काय वायुकाय के ८ भेदों को छोड़कर शेष रहे हुए ४० भेद तिर्यंच के, सभी मिलाकर ३६३। गति २८२ भेद की ८१ जाति के देवता, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच और ६ नारकी, इन १३७ के पर्याप्त और अपर्याप्त, इस प्रकार २७४ तथा ३ विकलेन्द्रिय और ५ असंज्ञी तिर्यंच का अपर्याप्त ये २८२।

३१ मिथ्यादृष्टि की आगति ३७१ की १७९ पूर्वोक्त भेद ९९ जाति के देव, ७ नारकी पर्याप्त और ८९ युगलिक मनुष्य पर्याप्त। गति ५५३ की ५६३ में से ५ अनुतर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त ये १० छोड़कर।

३२. माडलिक राजा की आगति २७६ की श्रावक के भेदों के अनुसार। गति ५३५ की ५६३ में से ९ ग्रैवेयक ५ अनुतर विमान इन १४ के पर्याप्त अपर्याप्त के २८ भेदों को निकालकर शेष रहे हुए।

३३. स्त्रीवेद की आगति ३७१ की मिथ्या दृष्टि के अनुसार। गति ५६१ की (सातवीं नरक के पर्याप्त अपर्याप्त छोड़कर)।

३४. पुरुष वेद की आगति ३७१ की स्त्रीवेद की आगति के अनुसार। गति ५६३ की।

३५. नपुंसक वेद की आगति २८५ की १७९ पहले

कहे हुए ६६ प्रकार के देव पर्याप्त ७ नारकी के पर्याप्त एवं २८५ गति ५६३ की।

३६. गर्भज जीव की आगति २८५ भेदों से नपुंसक वेदवत गति ५६३।

३७. नोगर्भज+जीवों की आगति ३२६ भेदों से (३७१ में से नरक ७ तीसरे से बारहवें देवलोक तथा १० लोकांतिक देव ६, दूसरे व तीसरे किल्विषी के २, ग्रैवेयक ६, अनुतर देव ५ ये ४२ छोड़कर गति ३६५ की असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचवत।

